प्रणय

मौलिक उपन्यास

लेखक—
देवनारायण द्विवेदी

प्रकाशक—
साहित्याश्रम
पो० कछवा (मिर्जापुर)

प्रथम संस्करण]   सितम्बर १९२९ ई०   [मूल्य २।)

प्रकाशक—

साहित्याश्रम

पो० कछवा (मिर्ज़ापुर)

द्विवेदीजीकी कुछ नवीन रचनाएँ

देशकी बात	२॥)
कर्त्तव्याघात	२॥)
सन्तान-विज्ञान	२)
ब्रह्मचर्य-रहस्य	१)

मुद्रक—

जे. पी. अरोड़ा,

"लक्ष्मी-प्रेस" बनारस।

'प्रणाम'

काशी मण्डलान्तर्गत बिहड़ा ग्राम-निवासी रईस और जमींदार ठाकुर गणेशप्रसाद सिंहजी

समर्पण

श्री ठाकुर गणेशप्रसाद सिंह जी,

समीपेषु—

मुख्तार,

मैत्री-स्मृतिमें

यह

नन्हींसी

भेंट

स्नेही—

आपहीके शब्दोंमें

पण्डितजी

वृक्ष-लताकी हरियाली नष्ट हो जाती है, जल-सिञ्चनके अभावसे; खड्ग-धार कुण्ठित हो जाती है, हाथ न लगानेसे; विद्याका लोप हो जाता है, आदान-प्रदानमें आलस्य अथवा कार्पण्य करनेसे; अश्व सदोष हो जाता है, अश्वारोहीके शैथिल्यसे या न फेरनेसे; ठीक इसी प्रकार भाव भी कुम्हिला जाता है, उसका उपयोग न करनेसे—व्यक्त न करनेसे।

आजसे कई वर्ष पहले एक उपदेश-प्रद उपादेय सत्य घटना-का हमें अनुभव हुआ था। इरादा था, उसे उपन्यास रूपमें जनताके समक्ष रखनेका। परमात्माकी यही अनुकम्पा क्या कम है कि अब-तब करते इतने दिनोंके बाद वह अभिलाषा पूर्ण हुई।

अवश्य ही उस नये भावकी उमंगमें यदि यह उपन्यास लिखा गया होता तो कुछ और ही होता; किन्तु सूखे भावका चित्रावलोकन करना पाठकोंको नसीब न होता। अतएव

इसके लिए शोक प्रकाश करना निष्प्रयोजन है। तब कुछ और होता और अब कुछ और ही है। विहँसने न पाकर असमयमें ही मुरझायी हुई पुष्प-कलिका अपने पूर्व और भावी सौन्दर्यका स्मरण करा भावुक अवलोकन करनेवालेके दिलमें कसकसे भरा हुआ दर्द पैदा किये बिना नहीं रहती।

प्रस्तुत पुस्तक एक सत्य घटनाका आडम्बर-रहित नग्न-चित्र है अवश्य; किन्तु यह कैसे कहा जाय कि रंगकी तूलिका फेरे बिना ही चित्रांकन किया गया है? अथवा देश और समाजकी परिस्थिति सुधारनेके लिए स्वरुचि-पूर्ण कल्पना-शक्तिसे काम नहीं लिया गया है?

पूर्ण आशा है कि यह पुस्तक विज्ञ पाठक-पाठिकाओंके हृदयोंमें कोई अपूर्व वस्तु अङ्कित करके छोड़ेगी और वह अङ्कन सदा अमिट रूपसे स्थित रहेगा। तभी हमारा परि-श्रम भी सफल होगा।

साहित्याश्रम
पो० कछवा (मिर्जापूर)
ता० १८—६—१९२६ ई०

विनीत—
देवनारायण द्विवेदी

पहला परिच्छेद

सासने भौंहें चढ़ाकर कहा,—मैं तुझे सैकड़ों बार समझा चुकी कि जरा बुद्धिसे काम लिया कर। पर जब लज्जा हो, किसीका डर हो, तब तो! आज फिर दालमें नमक अधिक! तुझे तो घरमें बैठ रहना है, लेकिन लड़केको तो आंत फाड़कर धन्धा करना पड़ता है—वह पेटभर खा भी न सका, किसके बलसे काम करेगा?

रमाकी आँखोंसे आंसू टपकने लगे। नीचा सिर किये चिन्ता-ग्रस्त हो अपने नाखूनसे जमीनकी मिट्टी खोदने लगी—मौन-मेव कुछ भी न बोल सकी।

इतनेमें सासने और भी कुपित होकर कहा,—यदि तुझे कायदे-से रहना हो तो ठीकसे काम किया कर, नहीं अपना रास्ता देख। पैदा किया, पाल-पोसकर सयाना किया, पढ़ाया-लिखाया,

सोचा कि अब मेरे भी दिन सुखसे बीतेंगे। फल यह हुआ कि वह तो परदेशमें बैठा अपना पेट पाल रहा है, और मुझे जलानेके लिए तुझको यहां बिठा गया। न एक पैसा भेजना, न घरकी सुध लेना,—वाहरे सपूत! उसका तो यह हाल, यहां बहूजीका मिजाज ही नहीं मिलता।

रमाकी घिग्घी बँध गयी थी; किन्तु साहस करके बड़े कष्टसे बोली,—क्या भाईजी बिना खाये ही चले गये मांजी?

सास—नहीं, भाईजी तुझे खाकर गये हैं बेहया।

रमाने करुण-कातर नेत्रोंसे सासकी ओर देखकर अत्यन्त नम्र शब्दोंमें कहा,—आज तो मैंने बहनसे अन्दाज कराकर नमक छोड़ा था—मांजी।

सास—क्या कहा, दुलहिनसे अन्दाज कराया था?

रमाने सिर हिलाकर 'हूँ' का संकेत किया। तबतक बड़ी बहू (दुलहिन) लड़केको गोदमें लिए झनझनाती हुई सामने आगयी। तमककर बोली,—ऊपरसे और नमक छोड़कर म्याऊँ बनने चली हैं। मैं खड़ी होकर सब लीला देख रही थी मांजी।

रमा यह झूठा लांछन सुनकर अवाक् हो गयी। कुछ बोल हो न सकी। सास यह कहती हुई वहांसे उठकर चली गयी कि,—अबकी यदि वह पाजी किसी तरह यहां आ जाता तो मैं इन बहूरानीको उसके साथ ही यहांसे बिदा कर देती। मेरी जान तो बच जाती। ऐसी झंझट पालना मुझे पसन्द नहीं।

इस प्रकार सास तो चली गयी, किन्तु बड़ी बहू वहीं खड़ी

होकर रमाको तरेरने लगी;—मानो वह घूरकर रमाको भस्म कर डालनेकी चेष्टा में थी। अन्ततः निराश होकर उसे खंड २ कर डालनेके लिए वाग्बाण छोड़ने लगी। जब उसका भी कोई फल न हुआ; तब न जाने क्या-क्या बड़बड़ाती हुई वह भी चली गयी।

रमा मूर्तिवत् ज्योंकी त्यों वहीं बैठी सिसक रही थी। उस समय उसके चेहरेपर चिन्ताकी छाया न थी, बल्कि ग्लानिका अटल साम्राज्य था, उसके रुदनमें अपने भविष्य और कारणका गहन अन्वेषण न था, वरं आँखका अटूट धारा-प्रवाह था। आज यदि उसके पति-देवता उसकी सुध-बुध रखते होते, चार पैसा कमाकर घर भेजते होते, तो क्या वह इतने शीघ्र घर-वालोंकी नज़रोंसे उतर जाती? लोग कहते हैं कि षोडश-वर्षीया नारीमें सारे भावोंका पूर्ण विकाश हो जाता है, किन्तु रमाका भोलापन देखकर यह मानना पड़ता है कि नहीं; उनमें कुछ युवतियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनमें सारे भावोंका संचार होते हुए भी उस अवस्थातक उनका पूर्ण प्रस्फुरण नहीं हुआ रहता—बचपनका बहुत कुछ आभास उनमें पाया ही जाता है। यदि ऐसा न होता तो क्या भोली रमाके हृदयमें इस समय पतिकी मूर्ति अंकित न होकर माता-पिता और भाइयोंका चित्र अंकित होता!

मनुष्यके हृदयमें नाटकके पर्देकी भाँति विचारोंका परिवर्तन होता रहता है। रमाका रुदन तो बन्द न हुआ किन्तु भावमें

परिवर्तन हो गया। दालमें नमकका अधिक होना, अब उसके रुदनका कारण न रहकर मैकेका स्मरण ही कारण बन गया। सखियोंके साथका खेल, तनिकसी बातपर माताकी प्रेम-मयी झुँझलाहट, पास-पड़ोसकी स्त्रियोंद्वारा अपनी कुशाग्रबुद्धि-की भूरि-भूरि प्रशंसा आदि बातें एक-एककर रमाके हृदयमें उदय होकर उसे व्यथित करने लगीं। सुखकी अनुभूति भी दुःख-वृद्धिका कारण बन जाती है। पिता-गृहका वह स्वच्छन्द जीवन अब रमाके लिए स्वप्न हो गया; माताका वह लाड़-प्यार दुर्लभ हो गया! हाय! स्त्रियोंके लिए ससुराल क्या कारावाससे भी अधिक भयानक है? सासका ताना क्या जेलकी बेंतसे कम दुःखप्रद है? यदि पति अविचारवान निकल गया तो इसमें किसका दोष? क्या लड़केके माँ-बाप इस बातके अपराधी नहीं हैं? क्या निरपराधिनी रमाका तिरस्कार करना घोर अन्याय नहीं है?

रमाकी रुलाई क्रमशः रुकी, चिन्ताका भूत सवार हुआ। पहले तो रमाकी सास उसे बहुत चाहती थी, फिर अब वह इतनी कठोरता क्यों दिखलाने लगी! क्या रमासे कोई भारी भूल हो गयी? किन्तु भूलें तो पहले भी रमासे हो जाया करती थीं। सच बात तो यह है कि बुरे दिनमें कोई किसीका साथी नहीं—दुर्दिनमें मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। जब रमाके पति-देव ही अकारण रूठे प्रतीत होते हैं, तो फिर संसारमें उससे प्रसन्न कौन रह सकता है?

दूसरा परिच्छेद

——::❀::——

पं० शम्भूदयाल रामपुरके रहनेवाले हैं। इस समय इनकी पारिवारिक-वृत्ति, कृषि है। आजसे पचीस-तीस वर्ष पहले, इनकी आर्थिक-स्थिति बड़ी ही सन्तोष-जनक थी; किन्तु अब वह बात नहीं रह गयी है। हाँ, बाह्याडम्बर, अतिथि-सत्कार, धनाढ्य सगे-सम्बन्धियोंके साथ पारस्परिक व्यवहार-निर्वाह एवं वैवाहिक-व्ययमें अब भी किसी प्रकारका अन्तर नहीं पड़ने पाया है। इन्हीं कारणोंसे पंडितजीकी अवस्था दिन-पर दिन शोचनीय होती आरही है। केवल खेती करनेके लिए थोड़ीसी जमीन बची रह गयी है, बाकी जमीनपर महाजनोंका अधिकार है। इसके अतिरिक्त फुटकल देना भी पन्द्रह सहस्रके लगभग हो गया है, जिसका कईसौ रुपया सालाना सूद इन्हें देना पड़ता है। खेतीसे बचत होनेको कौन कहे, सालमें चार-छः सौ रुपयेकी हानि होती है। इनके दो पुत्र और सात कन्यायें हैं। जिनमें एक कन्या अभी अविवाहिता है।

शम्भूदयाल द्वारपर एक चारपाईपर बैठे संस्कृतकी कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। किन्तु इनका चित्त गृहस्थीकी चिन्ता कर रहा था। इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रियोंके कार्य-वैपरीत्य समयमें उन्होंने पुस्तक समेटकर रख दी। खेतोंकी ओर टहलआना स्थिर किया। इतनेमें एक नौकरने आकर कहा,—अब

भूसा कुच्छौ नाहीं हौ, गाय, बरधा कल्हैसे ओइसहीं हउअन।

शम्भू०—अच्छा, आज घास लेकर काम चला, कल भूसे-का प्रबन्ध किया जायगा।

नौकर—चालिस-पचास गोंफनके घास कहां मिली भैया?

शम्भू—जितनी घास मिल सके, उतनीसे आजका काम निकाल, व्यर्थ बकवाद न कर। जा, जरा वासुदेवको बुला ला।

नौकर चला गया। शम्भूदयाल खड़ाऊँ चटकाते हुए मकानकी ओर चले। ससुरके आनेकी आहट पाकर रमा आँगनसे उठकर अपने घरमें चली गयी। शम्भूदयाल सीधे मालकिनके घरमें गये। किन्तु भीतर जाते ही उनकी दृष्टि दुलहिनपर पड़ी। झट बाहर निकल आये। अवसर पाकर दुलहिन वहाँसे हट गयी। शम्भूदयाल घरमें आकर पलँग-पर बैठ गये। बोले—बच्चा भोजन करके गये?

ज्येष्ठ पुत्रका नाम लेना निषेध है। कहा भी है "आत्म नाम गुरोर्नाम नामानि कृपणस्य च। श्रेयस्कामीन गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्य कलत्रयोः॥" इसीसे शम्भूदयाल अपने बड़े लड़के धर्मदत्तका नाम न लेकर 'बच्चा' कहा करते थे।

स्वामीके मुखसे उक्त शब्द निकलते ही देवकीके मस्तकपर बल पड़ गये। बोली,—बच्चाको माँ-बापका बड़ा सुख मिल रहा है।

क्या किया जाय; आज मजदूर अधिक हैं, बिना किसीके रहे, वे कुछ भी काम न करते—मजदूरी मुफ्तमें देनी पड़ती।

देवकी—अच्छी बात है, मजदूरी मुफ्तमें नहीं लगनी चाहिये, चाहे लड़केका शरीर भले ही सूख जाय।

शम्भू—क्या अभीतक भोजन करने नहीं आये ?

देवकी—क्या आनेहीसे पेट भर जाता ?

शम्भू—स्पष्ट कहो, क्या बात है। मेरी समझमें नहीं आया कि तुम क्या कह रही हो।

देवकी—समझमें काहेको आयेगा ? लड़का तो दिनभर मजदूरोंके साथ माथा-पच्ची करता है और जब यहां खानेके लिए आता है, तो छोटी बहूरानी मारे निरेन्सके खाने भी नहीं देतीं। पर कहे कौन, बड़े घरकी बेटी हैं न !

शम्भू—हुआ क्या कुछ सुनें भी तो ?

देवकी—आज जब और कुछ नहीं हुआ तो बहूने नमक ही तेज़ कर दिया। भोजन छोड़कर बच्चा चले गये। घरमें आज घी भी कम था—सो भी पहले ही रसोईमें लग गया था, नहीं तो दालमें छोड़ देनेसे दो चार कौर खा भी लेते। संयोग ही तो है, बगीचेमें नीबू भी न मिला।

शम्भू—इसके वास्ते बहूको कुछ कहा तो नहीं न ?

देवकी—कोई कहकर ही क्या करेगा? लाज-डर हो तब तो।

शम्भू—अच्छा जाने दो; लड़की है, थोड़ीसी बातके लिए उसपर रुष्ट होना ठीक नहीं। अन्दाज ही तो है, अधिक हो गया, होगया। राम राम, मैं तो यहां यह सोचकर आया कि, इस समय चित्त चिन्तित है, चलकर जी बहला आऊं, सो

यहाँ एक और ही अड़ंगा तैयार है।

देवकी, पति-पत्नी-मर्यादाको बहुत कुछ समझती थी। स्वामीका उसपर जो अगाध प्रेम था, उसका भी वह भली-भाँति अनुभव करती थी। यदि और समय होता तो देवकी ऊपरकी बातपर जल-भुन उठती; किन्तु इस समय हठात् स्वामीकी चिन्ताका हाल सुनते ही उसका हृदय इस प्रकार शान्त हो गया, जैसे शीतल जल पड़नेसे उबलता हुआ दूध। विषाद, वास्तवमें क्रोधका अवरोधक है। देवकीका हृदय धड़कने लगा। स्वामीकी चिन्ता शीघ्र जाननेके लिए उसके चेहरे-पर उत्सुकतापूर्ण अभिलाषाकी रेखायें खिंच गयीं। दिल कहता था, पूछूं; ज़बान कहती थी, मुझमें हरकत करनेकी ताकत नहीं।

इतनेमें शम्भूदयालने कहा,—दो दिनसे भूसा नहीं है; मवेशियोंको कष्ट हो रहा है। कुछ समझमें नहीं आता कि क्या करूँ।

देवकीके हृदयका भार कुछ हलका हुआ। बोली,—इसीके लिए चिन्तित थे?

शम्भू—हाँ।

स्त्रीके दिलका रहा-सहा सन्देह भी निवृत्त हो गया। कई दिन पहले एक आदमीद्वारा रमाके स्वामी ज्ञानदत्तकी बीमारीका समाचार मिला था। उसके दो ही तीन दिन बाद अच्छा होनेका समाचार भी किसी दूसरे आदमीसे मिल गया

था। आज अचानक स्वामीको चिन्तित देखकर देवकीके हृदयमें मातृ-स्नेहका प्रबल स्रोत उमड़ पड़ा। सोचा, क्या ज्ञानूका कोई समाचार फिर तो नहीं आया? किन्तु जब स्वामीने अपनी चिन्ता-का कारण कुछ और ही बतलाया, तब देवकीको शान्ति मिली।

जब विषादके धक्केसे क्रोधका शमन होता है, तब अल्प समयके लिए एक अपूर्व शान्ति उद्भूत होती है। इस समय देवकीके हृदयमें भी वही शान्ति उत्पन्न हुई। किन्तु उसकी इस शान्तिमें क्षोभ और पश्चात्तापका आभास था। ज्ञानदत्त-की प्रतिमूर्ति उसके नेत्रोंके सामने नृत्य करने लगी। हाय, ज्ञानू न जानें किस दशामें होगा! क्या उसकी यह अवस्था परदेश करनेकी है? बहूपर इतना रुष्ट होना, ठीक नहीं था। उसके हृदयकी इस समय क्या दशा होगी? थोड़ी देरतक इन्हीं विचारोंमें पड़ी रहनेके बाद बोली,—नहो किसीको भेजकर ज्ञानूको बुला लो। चिट्ठी भेजनेसे काम न चलेगा, क्योंकि चिट्ठियोंका तो वह जवाब ही नहीं देता। इधर कई दिनोंसे न जाने क्यों हर वक्त उसपर चित्त लगा रहता है।

देवकीकी यह बात सुनकर शम्भूदयालको अपना आन्तरिक भाव छिपा लेना पड़ा। वास्तवमें वह कोई गहना लेनेके लिए आये थे। सोचा था, कोई रकम गिरों रखकर भूसा मंगा लिया जायगा। किन्तु अब उन्हें एक दूसरा ही बहाना मिल गया। बोले,—ऐसा ही तो मैं भी सोच रहा हूँ। इतनी चिट्ठियाँ दी गयीं, फल कुछ भी न हुआ। पर रुपया न होनेके कारण चुप

हूँ। देखो, वासुदेवको बुलाया है, वह क्या हाल सुनाते हैं। रुपयेका जुगाड़ करनेके लिए ही मैंने उन्हें एक जगह जानेको कहा था। यदि ठीक हो गया, तो मैं कल ही किसी-न-किसीको भेज दूँगा।

स्त्री—कितने रुपयेकी आवश्यकता पड़ेगी ?

शम्भू—सौ-सवा सौ रुपये हों तो काम चल जाय।

स्त्री—यहाँसे कलकत्ताका कितना भाड़ा लगता है ?

शम्भू—भाड़ा तो कोई अधिक नहीं है, लेकिन परदेशका मामला है, कैसी पड़े, कैसी न पड़े—बिना कुछ रुपया पास रहे, काम नहीं चल सकता।

स्त्री—अच्छा वासुदेवसे पूछो, यदि ठीक हो गया हो, तब तो कोई बात ही नहीं है, नहीं तो मैं रुपये दे दूँगी।

शम्भू—तो फिर तुम्हीं दे दो न—क्यों दूसरेके सामने सिर नीचा कराती हो। आठ-दस दिनमें तुम्हारे ये रुपये मैं अवश्य लौटा दूँगा।

स्त्री—हाँ, और सब लौटा दिये हो, यही बाकी है।

शम्भू—खैर औरकी बात जाने दो, यह रुपया अवश्य तुम्हें वापस कर दूँगा—सच मानो। दो।

स्त्री—दूँ क्या मैंने गाड़ रखा है ? जो कुछ था, वह तो बीन-बटोरकर पहले ही उठा ले गये। शरीरपरके गहने भी तो नहीं रह गये। जाओ वासुदेवसे पूछो, यदि बन्दोबस्त न हुआ होगा, तो कहींसे मँगा दूँगी।

शम्भू—वासुदेवने शायद ही प्रबन्ध किया हो। अच्छा, जाता हूँ, किन्तु तुम बन्दोबस्तमें रहना।

स्त्री—बस, अब तो तुम्हें बहाना मिला।

शम्भू—नहीं नहीं, बहानेकी बात नहीं है।

इतनेमें दाईने आकर कहा,—बाहर कोई आया है।

शम्भूदयाल यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि, वासुदेव ही आये होंगे।—बैठकमें जानेपर मालूम हुआ कि वासुदेव ही हैं। बोले,—कहो भाई, काम हुआ?

वासुदेव—जी हाँ, काम तो हो जायगा, पर सूद डेढ़ रुपये सैकड़ेसे कम नहीं करता। कहता है कि, चार हजार रुपया दे दूँगा। पर डेढ़ रुपया सैकड़े छःमाही सूद लूँगा।

शम्भू—रुपयेका प्रबन्ध तो घरमें ही हो गया है, लेकिन उतनेसे काम न चलेगा।

वासुदेव—क्या मालकिनने दिया है?

शम्भू—हाँ। मैं तो समझता था कि घरमें अब रुपये न होंगे, लेकिन मिल गये।

वासुदेव—अजी वाह! आप भी खूब समझते हैं। बड़े घरोंकी यही तो विशेषता है। मैं कहता हूँ, अभी कुछ नहीं तो आपके घरमें ४०-५० हजार रुपये नकद निकल सकते हैं।

शम्भू—धीरे-धीरे सब रुपये मैंने ले लिये न! नहीं तो इतने रुपये अवश्य निकलते।

वासुदेव—अच्छा, तो फिर अब क्या विचार है? मेरी

रायमें तो उससे रुपया न लीजिये, क्योंकि सूद बहुत कड़ा है। पीछे जैसा होगा, देखा जायगा।

शम्भू—नहीं नहीं, रुपयेका ले लेना ही ठीक है। इस साल विवाह भी पड़नेवाला है, कहीं ऐसा न हो कि मौकेपर रुपया न मिले। उससे जाकर बातचीत पक्की कर आओ।

"अच्छी बात है" कहकर वासुदेव चले गये।

तीसरा परिच्छेद

जाड़ेकी प्रातःकालीन धूप अमीर-गरीब सबको एकसी प्यारी लगती है। कोई काम न रहनेके कारण रमा छतपर बैठी भर्तृहरि-कृत "नीति शतक" पढ़ रही थी। इतनेमें पड़ोस-की दो-तीन किशोरी बालिकायें भी वहां आ जुटीं। रमाका अध्ययन बन्द होगया। एकने पूछा,—क्यों भाभी, अब क्यों उदास हो?

दूसरीने कहा—ज्ञानू भैया कब आवेंगे?

शुभ्र-वदना रमा मुसकराकर चुप रह गयी। तबतक एकने रमाको खोदकर कहा,—कब आवेंगे बोलो न?

हास्य, झिझक और किंचित् बनावटी क्रोधके साथ रमाने कहा,—तुमलोग सीधेसे बातचीत करो, नहीं तो मैं यहांसे भाग

जाऊँगी। देखो भई, मैं हाथ जोड़ती हूँ, तुमलोग मुझे व्यर्थ न छेड़ो।

"मैं भी हाथ जोड़ती हूँ भाभी, बतला दो भैया कब आवेंगे?

"न मानोगी?"

"न बतलाओगी?"

रमाकी दृष्टि लज्जाके भारसे झुक गयी। उसने मस्तक हिलाकर उत्तर दिया,—नहीं।

"अच्छा यह बतलाओ कि भैयाके आनेपर मुझे क्या दोगी?"

रमाको अवसर मिला। बालिकाकी ओर दृष्टि करके मुस-कराती हुई बोली,—गुलाबके फूलकी तरह कोमल और अत्यन्त सुन्दर एक वर तुम्हारे लिए ढुंढ़वा दूँगी। बस न?

रमाकी यह बात सुनकर अविवाहिता किशोरी बालिका संकुचित होगयी। विकशित कमलिनीपर तुषार पड़ गया। पाठक समझ गये होंगे कि यह अविवाहिता किशोरी, रमाकी ननँद सरला है।

रमाका दिल बढ़ा। वह फिर कुछ कहना ही चाहती थी कि, इतनेमें वहाँ सास आगयी। माँको देखते ही सरला वहाँसे चली गयी। उसके साथ ही उसकी सहेलियाँ भी चली गयीं। देवकीने कहा,—इतना दिन चढ़ आया, हाथ-मुँह धोया कि नहीं बेटी?

सासके उपर्युक्त शब्दोंमें पहलेकीसी सरसता थी। आज

यह परिवर्त्तन क्यों ? क्या देवकी अब फिर रमाको पहलेकी भाँति स्नेह-भरी दृष्टिसे देखेगी ? सम्भव है, देवकीको अपनी भूलपर खेद हुआ हो। रमा निरपराधिनी है। उसे कोप-भाजन बनाना वास्तवमें एक भारी भूल है। संसार-नव-प्रविष्टा एवं सरल-स्वभावा रमा, सासकी प्रेम-लपेटी बात सुनकर आह्लादित हो उठी। बोली,—अभी तो बहुत सबेरा है माँजी।

सास—सबेरा कहाँ है ? कुछ पानी पी ले।

रमा अपनी सासका यह स्नेह-भार वहन न कर सकी। उठी, और पीछे-ही-पीछे सासके कमरेमें चली गयी। जल पीनेके बाद दोनोंमें प्रेम-पूर्वक बातें होने लगीं।

"इतना दिन चढ़ आया, हाथ मुँह धोया कि नहीं बेटी"—यह बात दुलहिनके कानोंमें पड़ गयी थी। क्योंकि उसी समय वह भी ऊपर जा रही थी, ऊपरकी बात सुनकर बाण-बिद्धा हरिणीकी भाँति तुरन्त ही लौट पड़ी। सीधे अपने कमरेमें चली गयी। सोचने लगी,—यह बात है ? छिपे-छिपे तो इतना स्नेह दिखलाया जाता है, और मेरे सामने कुछ और ही ढंगकी बातें होती हैं। देखती हूँ, यह स्नेह कितने दिनोंतक रहता है।

धर्मदत्त कमरेमें आये। स्त्रीको असमयमें लेटी देखकर चकित हुए। धीरेसे पलँगपर बैठ गये और स्त्रीके मस्तकपर हाथ रखकर पूछने लगे,—क्यों कैसी तबीयत है ?

दुलहिनने रूखे स्वरमें कहा,—अच्छी है।

धर्म—तो फिर इस समय क्यों पड़ी हो ?

दुल—तो क्या करूँ, पानी पीढ़ूँ ?

धर्मदत्त समझ गये कि दालमें कुछ काला अवश्य है। क्योंकि उनके लिए आजका यह मान कोई नया नहीं था। किन्तु मामला क्या है, यह जाननेकी चेष्टा धर्मदत्तने इस समय नहीं की। सोचा, इस आवेशमें कुछ पूछना ठीक नहीं है। इसीसे उन्होंने दिल-बहलावकी बात प्रारम्भ की। कहा,—घरमें किसी-के साथ झगड़ा होता है, तो उसका फल तुम मुझे अवश्य चखाती हो। क्या दिल्लगी है !

बात तो कही गयी और उद्देश्यसे, पर परिणाम कुछ और ही हुआ। दुलहिनने विशेष उदास होकर कहा,—हाँ, मैं तो रातदिन सबसे झगड़ा किया ही करती हूँ। घरके और लोग तो मुझे झगड़ालू कहते ही थे, एक तुम्हीं बाकी थे, सो तुमने भी आज झगड़ालू समझ लिया, चलो छुट्टी हुई।

अबतक धर्मदत्तका यह अनुमान था कि कुशल मनुष्य अपने वचनद्वारा किसी दूसरे मनुष्यकी रुचिको अपने अनुकूल बना सकता है—यदि उस रुचिमें कोई विशेष स्वार्थपरता न हो। किन्तु आज यह भी निश्चय हुआ कि, नहीं, कभी कभी विपरीत रुचि भी उत्पन्न हो जाती है, चाहे कितनीही कुशलता एवं निःस्वार्थ-बुद्धिसे काम क्यों न लिया जाय। स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिए फिर बोले,—मैंने योंही दिल्लगी की, और तुमने व्यर्थकी बात अपने दिलमें गढ़ ली। मैंने तुम्हें और भी कभी झगड़ालू कहा था कि आज ही ?

दुलहिनका परितप्त हृदय कुछ शान्त हुआ। किन्तु कुछ बोली नहीं।

धर्मदत्तने फिर पूछा,—क्या मांसे आज फिर कुछ बात-चीत हुई है?

दुल—नहीं।

धर्म—तो फिर?

दुल—योंही।

धर्म—बिना कारणों ही?

दुल—अकारण ही कोई काम होता है?

धर्म—इसीसे तो पूछता हूं। बतलाओ न?

हृदयका भाव स्वामीसे व्यक्त करनेके लिए ही तो दुलहिन मान किये लेटी थी। किन्तु प्रसंगतः बात ही कुछ ऐसी चल पड़ी कि वह अबतक न कह सकी। इसमें उसका क्या दोष? सोचने लगी, प्रसंग तो अब भी नहीं आया। किन्तु कहीं ऐसा न हो कि फिर बात दूसरी ओर घूम जाय। इसलिए अब कह डालना ही ठीक है। बोली,—मैं यही सोच रही हूं कि संसारमें कैसे-कैसे स्वभावके लोग हैं! इनदिनों वह मेरे सामने तो बहुसे ऐसी बातें करती थीं कि जान पड़ता था खूब रूठी हैं। किन्तु जब आज मैंने उनकी बातें सुनीं, तो और ही बात मालूम हुई। ज्ञानू जब पढ़ता था, तब घरमें यह और बाहर वह, दोनों ही फूले नहीं समाते थे। "ज्ञानू यह पैदा करेगा, वह पैदा करेगा डिप्टी होगा, जज होगा"। सुनते सुनते नाकों दम आ जाता

था कि तुम्हारा ज्ञानू राजा हो जायगा तो किसीको घरमें रहने भी देगी या नहीं ? किन्तु भगवान सबका गर्व चूर करते हैं । ज्ञानूने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया, इनलोगोंका वह ताना मारना छूट गया । हुँः ! क्या मैं समझती नहीं थी ? कहनेका मतलब यही रहता था न कि तुम नहीं पढ़े हो, या और कुछ ? अच्छा तुम कम पढ़े हो, तो इसमें ताना मारनेका क्या काम ? तुम्हारे साथ दुःख तो मैं भोगूँगी, दूसरोंसे मतलब ? ज्ञानूकी कमाई-धमाई सब दिखलायी पड़ गयी । देख लेना वही ज्ञानू इनको जूता लेकर पीटे······

धर्मदत्तने बात काटकर कहा,—चुप चुप, सास हैं, बड़ी हैं ऐसा नहीं कहना चाहिये ।

दुलहिनने उत्तेजित होकर कहा,—जब उनमें बड़प्पन नहीं है तो बड़ी होनेसे क्या होगा ? इसीसे मैं तीत हूँ । नहीं तो क्या छोटी बहूकी तरह चिकनी-चुपड़ी बातें करके मैं उन्हें कठ-पुतली नहीं बना सकती थी ? मैं सब जानती हूँ । मालूम है, इधर बहूसे क्यों मेल होगया ? इसलिए कि जिसमें ज्ञानू अपनी कमाई घरवालोंको न देकर सब उन्हें दे । कौन गया बुलाने-के लिये ?

धर्म—अभी तो कोई नहीं गया ।

दुल—तो फिर तुम्हें यह भी नहीं मालूम है ।

धर्म—मालूम है, अभी कोई नहीं गया । शायद माँको राजी रखनेके लिए बाबूजीने कह दिया है कि आदमी भेज दिया गया ।

दुल—तुमसे छिपाकर आदमी भेजा गया होगा।

धर्म—बाबूजी मुझसे कोई बात नहीं छिपाते।

दाई बरामदेमें खड़ी सब सुन रही थी। देवकीके पास आकर उसने सारा हाल कह सुनाया। सुनते ही देवकीके चेहरे-पर लालिमा छा गयी। बिना कुछ बोले मन-ही-मन सोचने लगी,—रुपया लेकर भी कोई आदमी भेजा नहीं गया। क्या झानू इतना चित्तसे उतर गया?

देवकी इसी उधेड़-बुनमें लगी थी कि शम्भूदयाल घरमें आ गये। बैठे भी नहीं कि देवकीने क्रोध-युक्त कर्कश स्वरमें कहा,—भला मुझसे झूठ बोलनेकी क्या जरूरत थी?

शम्भू—कौनसी बात?

देवकी—झानूको बुलानेके लिए किसे भेजा?

इतना सुनते ही शम्भूदयाल ताड़ गये कि पोल खुल गयी। पर वह भी बात बनानेमें पक्के गुरुघंटाल थे। बातें तो उन्हें क्षण-क्षणपर बनानी पड़ती थीं। यदि इस विद्यामें कुशल न होते तो उनका काम ही न चलता; न तो महाजनोंके तगादे-से उनकी जान ही बचती और न एक पैसा ऋण ही कहींसे मिलता। तो फिर ऐसे आदमीके लिए भला देवकी जैसी स्त्री-के दिलका सन्देह दूर करनेमें कितनी देर लगती है? उन्होंने अविलम्ब उत्तर दिया,—चौबेपुरके एक आदमीको।

देवकीने कहा,—क्या गाँवका कोई आदमी भेजनेके लिए नहीं मिला कि यहाँसे दस कोस दूरका आदमी भेजा गया?

मैं सब जानती हूँ, दुधमुँही बच्ची नहीं हूँ।

शम्भू—इसका क्या मतलब?

देवकीने अन्यमनस्क होकर कहा,—कुछ नहीं।

शम्भू—कुछ तो जरूर है, छिपाती क्यों हो?

देवकी कुछ न बोली। शम्भूदयालने फिर पूछा,—क्यों, बोलो न?

देवकीने तीखे स्वरमें कहा,—क्या बोलूँ उस दिन तो कहा था कि रामदीन कारिन्देको भेजा है और आज कहते हो कि चौबेपुरके एक आदमीको। सीधे यह क्यों नहीं कहते कि कोई नहीं गया है। इतना······

शम्भूदयालने बात रोककर कहा,—मेरी बात सुनो, तुमने समझनेमें भूल की है। बात यह है कि जो आदमी भेजा गया है, उसका नाम भी यही है। हाँ मैंने गाँवका नाम नहीं बतलाया था, इसीसे तुमने अपने रामदीनको समझ लिया—पर इसमें तुम्हारी भूल नहीं। किन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि तुम्हें इतने जल्द मुझपर अविश्वास न करना चाहिए था,—दुबारा पूछनेहीसे तो सन्देह दूर किया जा सकता था। इसका मुझे दुःख है कि तुमने मेरा विश्वास नहीं किया।

शम्भूदयालकी वाक्‌चातुरी काम कर गयी। अन्तिम बात सुनकर देवकी मन-ही-मन लज्जित हुई। उसे अभिमान था कि आज स्वामीको अपनी झुठाईके लिए उसके सामने संकुचित होना पड़ेगा, किन्तु ठीक उसका उलटा हुआ। अब देवकी

अपनी सफाई देनेके लिए शब्द ढूँढ़ने लगी। नीचा सिर किये बोली,—मुझे यह नहीं मालूम था कि अपने लड़के भी झूठ बोलते हैं। बच्चा कहते थे कि अभी कोई नहीं भेजा गया है। इतना कहकर देवकी चुप हो गयी और शोक-सन्तप्त हृदयसे एक लम्बी सांस छोड़ी।

शम्भूदयालको अपनी सफलतापर प्रसन्नता तो अवश्य हुई, किन्तु उतनी नहीं जितनी कि होनी चाहिये। कारण यह है कि जहांसे प्रसन्नताका उद्रेक होता है, वहां मिथ्यात्व-का धब्बा लगा हुआ था। मिथ्यावादी मनुष्यको अपनी एक झुठाई छिपानेके लिए बहुतसी मिथ्या बातें कहनी पड़ती हैं और मिथ्यावादीकी वाक्चातुरीसे कभी कभी सत्यवादीको ही लज्जित होना पड़ता है। वास्तवमें शम्भूदयालने अबतक ज्ञान-दत्तको बुलानेके लिए किसीको भेजा नहीं था। यही कारण है कि स्त्रीने अविश्वास किया, यह बात सिद्ध हो जानेपर भी उन्होंने स्त्रीके हृदय-परितापको दूर करनेके लिए मीठे शब्दोंमें कहा,—तुम्हारा हृदय बड़ा ही कोमल है, बहुत जल्द लोगोंकी बातोंपर विश्वास कर लेती हो। भला तुमसे यह बात कही किसने?

स्वामीके प्रेममय वचनसे देवकीको कुछ शान्ति मिली। क्यों न हो देवी-देवता भी तो अपनी प्रशंसा सुनकर ही प्रसन्न होते हैं—शान्त होते हैं। फिर देवकीको यदि शान्ति मिली तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या! उसने शान्त भावसे कहा,—

दाईसे मालूम हुआ कि बबा कहते थे। इसीसे तो कहती हूं कि इस युगमें बेटे भी बापपर झूठा लांछन लगानेमें नहीं हिचकते। किसी दूसरे आदमीके मुंहसे सुनकर मैं कदापि विश्वास न करती।

अस्तु। इसके बाद स्त्री-पुरुषमें आज कोई विशेष उल्लेख-नीय बात न हुई। दो-चार दिनके भीतर ही शम्भूदयालने ज्ञानदत्तको बुलानेके लिए आदमी भेज दिया।

चौथा परिच्छेद

कई दिन बीत गये, नतो ज्ञानदत्त ही आये और न उनका कोई समाचार ही मिला। इससे रमाके औत्सुक्य भावमें निराशाका सञ्चार होगया। उसका हृदय चिन्ता-ग्रस्त हो-गया। खाना-पीना तो स्वामीके आनेकी प्रसन्नतामें पहले ही बहुत कम होगया था, किन्तु आह्लाद था; अब वह भी जाता रहा। एक पलका बीतना उसके लिए युगसा प्रतीत होने लगा। योंतो हिन्दू-धर्ममें पति-पत्नी सम्बन्ध ही ऐसा है कि स्वा-भाविक ही वियोग-वेदना एक दूसरेको असह्य हो जाती है, तिसपर जो दाम्पत्य-जीवन सत्य-स्नेह-पूर्ण होता है, उसका तो कुछ कहना ही नहीं है। रमा और ज्ञानदत्तका जीवन भी ऐसा

ही था। दोनोंका एक दूसरेके प्रति सत्य-प्रेम था। आधुनिक समाजकी वैवाहिक प्रथासे अत्यन्त पीड़ित होकर शिक्षित जनता इस बातका प्रचार करनेके लिए बेतरह व्याकुल हो रही है कि कर्मठोक, अँखमुँदा तथा अयोग्य विवाह-प्रचलन रुके और लड़के-लड़कियाँ अपनी रुचिके अनुकूल सम्बन्ध करके अपने जीवनको सुखी बनावें। लोगोंके लिए यह स्वप्न है, पर रमा और ज्ञानदत्तके लिए यह सुयोग अनायास ही जुट गया था। इसलिए दोनोंका आह्लाद-जनक तथा विनोद-पूर्ण पूर्व वृत्तान्त भी जाननेके लिए पाठकगण उत्सुक होंगे।

हिन्दी-मिडिल पास करके ज्ञानदत्त काशीमें अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। उस समय उनकी अवस्था तेरह वर्षकी थी। रमेश नामक सम्पन्न कायस्थ-बालकसे इनकी घनिष्ठ मैत्री होगयी। आजकल बहुधा स्कूली छात्रोंमें व्यभिचारपूर्ण मैत्री होती है, किन्तु ज्ञानदत्तकी मैत्रीमें यह बात न थी। कारण यह था कि ज्ञानदत्तको इस अल्पावस्थामें ही कुमित्रोंसे बचनेकी शिक्षा बड़े सुन्दर ढंगसे मिली थी। इधर रमेश भी बड़ा पवित्र और अपने माँ-बापके कड़े पहरेमें रहकर प्रसन्न रहनेवाला बालक था। स्कूलसे छुट्टी होनेपर दोनों ही एक जगह बैठकर अध्ययन करते थे। अधिकतर बैठक रमेशके घर हुआ करती थी। कभी-कभी तो बालक ज्ञानदत्त खा-पीकर वहीं सो भी जाता था—पर रमेशसे अलग। दो लड़कोंका एक जगह सोना भी आचार-भ्रष्टताका करण होता है। रमेशके मकानके बगलमें पं० अमरनाथ पांडेय-

का मकान था। मुहल्लेमें आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, यहांतक कि लोग इनका नाम न लेकर 'सरकार' कहा करते थे। यह पेंशनर डिपुटी कलेक्टर थे। 'सरकार', आचरणके बड़े पवित्र थे और बालकोंको स्नेह-दृष्टिसे देखते थे। पास-पड़ोसके लड़के इनके पास आया करते और यह बड़े प्यारसे उन्हें पढ़ाया करते। एक छोटी कन्या, बूढ़ा स्त्री तथा दो-तीन नौकरोंके अतिरिक्त पण्डितजीके मकानमें और कोई नहीं था। पण्डितजीके पास लाखोंकी सम्पत्ति थी और गवर्नमेण्टसे भी चार सौ रुपये मासिक पेंशन पाते थे। इसलिए दिनभर पूजा-पाठ तथा पठन-पाठनके सिवा कुछ न करते। ज्ञानदत्त और रमेश मित्रद्वय भी यहां पढ़ा करते।

जब दोनों लड़के एट्थ क्लास—(आठवें दर्जे) में पढ़ते थे, तब एकदिन रमेशने ज्ञानदत्तको एक पत्र दिया। पोष्ट-आफिसकी मुहर देखकर ज्ञानदत्तने समझ लिया कि यह पत्र घरका है। आतुरताके साथ उसे खोलकर पढ़ा और फिर लिफाफेमें भरकर जेबमें रखना चाहा; तबतक रमेशने हाथ पकड़ लिया और कहा,—यह क्या? ऐसी कौनसी गुप्त बात है कि तुम मुझे बिना सुनाये ही छिपानेकी चेष्टा कर रहे हो?

ज्ञानदत्तने हंसते हुए हाथ झटककर छुड़ाना चाहा; जब न छूटा, तब कहा,—घरकी चिट्ठी है, इसे सुनकर क्या करोगे। कोई सुनाने योग्य बात नहीं है।

रमेशने व्यंगभावसे कहा,—नहीं जी, भला घरकी चिट्ठीमें

कोई सुनाने योग्य बात होती है ? बोलो, सीधेसे सुनाते हो या नहीं ?—यह कहते समय बल-पूर्वक छीननेका भाव रमेशके मुखपर दिखलायी पड़ा।

ज्ञानदत्तने ईषत् हास्य-युक्त स्वरमें कहा,—अच्छा भाई छोड़ो, सुना दूं।

रमेशने हाथ छोड़ दिया। ज्ञानदत्तने पत्र खोलकर फिर न जानें क्यों हंसतेहुए बन्द कर लिया। कहा,—जाने दो यार क्या करोगे सुनकर।

अभीतक तो रमेश कौतूहलवश पत्र सुननेके लिए हठ कर रहा था, किन्तु ऊपरकी बात कहते समय ज्ञानदत्तकी मुखाकृति देखकर वह लख गया कि हो-न-हो इस पत्रमें अवश्य कोई रहस्य-पूर्ण समाचार है, जरूर सुनना चाहिए। मस्तक सिकोड़-कर कहा,—फिर शैतानी ? अच्छा बच्चू, क्या अब कोई काम न पड़ेगा, या अब चिट्ठी ही न आवेगी !

यह कहकर रमेश बनावटी रुष्टता दिखाकर जाने लगा। ज्ञानदत्तने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा,—लो लो, सुनो।

रमेश बैठ गया। ज्ञानदत्त पत्र पढ़ने लगा। दो-चार पंक्तियां पढ़कर ठमक गया और तुरन्त ही फिर पढ़ने लगा। ज्ञानदत्तकी रुकावट तथा हंसी रोकनेकी चेष्टासे रमेश समझ गया कि इस पत्रकी कुछ बातें इसने छिपा लीं—पढ़ीं नहीं। इसलिए पत्र समाप्त होते-न-होते ही उसने झपटकर पत्र छीन लिया। ज़ोरसे पढ़ने लगा,—

"बेटा ज्ञानू,

ईश्वर तुम्हें चिरायु करें। आनेके लिए लिखकर फिर आये क्यों नहीं? अब ऐसा कभी मत लिखना। क्योंकि इससे व्यर्थ ही चिन्ता हो जाती है। विशेष हाल यह है कि तुम्हारा विवाह ठीक हो चला है, बहुत जल्द कोई आदमी तुम्हें बुलाने-के लिए जायगा। उसके साथ चले आना। दर्जीसे तगादा करके कपड़े ले लेना। यदि और कोई काम हो तो अभीसे चेष्टा करके कर डालो, ताकि आदमी जानेपर तुम्हें रुकना न पड़े।

शुभाकांक्षी—

शम्भूदयाल द्विवेदी

पत्र समाप्त करके रमेशने कहा,—क्यों भाई इसमें छिपाने-की कौनसी बात थी?

ज्ञानदत्तने संकुचित होकर निगाहें नीची कर लीं। संकोच-के कारण वह अपने मित्रसे भी यह बतलानेका साहस न कर सका कि छिपानेकी बात थी वही, विवाहका ठीक होना।

रमेश तो शहरका रहनेवाला था उसे क्या पता कि देहातके लड़के वैवाहिक चर्चासे कोसों दूर भागते हैं। विवाह उनके लिए हव्वा है और इस संकोचमें वे अपना गौरव समझते हैं। पूर्व संस्कारके कारण अज्ञानावस्थाके ब्याहमें भी बच्चोंको भीतरसे प्रसन्नता होती है, पर बाहरसे कुछ और ही भाव दिखलाते हैं। आखिरकार ज्ञानदत्त भी तो देहातका ही रहनेवाला है। यद्यपि वह इस बातको नापसन्द करता है, तथापि विचार-निर्बलताके

कारण उसे मानता ही है। वह मनमें सोचने लगा वाहरे वर्तमान हिन्दू-समाज! तू व्यर्थ और निरर्थक शिक्षाएँ बच्चों-के मस्तिष्कमें भरकर समय और शक्तिका अपव्यय कर रहा है। यदि अनुकूल अवस्था होनेपर विवाह किया जाता तो भला ज्ञानदत्त जैसे पढ़े-लिखे बालक विवाह-लज्जासे अपनी आत्माको निर्बल क्यों बनाते? जब पंद्रह वर्षकी अवस्था होने-पर शिक्षित ज्ञानदत्तको इतनी लज्जा है तो फिर पांच-सात वर्षके अशिक्षित बच्चोंकी विवाहके समय क्या दशा होती होगी, इसे कौन नहीं समझ सकता! यदि यही दशा रही तो कुछ दिनोंके बाद विवाहका नाम सुनकर बच्चे मारे लज्जाके कुएँमें कूदने लग जायँगे।

बालक ज्ञानदत्तका सोचना बहुत ठीक है, किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि नागरिक-जीवन व्यतीत करनेवाले लड़कोंका व्यवहार उक्त विषयमें बहुत उचित है। शहरके लड़के तो और भी नष्ट-भ्रष्ट होते हैं। वे तो अत्यधिक निर्लज्ज हो जाते हैं। वन-यात्राके समय भगवान रामचन्द्रको महारानी सीतासे माता कौशल्याके सामने कुछ कहनेकी आवश्यकता पड़ी थी। गोस्वामी तुलसीदासजीने रामायणमें लिखा है,—"मातु समीप कहत सकुचाहीं।" यह भाव शहरके स्त्री-पुरुषोंमें कहाँ है? इसलिए यदि ऐसी ही निर्लज्जता बढ़ती गयी तो कुछ ही दिनोंमें शहरवालोंका पशुवत् व्यवहार हो जायगा, उन्हें किसीके सामने लज्जा मालूम ही न होगी। कहनेका तात्पर्य यह कि

'अति' सर्वत्र वर्जित है। कहावत है:—"न अति वर्षा, न अति धूप। न अति बोलब, न अति चूप॥"

रमेशने यह पत्र ज्ञानदत्तको दे दिया और हर्षित होकर पूछा,—क्यों ज्ञानू, तुम्हारे बाबूजीने कहाँ विवाह स्थिर किया है, जानते हो?

अबकी ज्ञानदत्तने ढाढस बाँधकर निषेधात्मक सिर हिलाया।—ज्ञानदत्तने उत्तर तो दे दिया किन्तु मन-ही-मन बहुत पश्चात्ताप किया। मानो, उससे कोई बहुत बड़ा अपराध होगया। यदि दोनों मित्रोंमें इस ढंगकी कुछ भी बातें इससे पहले हुई होतीं तो ज्ञानदत्तको इतनी लज्जा न मालूम होती। आजसे पहले तो इन दोनोंमें पढ़ने-लिखने, तर्क-वितर्क करनेके सिवा और किसी प्रकारकी बात ही नहीं हुई थी, क्योंकि दोनों ही समयका सदुपयोग करनेका अभ्यास बढ़ा रहे थे। यदि कभी एकके मुँहसे कोई व्यर्थ बात निकल पड़ती तो दूसरा तुरन्त रोक देता था। इसपर दोनों ही सतर्क रहा करते थे। यही कारण है कि ज्ञानदत्तको इतना संकुचित होना पड़ा।

अब आजसे रमेशकी छेड़छाड़ शुरू होगयी, किन्तु अश्लीलता पूर्ण नहीं। दो ही चार दिनोंमें ज्ञानदत्त भी कुछ ढीठ होगया। सन्ध्याके समय स्कूलसे छुट्टी मिलनेपर वह भी आज रमेशके घर आया। शौचादिसे निवृत्त होकर दोनोंने जलपान किये, बाद पण्डितजीके यहाँ पढ़ने चले गये, पण्डित-

जी पानके गहरे आदी थे । पढ़ाते समय पनडब्बा उठाया तो उसमें पान न देखकर लड़कीको पुकारा,—बिटिया! बार-छः खिल्ली पान तो भेज दो ।

इस लड़कीको पण्डितजी 'बिटिया' कहा करते थे, इसलिए मुहल्लेके और लोग भी उसे इसी नामसे पुकारते थे। लड़कीका असली नाम बहुत कम लोगोंको मालूम था। उस समय घरमें कोई नौकर नहीं था, इसलिए बिटिया स्वयं ही पान लेकर आयी। निपुणता दिखलानेके लिए बीड़े खूब सजाकर लगाये गये थे, इससे पण्डितजी समझ गये कि इसीके हाथके लगे हुए पान हैं। ठीक ही है, नवसिखुए खूब चुनकर अक्षर लिखते हैं, पर सिद्ध-हस्त लेखक सरपट दौड़ाता है। एक खिल्ली पान मुखमें डालते हुए बोले,—यह पान तुमने लगाया है?

बिटियाने सलज्ज भावसे मधुर स्वरमें कहा,—जी।

पण्डितजीने प्रसन्न होकर कहा,—वाहरी नातिन, तुम तो बड़ी रानी हो ।

बिटिया और भी संकुचित होगयी। नीची दृष्टि किये बोली,—नानाजी, आज मेरे पास कागज बिलकुल नहीं है ।

पण्डितजीने विह्वल होकर कहा,—कागज नहीं है? अच्छा कोई आदमी आने दो, मैं तुम्हें ढेरसा कागज मंगा दूंगा ।

लड़की प्रसन्न होकर चली गयी । ज्ञानदत्तको आज मालूम हुआ कि यह पण्डितजीकी पुत्री नहीं है। कुछ देरके बाद ज्ञानू और रमेश पढ़कर वापस लौटे। रास्तेमें रमेशने बड़े

गम्भीर और पवित्र भावसे कहा,—ज्ञानू, तुम्हारा विवाह यदि इसी बिटियासे हो जाता तो बड़ा अच्छा होता। क्या तुम कोई तरकीब नहीं लगा सकते ?

इतना सुनते ही ज्ञानूके हृदयकी निगूढ़ अन्तरालमें छिपी हुई वेदना फुँकारामारकर प्रकट होगयी। उसके हृदयमें बिटियाके प्रति स्वाभाविक ही स्नेह था। किन्तु वह स्नेह किस लिए था, कहा नहीं जा सकता। हाँ इतना अवश्य था कि उसमें वैवाहिक वासना रंचमात्र भी न थी। यह स्नेह-भाव रमेशको भी ज्ञात नहीं था। मनुष्यके अन्तःकरणमें ऐसी बहुतसी बातें समय समयपर सूक्ष्मरूपसे उत्पन्न होकर स्थिर हो जाती हैं, जो मित्रसे भी नहीं कही जातीं और कभी विराट्रूप धारण कर लेती हैं। ठीक ऐसी ही दशा ज्ञानूकी थी। बिटियाको देखनेकी बिलकुल साधारण चाह ज्ञानूके दिलमें सदा बनी रहती थी, पर उसे न देख पानेपर कोई कष्ट भी नहीं होता था। स्नेह भी अधिक संघर्षसे, अधिक चिन्तनसे परिपुष्ट होता है। ज्ञानूके स्नेहमें ये दोनों बातें न थीं; उसके स्नेहमें पवित्रता थी, निःस्वार्थता थी, अकपटता थी और थी न जानें कौनसी बात! स्नेहमें व्याकुलता, आतुरता, ग्लानि, प्रसन्नता, आकर्षण और उन्मत्तताकी मात्रा विशेष होती है, पर ज्ञानूके इस स्नेहमें कोई भी बात नहीं थी; थी केवल प्रसन्नता—सो भी बहुत ही साधारण। जब कभी बिटिया सामने पड़ जाती तो ज्ञानूके भीतर अचानक और अनिश्चित प्रसन्नता उत्पन्न हो जाती थी। किन्तु इसका रहस्य ज्ञानूकी

समझमें नहीं आया था और न तो उसने कभी इसके समझनेकी चेष्टा ही की थी। वास्तवमें यह बात ज्ञानूके लिए विश्व-पहेलीकी भाँति दुर्बोध्य थी, वह चेष्टा करके भी इसे न समझ पाता। रमेशकी बात सुनकर ज्ञानूको मानो उस अगम्य वस्तुका पता लग गया। उसने पूछा,—क्यों भाई रमेश, यह लड़की पण्डित-जीकी कौन है? अबतक तो मैं इसे पण्डितजीकी पुत्री ही समझता था।

रमेशने सरल भावसे कहा,—यह पण्डितजीकी दौहित्री है। लड़की अनुपम रूपमती और सलज्जा है। देखो, अभी उसकी दस ही ग्यारह वर्षकी अवस्था है किन्तु कैसे कायदेसे रहती है।

ज्ञानदत्तने निराशापूर्ण लम्बी साँस लेकर कहा,—पर जैसा तुम कहते थे, वैसा होना असम्भव है।

रमेशने पूछा,—क्यों?

ज्ञानदत्तने कहा,—इसलिए कि मेरा विवाह बाबूजी ठीक कर चुके होंगे और यहाँ पण्डितजी शायद अभी विवाह न करेंगे।

रमेशने कहा,—विवाह ठीक होनेसे क्या हुआ, होगा तो फागुनके बाद ही। अभी चार महीने हैं; यत्न करनेसे सबकुछ हो सकता है, देखो मैं चेष्टा करूँगा।

ज्ञानदत्तने मूक-भावसे कृतज्ञता प्रकट की। रमेशने समझ कर लिया। ज्ञानदत्तने मन-ही-मन यह स्थिर कर लिया कि जबतक रमेश प्रयत्नसे निराश न होगा, तबतक मैं कहीं ब्याह न

करूंगा। इधर रमेशने अपने मनमें बहुत देरतक चिन्तन करनेके बाद यही निश्चय किया कि किसी दिन पण्डितजीसे इसके लिए साधारण रीतिसे चर्चा करके उनकी रुचि अनुकूल होनेपर स्पष्ट कहूँगा।

इस प्रकार बहुत कुछ सोचते विचारते दोनों ही अपने-अपने घर चले गये।

तीन-चार दिन बीत गये, चिड़िया दिखलायी न पड़ी। ज्ञानदत्तका हृदय व्याकुल हो उठा। उसने रमेशसे कहा,—जान पड़ता है, वह आजकल यहाँ नहीं है।

रमेशने कहा,—तुम्हें कैसे मालूम?

ज्ञानदत्त—दिखलायी नहीं पड़ रही है।

रमेश—पहले भी तो वह महीनों बाद दिखलायी पड़ती थी और रहती थी घरमें ही।

ज्ञानदत्त—भाई रमेश, उसे न देखनेपर पहले तो मुझे बिलकुल चिन्ता नहीं होती थी, पर अब तो चार ही दिनमें मेरा हृदय न जाने कैसा हो रहा है।

रमेशने कहा,—इस तरह अपने मनको तन्मय करना ठीक नहीं। वह घरमें ही है, घबराओ मत।

ज्ञानदत्त चुप हो गया। हफ्तेभर बाद ही घरसे एक आदमी बुलानेके लिए आ गया। परसों ही ज्ञानदत्तको घर जाना पड़ेगा। किन्तु उसकी सूरत अबतक दिखलायी न पड़ी। ज्ञानदत्त बड़े तड़के उठा और रमेशके घर गया उससे

एकान्तमें कहा,—मुझे कल जाना पड़ेगा। आज पता लगाओ कि वह कहाँ गयी है।

रमेशने भानूके हृदयका भाव समझ लिया। कहा,—अच्छा तुम बैठो, मैं अभी पता लगाये आता हूँ।

यह कहकर रमेश पण्डितजीके घर गया। इधर उधरकी दो-चार बातें होनेके बाद उसने पूछा,—आजकल बिटिया दिखलायी नहीं पड़ रही है पण्डितजी! क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है।

पण्डितजीने कहा,—तुम्हें नहीं मालूम बेटा? वह तो अपने घर गयी न। यह तो तुम जानते ही हो कि बिटिया मेरी कन्याकी पुत्री है।

रमेशने कहा,—जी हाँ, यह तो मैं बहुत दिनोंसे जानता हूँ।

पण्डितजी—विन्ध्यवासिनीका दर्शन करनेके लिए उसके घरकी स्त्रियाँ जानेवाली थीं। आज दस दिन हुए, बुलानेके लिए बड़ा लड़का आया था, उसीके साथ चली गयी। कहकर तो गयी है कि, "मैं पन्द्रह दिनमें चली आऊँगी नानाजी" पर मैं समझता हूँ कि अब फागुन-चैततक वह न आवेगी।

रमेशने चकित होकर पूछा,—सो क्यों?

पण्डितजीने कहा,—उसका विवाह ठीक होगया है। फागुनमें ही होनेवाला है। इसलिए जहाँतक मैं समझता हूँ अब विवाह हो जानेके बाद ही वह यहाँ आ सकेगी।

इतना सुनते ही रमेशकी सारी आशाओंपर पानी फिर

गया । मानो उसका कुछ खो गया, हृदय अस्थिर हो उठा । और भी बहुतसी बातें पूछनेके लिए वह उत्सुक था किन्तु अनुचित समझकर पूछनेका साहस नहीं कर सका । थोड़ी देरतक अन्य-मनस्क होकर बैठा रहा, बाद आज्ञा लेकर घर वापस आया । चेहरा बिलकुल उतरा हुआ देखकर ज्ञानूने पूछा,—क्यों रमेश, तुम इतने उदास क्यों हो ?

रमेशने कोई उत्तर न दिया, मानो उसने कुछ सुना ही नहीं । ज्ञानदत्तने फिर पूछा,—कुछ बतलाया नहीं रमेश, क्या बात है !

रमेशने कहा,—क्या बतलाऊं ? क्या तुमने कुछ पूछा है ?

ज्ञान—यही कि, उदास क्यों हो ?

रमेश—दुःख है कि बिटियाका ब्याह कहीं अन्यत्र ठीक होगया ।

ज्ञान—तो इसमें दुःख काहेका ?

रमेश—जोड़ी बिगड़ गयी । यदि पहले इसपर ध्यान दिया गया होता तो सब ठीक हो जाता ।

"अच्छा अब इसकी चर्चा छोड़ो, प्रारब्धमें जो कुछ लिखा रहता है, वही होता है ।" यह बात ज्ञानदत्तने एक शोकपूर्ण दीर्घ निःश्वास छोड़कर कही ।

सच है ! किसी इच्छाकी पूर्ति न होनेपर मनुष्यको बड़ा ही दुःख होता है । इसीसे वेदान्त-ग्रन्थोंका वचन है कि सुख-दुःख कोई वस्तु नहीं; इच्छाकी पूर्तिही सुख है तथा विफलता ही

दुःख है। अतः बुद्धिमानोंको इच्छाओंसे निवृत्त होना चाहिए। यदि इस बातका ज्ञान उक्त दोनों लड़कोंको होता, तो ऐसी व्यर्थकी पीड़ा उन्हें कदापि न होती !

रमेशने पूछा,—तुम कब जाओगे? वापस कबतक आओगे?

ज्ञान—कल जाऊँगा और सम्भवतः ८-१० दिनमें लौट आऊँगा। मेरा अनुमान है कि देखुहारोंको दिखलानेके लिए ही बाबूजीने बुलाया है; क्योंकि अभी लग्न तो है नहीं, फिर बुलाने-की जरूरत ही क्या थी।

पाँचवाँ परिच्छेद

ज्ञानदत्त ठीक सातवें दिन काशी वापस आये। भेंट होने-पर रमेशको मालूम हुआ कि ज्ञानदत्तकी शादी ठीक होगयी। महीनों बीत गये, पर बिटियाकी सूरत दिखलायी न पड़ी। बड़े यत्नसे धीरे-धीरे ज्ञानदत्तने बिटियाको भुला दिया। उसने अपने मनको बहुत धिक्कारा। परायी लड़कीपर आँख गड़ाना, उसे पानेके लिए दुखी होना, अपने भविष्यको अन्ध-कारमय बनाना है। इस प्रकार सोचकर स्वाभिमानी ज्ञानदत्त अपने मनको रोकनेमें सफल हुआ। फिर तो कभी उसकी चर्चा ही न करता। वास्तवमें दृढ़-प्रतिज्ञ बालक ज्ञानदत्तके

लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं। अब तो उसकी किशोरा-वस्था है, बहुत कुछ समझने-बूझनेकी शक्ति हो चली है; जब वह सात वर्षका था, तभी उसने ऐसे ऐसे अपूर्व कार्य किये थे कि लोगोंको चकित हो जाना पड़ा था। यहांपर उसके एक कार्यका उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा।

गर्मीका दिन था। संध्या हो जानेपर भी भुवन-भास्करकी प्रचण्ड किरणोंसे पृथिवी-मण्डल आगपर चढ़े हुए तवेकी भांति तप रहाथा। ग्रीष्मकी इस यौवनावस्थामें मनुष्य-पशु-पक्षी-की कौन कहे, छाया भी छायाकी चाह कर रही थी। ज्ञानदत्त स्कूलसे वापस आकर दरवाजेपर बैठा हुआ था। ग्वाला आया और बछड़ा छोड़कर दूध दुहनेके लिए गयाकी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी ही देरके बाद आने वाली दिनभरकी बिछुटी गाय रंभाती हुई आकर खड़ी होगयी। बच्चा भोंड़ा मार-कर माताका स्तन पान करने लगा। इतनेमें ग्वालेने बछड़ेको हटाकर खूंटेमें बांध दिया और दुधहंड़ि लेकर दूध निचोड़ने लगा। रुचि हो तो है, न मालूम क्यों बेचारा छटक गयी। ग्वालेने दो-चार घूंसे और चार-छः डंडे कसकर जड़ दिये। मारे भयके इच्छा न रहते हुए भी गो-माता खड़ी होगयीं। ग्वाला दूध रखकर अपने घर चला गया। बालक ज्ञानदत्त यह सब लीला बड़े गौरसे देख रहा था। गऊकी निःसहायावस्था और दुर्दशा देखकर उसकी आंखोंसे खूनके आंसू गिर पड़े। उसके पिता और बड़े भाई भी दरवाजेपर मौजूद थे। ग्वालेने कसाईकी

तरह गऊको पीटा, पर किसीने कुछ नहीं कहा, इससे उसे और भी गहरी चोट लगी। सोचने लगा,—हाय, मनुष्य कितना स्वार्थी और निष्ठुर है!

खाने-पीनेका समय हुआ, दाईके बुलानेपर ज्ञानदत्त खाने गया। माता देवकीने कटोरीमें औटाया हुआ दूध लाकर सामने रखा। ज्ञानदत्तने बहुत कहने सुननेपर भी उसे छुयातक नहीं। यह किसीको मालूम न हुआ कि कारण क्या है। जब तीन-चार दिन बीत गये, तब मातृ-स्नेह अधीर हो उठा, माताके बार-बार पूछनेपर ज्ञानदत्तने कहा,—इसके लिए गौओंको इतना कष्ट पहुँचाया जाता है, यह मुझे अबतक मालूम न था, माँ!

माताने विस्मयान्वित होकर पूछा,—कैसा कष्ट बेटा, मेरी समझमें नहीं आया। क्या तुम्हें किसीने कुछ कहा है?

ज्ञानदत्तने कहा,—मुझे किसीने कुछ नहीं कहा है।

माता—तो फिर?

ज्ञानदत्तने सारा हाल कह सुनाया। अन्तमें यह भी कहा कि,—मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अब कभी भी दूध न खाऊँगा। इसके लिए अब आजसे तुम हठ न करना।

देवकी अपनी विद्या-बुद्धिभर बच्चेको समझाकर हार गयीं। फल कुछ भी न हुआ। बाद उन्होंने स्वामीसे कहा। इस घटनाने विराट् रूप धारण कर लिया। बहुत उपदेश देने तथा मनानेपर भी ज्ञानदत्त अपने प्रणसे विचलित न हुआ। अन्तमें शम्भूदयालने कहा,—अच्छा यदि तू दूध नहीं खायगा तो अब

घरके सबलोग दूध खाना छोड़ देंगे।

शम्भूदयालने सोचा था कि ऐसा कहनेपर ज्ञानदत्त अवश्य पिघल जायगा। पर फल उसका उल्टा हुआ। उसने बड़े जोरसे खिलखिलाकर हँसते हुए कहा,—तब तो और भी अच्छी बात है बाबूजी। मैं तो यह चाहता हूँ कि गो-माताको इतना दुःख देकर दुहा हुआ दूध संसारका एक भी आदमी पान न करे।

अन्तमें एक दिन शम्भूदयालने ज्ञानदत्तको गोदमें बिठाकर बड़े प्रेमसे अन्यान्य बातें करते हुए कहा,—मैंने तेरे लिए एक बड़ी सुन्दर गाय मँगानेका बिचार किया है बेटा, तू उसकी सेवा करेगा न?

ज्ञानदत्तने कहा,—मैं दूध तो खाऊँगा नहीं बाबूजी, फिर आप मेरे लिए गऊ क्यों मँगाते हैं?

शम्भू—उसका दूध क्यों नहीं खाओगे?

ज्ञान—इसलिए कि अब मैं कभी दूध न खाऊँगा।

शम्भू—इसीलिए न कि गऊको कष्ट पहुँचाकर दूध दुहा जाता है।

ज्ञानदत्तने कहा,—हूँ।

शम्भू—मगर उस गऊकी सेवा तो तुम अपने हाथसे करोगे। उसे कोई भी आदमी कष्ट न दे सकेगा। तब तो उसका दूध पियोगे न?

ज्ञानदत्तके मनमें यह बात बैठ गयी। बहुत देरतक सोचने-

बिचारनेके बाद कहा,—लेकिन वह गऊ मेरे सामने दुही जायगी।

शम्भूदयालने प्रसन्न होकर कहा—हाँ हाँ, रोज तुम्हारे सामने दुही जायगी।

इसके बाद शम्भूदयालने एक अच्छीसी गऊ मँगवा दी। ज्ञानदत्त उसकी सेवा करने लगा और दूध पीने लगा। किन्तु दूसरी गऊका दूध उसने अबतक ग्रहण नहीं किया और न बाजारकी बनी हुई कोई चीज़ ही कभी खायी।

उस समय अल्प-वयस्क ज्ञानदत्तकी इस दृढ़ प्रतिज्ञाको देखकर बस्तीके तमाम लोगोंको दंग रह जाना पड़ा था। इस प्रकार प्रतिज्ञापर अटल रहनेवाले ज्ञानदत्तके लिए बिटिया-को भुला देना कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

दिन जाते देर नहीं लगती। स्कूलके ग्रीष्मावकाशमें ज्ञान-दत्तका विवाह सकुशल होगया। उस समय स्कूल खुलने-में बीस दिनकी देर थी। ब्याहके बाद ज्ञानदत्तके जीवनमें परिवर्त्तन होगया। जो ज्ञानदत्त कभी किसीकी ओर ताकता नहीं था, वही अब दिनभरमें दस पन्द्रह बार किसी-न-किसी बहाने घरमें पहुँचने लगा। उसकी वृत्ति सदैव नव-वधूके दर्शनकी ओर झुकी रहने लगी। किसी-किसी दिन तो वह सफल होता और किसी दिन उसकी झलक भी न पाता। एक दिन दोपहरके समय बहू कोठेपर सोनेका प्रबन्ध कर रही थी। उसी समय सीढ़ीपर किसीके चढ़नेकी आहट

मिली। झटपट सँभलकर बहू कोठरीमें जाने लगी। तबतक ज्ञानदत्त सामने आ गया। बहूकी कद तथा हाथ-पैरकी गढ़न और धीमी चाल देखकर ज्ञानदत्त एकदम रुक गया और उसके हृदयमें गहरा धक्का लगा। आज फिर उसे बिटियाकी याद आ गयी। सोचने लगा—सब कुछ वैसा ही है हाथोंकी अँगुलियाँ भी बिलकुल वैसी ही हैं। अहा, यदि वही होती तो बड़ा अच्छा होता!

थोड़ी देरतक स्तब्ध होकर ज्ञानदत्त वहीं खड़ा रहा। बहूके पास जाकर सन्देह-निवृत्त करनेकी उत्कण्ठा प्रबल होगयी थी, किन्तु आगे पैर बढ़ानेका साहस न हुआ। लाचार होकर सन्देहको साथ लिए ज्ञानदत्त नीचे उतर आया। यदि किसी-के देखनेका भय न होता तो वह अवश्य सन्देह दूर करके ही छोड़ता, पर वह स्थान खतरेसे खाली नहीं था। वह अपनी स्त्रीके पास खड़ा रहता और कोई वहाँ पहुँच जाता, तो वह क्या उत्तर देता? लोग उसे क्या कहते? अच्छा, यदि इतनी लज्जा थी, तो फिर वह कोठेपर गया क्यों? वास्तवमें वह बहूको देखनेके अभिप्रायसे ऊपर नहीं गया था। बहू कोठेपर है, यह तो उस बेचारेको मालूम भी न था। वह तो योंही किसी कामसे ऊपर गया था, वहाँ जानेपर यह घटना होगयी।

बीस दिनमें नव-बधू-दर्शन-श्रद्धा प्रगाढ़ होगयी, मनवांछित दर्शन न मिलनेके कारण ज्ञानदत्तके हृदयका सन्देह भी दूर न हुआ। हृदय-पिपासा बनी ही थी कि उसे काशीके लिए

प्रस्थान करना पड़ा। स्कूल खुलनेका समय आ गया। रमेशसे मिलनेपर मालूम हुआ कि: बिटियाका विवाह होगया, पर अभीतक वह यहाँ नहीं आयी है। इतना सुनते ही एक सहारा था, वह भी टूट गया। पलभरका बीतना ज्ञानदत्तके लिए युग-के समान होगया। जो ज्ञानदत्त पहले अपने क्लासमें सबसे अच्छा लड़का समझा जाता था, वही अब सबसे गन्दा समझा जाने लगा। पढ़ने-लिखनेमें उसका तनिक भी जी न लगता। टीचरोंके शब्द अब उसे रसहीन, कड़वे और बुरे मालूम होने लगे। उसमें यह विचित्र परिवर्तन देख रमेशको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। महीनेभरके बाद पंडितजी भी ज्ञानदत्तकी शिथिलताका अनुभव करने लगे। चिन्ता-ग्रस्त होनेके कारण ज्ञानदत्तका गुलाबसा चेहरा भी पीला पड़ गया। मित्रकी बदनामी रमेशके लिए असह्य होगयी। उसने भी उसे बहुतेरा समझाया। पर ज्ञानदत्त यही मूक-उत्तर देता कि,—"मैं सारे अपमानोंको सहन करूँगा, पर उसे चित्तसे न उतारूँगा। चेष्टा करके भी नहीं उतार सकता, विश्वास मानो।" रमेश अपने मित्रका मौन-उत्तर समझनेमें अभ्यस्त था। यद्यपि ज्ञानदत्तका स्वरमय उत्तर यह मिलता था कि,—"चेष्टा तो कर रहा हूँ" तथापि वह समझ जाता था कि "तुम चेष्टा नहीं कर रहे हो।" अन्तमें खिन्न होकर रमेश कह बैठता,—हाय रे, बाल-विबाह! तेरा सत्यानाश हो! तूने ही मेरे मित्रका जीवन चौपट किया!

नित्यकी भाँति आज भी दोनों लड़के पंडितजीके पास पढ़नेके लिए आये। कमरेमें पहुँचते ही बिटियापर नजर पड़ी। न-जानें क्यों ज्ञानदत्तका हृदय धकधकाने लगा। उसके हृदय-की उस धकधकाहटमें, आनन्द था, संकोच था, स्मृत्याभास था, और भी न-जानें क्या-क्या था। वह पीछे पैर लौटना ही चाहता था कि पंडितजीने स्नेह-सिंचित स्वरमें पुकारा,—आओ बेटे! अब तो ज्ञानदत्तको कड़ा दिल करके पंडितजीके पास जाना ही पड़ा। इधर बिटिया दोनों पूर्व परिचित लड़कोंको आते देखकर पहले ही आड़में चली गयी थी। पंडितजीने न जानेके लिए कहा भी नहीं। कहते कैसे? भला व्याही लड़की किसी बाहरी आदमीके सामने क्योंकर हो सकती है?

मानव-स्वभावकी यह कैसी माधुर्य-पूर्ण विडम्बना है! जो बिटिया पहले निःसंकोच भावसे ज्ञानू और रमेशके सामने आती थी, कभी-कभी बाल-स्वभावानुसार कलह भी किया करती थी, वही अब छिपकर रहती है। उसके छिपनेमें बनावट नहीं है, असलीयत है। सचमुच ही अब उससे इनलोगोंके सामने नहीं आया जाता। यदि कभी कोई आवश्यकता पड़ जाती है तो जाती अवश्य है, पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह लज्जाके मारे गड़ी जा रही है। इधर ज्ञानदत्त और रमेशका भी वही हाल है। पहले प्यास लगनेपर दोनों ही बिटियासे पानी माँग लेते थे, संकोच-रहित होकर बातचीत करते थे, किन्तु अब उसकी ओर दृष्टि करनेका भी साहस नहीं होता।

वास्तवमें दोनों ओरका यह संकोच-भाव ही यौवनावस्था-के आगमनका द्योतक है। मानव-जातिकी बाल्य-सरलता यहीं दुर्लभ होती है—सदाके लिए प्रच्छन्न हो जाती है; स्वाभाविक कोमलता और निष्कपटताकी यहीं इतिश्री होती है, इसी समय दिव्य-लोक छूटता है और कपट-पूर्ण मर्त्य-लोकमें पदार्पण होता है। नाना प्रकारकी वस्तुएँ स्वयमेव प्रादुर्भूत हो जाती हैं। मानव-जगतके मानस-कोषका प्रत्येक शब्द इसी अवस्थासे अपना अर्थ-कलेवर क्रमशः बदलने लगता है और कुछ ही दिनोंमें शब्दोंकी परिभाषा परिवर्त्तित हो जानेके कारण दूसरा कोष तैयार हो जाता है। पहले शृंगारकी परिभाषा कुछ और ही रहती है, पर अब कुछ और हो जाती है; पहले मैत्री शब्द-का अर्थ भिन्न रहता है, किन्तु अब दूसरा हो जाता है। यही कारण है कि ज्ञानदत्त और बिटियाके सरल-स्नेहका अर्थ भी दोनोंके हृययोंमें बदल गया। अब उन दोनोंके बीच यौवना-वस्थाकी पुष्ट दीवार खड़ी होने लगी। शीघ्र ही दीवार इतनी ऊँची हो जायगी, जब एँड़ी ऊँची करके भी कोई एक दूसरे-को न देख सकेगा। इसीसे आज ज्ञानदत्तको देखते ही बिटिया खिसक गयी और बिटियाको देखकर ज्ञानदत्त ठमक गये। इस प्रकार दो-तीन महीने बीत गये। यदि गिना जाय तो शायद इन तीन महीनोंके भीतर ज्ञानदत्त और बिटियाका आमना-सामना चार-पाँच बारसे अधिक न हुआ होगा—यद्यपि ज्ञान-दत्त प्रतिदिन पंडितजीके यहाँ पढ़ने जाता था।

एक दिन संध्या समय प्रतिदिनकी भाँति दोनों लड़के पढ़ने आये। आज बड़ी अद्भुत बात हुई। वह यह कि समीप-में पहुँचते ही पण्डितजीने आगे बढ़कर बड़े प्यारसे पकड़कर ज्ञानदत्तको अपने पास बिठानेकी चेष्टा की। ज्ञानदत्तको आश्चर्य्यके साथ हिचकिचाहट मालूम हुई। आश्चर्य्य इसलिए हुआ कि पण्डितजी ऐसा तो कभी नहीं करते थे, फिर आज ऐसा क्यों कर रहे हैं! और हिचकिचाहटका कारण यह था कि इतने बड़े आदमीकी बराबरीमें कैसे बैठा जाय। किन्तु ज्ञानदत्त-के हृदयका भाव पण्डितजीसे छिपा न रहा। उन्होंने कहा,—बैठो बेटा, संकोचकी जरूरत नहीं। मुझे तो जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

ज्ञानदत्त संकोचके साथ बैठ गया, पर क्या रहस्य है, यह उसे अबतक ज्ञात न हुआ—पूछ भी न सका। तबतक रमेशने आश्चर्य-चकित होकर पूछा,—सो क्या पण्डितजी?

पण्डितजीने हँसकर कहा,—तुम्हें नहीं मालूम?

रमेशने कहा,—जी नहीं।

पण्डितजी,—ज्ञानदत्तका विवाह कहाँ हुआ है, नहीं जानते?

रमेशने सशंकित होकर कहा,—मैंने यह बात ज्ञानूसे अब-तक पूछी ही नहीं।

पण्डितजी,—पूछकर ही क्या करते; मेरा तो अनुमान है कि शायद यह बात अबतक ज्ञानूको भी नहीं मालूम है। (ज्ञानदत्तकी ओर मुख करके) क्यों बेटा ठीक है न?

ज्ञानदत्तने 'हाँ' 'ना' कुछ भी नहीं कहा। पण्डितजीने रमेशकी ओर मुख करके कहा,—बिटियाका विवाह ज्ञानदत्तके ही साथ हुआ है। यह भेद मुझे कल मालूम हुआ।

ज्ञानदत्तकी छाती धड़कने लगी; आह्लादकी सीमा न रही। रमेशका हृदय भी पुलकित हो उठा। पूछा,—यह बात आपसे किसने कही पण्डितजी?

पण्डितजीने कहा,—मैंने कई तरहसे ठीक-ठीक पता लगा लिया है, इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं है।

रमेश—अच्छा, क्यों पण्डितजी, क्या आप बिटियाके व्याहमें नहीं गये थे?

पण्डितजी—गये तो थे।

रमेश—वहाँ आप ज्ञानदत्तको नहीं पहचान सके?

पण्डितजी—कैसे पहचानता बेटा! एक तो अब आँखें स्वाभाविक ही कमज़ोर होगयी हैं, दूसरे मैं जनवासेमें गया भी नहीं।

रमेशने ज्ञानदत्तसे पूछा,—क्यों ज्ञानू तुम्हारे ससुरका क्या नाम है और वह किस गाँवके रहनेवाले हैं?

ज्ञानदत्तने ससुरका नाम लेनेमें संकोच किया। कहा,—वह बिदापुरके रहनेवाले हैं।

रमेशको बिटियाके पिताका नाम मालूम था, अतः उसने पूछा,—उनका नाम पण्डित सदायतनजी है?

ज्ञानदत्तने निम्न-दृष्टि किये सिर हिलाकर 'हाँ' सूचित किया।

पण्डितजी और रमेश टकटकी लगाकर एक दूसरेकी ओर निहारने लगे। थोड़ी देरतक किसीके मुखसे कोई शब्द न निकला। बाद पण्डितजीने कहा,—अब तो तुम्हारा सन्देह दूर होगया न रमेश ?

रमेशने कहा,—जी हाँ ।

इसके बाद पण्डितजीने टीका लगानेका सामान मँगवाया और बड़े हर्षसे ज्ञानदत्तके मस्तकपर रोली-अक्षत लगाकर दक्षिणा दी। दक्षिणामें पाँच लरकी सोनेकी सिकड़ी थी, नग-जटित बहुमूल्य अँगूठी थी, कुछ कपड़े थे, और पाँच गिन्नियाँ थीं।

पाठकगण समझ गये होंगे कि बिटियाका ही असली नाम रमा है। अभीतक रमाको भी यह बात मालूम नहीं थी। क्योंकि व्याहके समय पति-गृहमें जाकर वह केवल डेढ़ महीनेतक रही थी। नव-वधू रमा घरमें बन्द पड़ी रही। इधर-उधर झाँककर अपनी बदनामी कैसे कराती ? ज्ञानूका नाम भी लोग नहीं लेते थे। केवल बबुआ कहते थे। इसलिए वह कुछ भी न जान सकी। यदि दो-एकबार घूँघटके भीतरसे कनखियोंसे देखा भी हो, तो उससे पहचानना कठिन है। टीका वगैरह करनेके बाद ज्ञानदत्त तथा रमेशके बिदा होनेपर जब पंडितजीने अपनी स्त्री-से सब समाचार कहा, तब घरमें बैठी रमा सारी बातें ताड़ गयी।

घण्टे-दो-घण्टेके भीतर ही यह बात रमाकी सब सहेलियों-को मालूम होगयी। फिर क्या था, सभोंने रमाके नाकोंदम

कर दिया। रमा भी ऊपरसे नाक-भौंह सिकोड़ती हुई भीतर-ही-भीतर विकसित हो उठी। क्योंकि व्याहसे पहले उसकी भी ऐसी ही इच्छा थी कि ज्ञानदत्तके साथ विवाह हो। यद्यपि यह भाव उसमें अपने-आप ही पैदा नहीं हुआ था—बल्कि सयानी स्त्रियोंके कहनेसे हुआथा, तथापि ज्ञानदत्तके अलौकिक सौन्दर्यने उस बालिकापर पूर्णरीतिसे अधिकार जमा लिया था, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यहाँतक कि विवाह हो जानेके बाद भी रमा ज्ञानदत्तके सौन्दर्य-लोभको सम्वरन नहीं कर सकी थी। यदि रमा सयानी होती तो अवश्य ही अपने हृदय-का भाव अपनी सखियोंके द्वारा कहलवा देती और सफलता न होनेपर पश्चात्तापसे अधीर हो जीवित रहते हुए भी मृत-प्राय हो जाती, किन्तु साध्य था कि वह उस समय अबोध बालिका थी, उसका हृदय प्रणय-रहस्य-ज्ञानसे अनभिज्ञ था। फिर भी यह समाचार जानकर उसने दिव्य :और अगाध आनन्दका अनुभव नहीं किया, यह कदापि नहीं कहा जा सकता।

वास्तवमें रमाकी अवस्था तो कम थी, पर बुद्धि विशाल थी। इतनी छोटी उम्रमें ही वह लघुकौमुदी समाप्त करके सिद्धान्त पढ़ रही थी; अंग्रेजीकी भी दो रीडरें खतम होगयी थीं। उसका पढ़ना-लिखना नानाके घर ही होता था। पण्डित अमरनाथजी उसे स्वतः पढ़ाते थे। उनके कोई लड़का नहीं था, अतः रमाको अपने यहाँ रखते और प्यार करते थे।

इसके बाद ज्ञानदत्तने पण्डितजीके यहाँका आना बन्द कर

दिया। पण्डितजीने उसके डेरेपर जाकर कई बार आनेका अनुरोध किया, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। कभी-कभी जानेकी इच्छा होती भी तो यह सोचकर वह रुक जाता कि यदि घरके लोगोंको यह बात मालूम हो जायगी तो मैं कौन-सा मुँह दिखलाऊँगा।

धीरे धीरे ज्ञानदत्तका हृदय इन्हीं सब बातोंकी उधेड़-बुन करनेमें ग्रस्त होगया। जो ज्ञानदत्त पहले अपने क्लासमें क्या स्कूलभरमें सबसे अधिक प्रतिभाशाली समझा जाता था, वही अब साधारण छात्र समझा जाने लगा। पढ़नेमें दिल न लगनेके कारण स्कूलमें उसे अपमानित होकर जीवन व्यतीत करना भार होगया। सालभरतक किसी प्रकार और बीता, बाद ज्ञानदत्तने पढ़ना-लिखना छोड़कर अपने जीवनको स्त्री-पाशमें जकड़ दिया। वाहरे बाल-विवाह! तेरा सत्यानाश हो! ओफ्! ज्ञानदत्त सरीखे होनहार बालकका पढ़ना तेरे ही कुचक्रने छुड़ाया। वह दिन कब आवेगा, जब तेरा अस्तित्व भारतमें न रह जायगा?

बस यही रमा और ज्ञानदत्तका संक्षिप्त पूर्व-परिचय है और यही कारण है कि ज्ञानदत्त और रमामें एक दूसरेके प्रति प्रगाढ़ और अलौकिक प्रेम था। एक तो दाम्पत्य सम्बन्ध, दूसरे एक दूसरेके प्रति स्वाभाविक स्नेह और तीसरे अनुकूल अवस्था! ऐसी दशामें रमाकी स्थितिका अनुभव विचारवान पाठक भलीभाँति कर सकते हैं।

छठा परिच्छेद

वर्षाका अन्त है। आकाश स्वच्छ हो चला है, किन्तु उदासीन मेघ-खण्ड अब भी भूले हुए पथिककी तरह इधर-उधर भटक रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो ये मेघ धुनी हुई रुईकी भाँति अपना रंग दिखलाकर मानव-जगत्को शीतसे बचनेके लिए प्रबन्ध करनेकी सूचना दे रहे हैं। इन्हें देखकर भ्रम होता है कि किसी नभ-वासीकी उड़ी हुई रुई तो नहीं है! रात्रिके आठ बज गये हैं। कलकत्ताकी भव्य-अट्टालिकाओंके बीचकी लम्बी-चौड़ी सड़कें विद्युत्-प्रकाशसे इठला रहीं हैं। उनपर आने-जानेवाले आदमियोंके चेहरेसे प्रसन्नता टपक रही है। ऐसे समयमें एक आदमी अपने मकानकी छतपर बैठा हुआ दिनभरकी थकावट दूर कर रहा है। इतनेमें एक नौकर आया और मासिक पत्रका लिफाफा देकर चला गया। ज्ञानदत्तने अन्य-मनस्क होकर उसे खोला और चन्द्रमाके प्रकाशमें उलटना-पलटना शुरू किया। एक कविता, जोकि शरद ऋतुपर थी, उन्हें भली मालूम हुई। अक्षर महीन होनेके कारण कविता बड़ी कठिनाईसे पढ़ी गयी। पढ़ते ही उनका हृदय आनन्दकी लहरमें उद्वेलित हो नृत्य करने लगा। सम्भव है उस कवितामें पाठकोंको भी कुछ आनन्द मिले, अतः उस आनन्दसे वंचित

रखनेका अपराधी बनना ठीक नहीं। वह कविता इस प्रकार थी—

"फूले आस पांस कांस विमल विकास बास रही न निसानी कहूँ महिमें गरदकी।
रानत कमल दल ऊपर मधुप मैन छापसी दिखायी छबि विरह फरदकी॥
श्रीपति रसिकलाल आली बनमाली बिनु कछू ना जुगुति मेरे जीयके दरदकी।
हरद समान तन भयो है जरद अब करदसी लागती है चाँदनी सरदकी॥"

ज्ञानदत्तने इस कविताकी कई आवृत्तियाँ कीं। आखिरी लाइन उनके कलेजेमें चुभ गयी। पत्रिका उठाकर रख दी। थोड़ी देरमें साहित्यिक आनन्द भी भावुकतामें विलीन होगया। यौबनावस्थाने अधिकार जमाया। क्या सचमुच ही रमाका शरीर हल्दीकी तरह पीला पड़ गया होगा? जान पड़ता है, यह कविता रमा जैसी किसी तरुणीको देखकर ही लिखी गयी है। रमाको देखे पूरे दो वर्ष होगये। मारे संकोचके उसने कभी पत्र भी नहीं लिखा। किन्तु इसके लिए तो मैं भी उससे कम अपराधी नहीं हूँ। अच्छा, वह अपने दिलमें क्या समझती होगी? लोग उसे ताना भी मारते होंगे। हाय, भोली रमाको मेरे लिए ताने भी सहने पड़ते होंगे।—यही सब सोचते विचारते संयमी ज्ञानदत्तका हृदय रमासे मिलनेके लिए अधीर हो उठा। स्त्रीसे मिलनेके लिए इतना अधीर होनेपर भी ज्ञानदत्तके लिए 'संयमी' शब्दका प्रयोग किया जाना, सम्भव है बहुतसे पाठकोंको खटके। किन्तु इसमें खटकनेकी कोई बात नहीं, कालेजके छात्र (!) तो आठ ही दिनमें ज्ञानदत्तसे कहीं अधिक

अधीर हो जाते हैं। फिर दो वर्षके बाद अपनी प्रेयसीसे मिलनेकी प्रबल उत्कंठाका होना ज्ञानदत्तके संयमपर कैसे धब्बा लगा सकता है ?

बहुत कुछ सोचने-विचारनेके बाद ज्ञानदत्तने १०—१२ दिनमें घर जाना स्थिर किया। इतनेमें बारह बज गये। वह भोजन करनेके लिए उठना ही चाहते थे कि उनका नौकर छन्नू हाथमें बत्ती लटकाये एक आदमीको साथ लिए आ पहुँचा। ज्ञानदत्त ठमक गये। तबतक छन्नूने कहा,—ये आपके देशसे आये हैं।

ज्ञानदत्तने आश्चर्य-चकित होकर पूछा,—कौन ? कहाँसे ? इतना कहते ही उन्होंनेने आगन्तुक रामदीनको पहचान लिया। तुरन्त ही उल्लसित होकर उठे और झपटकर रामदीनको हृदयसे लगाया। थोड़ी देरतक दोनों स्तब्ध रहे। बाद रामदीनका कण्ठ खुला; शब्द हुआ,—कहौ ज्ञानू बबुआ, अच्छी तरह हौ न ?

इतने दिनोंके बाद अपने एक शुभचिन्तकको देखकर ज्ञानदत्तकी घिग्घी बँध गयी थी। रामदीनका घर उनके गाँवसे तीन मीलकी दूरीपर है। आस-पासके गाँवोंमें रामदीनकी बड़ी ख्याति है। यजमानी ही उनकी जीविका है। वह शम्भूदयालके समकालीन हैं। रामदीन बहुधा शम्भूदयालके घर आया करते थे, क्योंकि उन्हें सौ-दो-सौ रुपये सालकी यहाँसे आमदनी होती थी। सम्भ्रान्त कुलोत्पन्न ज्ञान-

दत्तको लोग मारे दुलारके ज्ञानू बबुआ ही कहा करते थे। किन्तु ज्ञानदत्त अपना यह नाम रामदीनके मुखसे सुनकर अपूर्व मिठासका अनुभव करते थे। ऐसे स्नेहीका अचानक दर्शन पा ज्ञानदत्तको कैसा आनन्द हुआ होगा, इसका अनुभव ज्ञानदत्तकी परिस्थितिके सहृदय पाठक ही कर सकते हैं;—लेखनीकी शक्तिसे बाहर है। हठात् ज्ञानदत्तको रामदीनके 'श'कार'का स्मरण हुआ। रामदीन दन्ती 'स' को तालव्य 'श' कहा करते थे। "बांशके पाश शरशोके खेतमें शत्तू शाग शड़प शड़प आपने खाया है न पण्डितजी" यह कहकर लोग उन्हें बनाया करते थे। इस बातकी याद आते ही ज्ञानदत्तको बोलनेका साहस हुआ, चेहरेपर किंचित मुस्कुराहट आयी। बोले,—जी हाँ, आपकी दयासे किसी प्रकार समय बीत रहा है। घरका हाल सुनाइये।

रामदीनने कहा,—शबलोग अच्छी तरह हैं, आपकी चिट्ठी पत्री न मिलनेशे दुखी हैं। अभी हालहीमें आपकी बीमारीका हाल मिला था, इशशे आपकी माँ घबराइ गयीं। तब भैया शाहबने हमशे कहा कि जाकरके जो है शो बुलाइ लियाओ।

ज्ञान—आप घरसे कब चले?

राम—कल्ह शंझा शमयके गाड़ीशे।

इसके बाद ज्ञानदत्तने एक एक करके घरके सब प्राणियों तथा गाँवके सुहृद-जनोंकी कुशल पूछी। अत्यल्प शिक्षित रामदीनने ठाटके साथ शकारका शड़प्पा लगाते ज्ञानदत्त-

के सारे प्रश्नोंका उत्तर दिया । कुछ खा-पीकर दोनों आदमी सो गये। सबेरे उठते ही ज्ञानदत्तने रामदीनके लिए भोजन बनवानेका प्रबन्ध किया और स्नानादिसे निवृत्त हो ट्यूशन-में चले गये। इधर लगभग दो महीनेसे ज्ञानदत्तकी स्थिति अच्छी है। पहले महीनेमें उन्हें सौ रुपयेकी आय ट्यूशनसे हो-गयी थी। किन्तु वे रुपये कपड़ा-लत्ता बनवाने तथा आवश्य-कीय सामान खरीदनेमें खर्च होगये । इस महीनेमें करीब तीन सौकी आय होनेवाली है। ये रुपये १०—१२ दिनमें ही मिल जायँगे। इसीके आधारपर उन्होंने घर जानेका निश्चय किया है।

ज्ञानदत्तके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त करनेके लिए पाठक अधीर होते होंगे, अतः उनका संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त लिख देना आवश्यक है। विवाह हुए पाँच ही छः महीने बीते थे कि चौदह वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अंग्रेजी मिडिल थर्ड डिवीजनमें पास होनेके कारण पढ़ना छोड़ दिया। जो लड़का डबल प्रमोशन ले, फर्स्ट होकर पारितोषिक ले, उसका थर्ड डिवीजनमें पास होना क्या साधारण दुःखकी बात है? पढ़ना छोड़नेके बाद ज्ञानदत्त घरपर रहने लगे। माँ-बापकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया। शम्भूदयाल इन्हें बहुत प्यार करते थे। आर्थिक चिन्ता रहते हुए भी वह यही सोचकर सदा प्रसन्न मुख रहते कि हमारा ज्ञानू अब पाँच-छः सालके बाद हाकिम होगा और ऊँची वेतन पावेगा। फिर सब कष्ट दूर हो

जायगा। इस बातको वह लोगोंसे कहा भी करते थे। ज्ञानदत्त-की भाभी प्रभाको उनका यह कहना सह्य न होता था। किन्तु उनकी उक्त प्रसन्नता अब न रही, प्रभाकी अभिलाषा पूर्ण हुई। जब बहुत तरहके प्रयत्न करनेपर भी वह ज्ञानदत्तको पढ़नेके लिए राजी न कर सके, तबतो मानो उनकी कमर टूट गयी। लोग कहते, पढ़नेवाले लड़कोंका ब्याह कभी न करना चाहिए। कलिकालमें स्त्रीका मुख देखते ही लड़के चौपट हो जाते हैं। शम्भूदयाल भी लोगोंका कथन नत-मस्तक हो स्वीकार करते। धीरे धीरे एक वर्ष बीत गया। अब ज्ञानदत्तको घरपर रहना भार होगया। एक दिन उनके बड़े भाई धर्मदत्तने पिताके सामने ही ज्ञानदत्तसे कहा,—कुछ काम-धन्धा भी देखा करो, बाबू बननेसे काम न चलेगा।

भाईकी यह बात ज्ञानदत्तके हृदयमें चुभ गयी। पिताका मौन रहना उन्हें और भी खला। बिना कुछ कहे वहाँसे उठकर अपने पढ़नेके कमरेमें चले गये। दरवाजा बन्द करके जीभर रोये। कुछ देरके बाद जब रुलाई रुकी, तब अपना भविष्य सोचने लगे। रह रहकर यही सोचते कि भैया ऐसा कहेंगे, यह स्वप्नमें भी आशा न थी। सच है, भाई किसीके नहीं होते। किन्तु बाबूजी भी तो कुछ नहीं बोले। क्या उन्हें भी भैयाका कहना रुचा? हो सकता है कि दोनोंकी रायसे यह बात कही गयी हो। इस प्रकार सोच बिचार करते संध्या होगयी। मरीचिमाली भगवान भास्करकी अन्तिम किरणोंसे वृक्ष अपनी

पत्तियों सहित सुनहले होगये। वृक्ष ही क्यों, समूची पृथिवी ही सुवर्णमय उद्भासित होने लगी। थोड़ी देरमें सूर्य भगवान-ने अपना सुनहलाफर्श समेट लिया, और संसारको काली चादर-से ढँक दिया। चिड़ियाँ भाग भागकर घोसलोंमें गयीं। बच्चे, माँकी गोदमें जा छिपे। सबलोग अपने-अपने ठिकाने आ गये। किन्तु ज्ञानदत्त यकायक न जाने क्या सोचकर घरसे बाहर हुए। कहाँ जायँगे, क्या करेंगे, कुछ निश्चय नहीं। हाँ यह निश्चय है कि वह घरसे चल पड़े। उनकी यह बेचैनी देख तारागण हँस उठे। ज्ञानदत्तने उनकी ओर ध्यान न दिया। थोड़ी ही देरमें रामपुर गाँवकी सीमा पार कर गये। अब उनके हृदयमें ग्लानिका पहला पट बन्द हुआ और दूसरा पट खुल गया। बाल्यावस्था होते हुए भी उनकी ज्ञान-गरिमा प्रशंसनीय थी। सोचने लगे,—भैयाका कहना यथार्थ है। संसारमें कोई किसीको बिठाकर नहीं खिला सकता। यदि मैं ही काम करता होता और मेरा कोई छोटा भाई निठल्ला बैठा रहता तो क्या मुझे अच्छा लगता? कदापि नहीं। व्यर्थ ही मुझे उनकी बातपर बुरा मालूम हुआ। प्रत्येक बातका अनु-भव मनुष्यको अपने ऊपर घटाकर करना चाहिए।

इस प्रकार नाना प्रकारकी बातें सोचते ज्ञानदत्त कलकत्ता पहुँचे। एक देशवासीके यहाँ उन्हें आश्रय मिला। दो महीने-तक बेकार बैठे रहे, कोई काम न लगा। यदि कोई काम मिलता भी तो मोटा—जमादारी आदिका। किन्तु ऐसा काम करनेके

लिए ज्ञानदत्तका हृदय तैयार न होता था। हो भी कैसे, ज्ञानदत्त किसी निर्धन पिताके पुत्र नहीं थे। उनका लालन-पालन भी अमीराना ढंगसे हुआ था। क्रमशः पासके रुपये खर्च होगये। अब ज्ञानदत्तके लिए दोही मार्ग रह गये। पहला यह कि यातो वह कोई नौकरी कर लें, या लज्जित होकर घर चले जाँय। ऐसी दशामें घर जाना ज्ञानदत्त सरीखे स्वाभिमानी व्यक्तिके लिए असम्भव है। उन्हें कलकत्तामें टुकड़ा माँगकर खाना स्वीकार है, दर दर ठोकरें खाते फिरना शिरोधार्य है, भूखों मर जाना स्वर्ग पहुँचनेके समान है, किन्तु घर जाना कदापि स्वीकार नहीं।

कहावत है कि "मरता क्या न करता।" ज्ञानदत्त दो दिन भूखे रह गये। उनका कमलसा मुख कुम्हिला गया, विशाल आँखोंकी किंचित् अरुणिमा भी बढ़कर अधिक रक्त होगयी। उन्होंने किसीसे यह बात नहीं कही और न किसीके आगे हाथ पसारा। मन-ही-मन स्थिर किया कि जैसे भी हो कल कोई-न-कोई काम अवश्य कर लेना चाहिए। यह सोचकर वह आज ही नौकरीकी खोजमें निकले। दस-पन्द्रह क़दम भी आगे नहीं गये थे कि अचानक एक रुपया सड़कपर पड़ा हुआ दृष्टिगत हुआ। दिलमें आया कि उठा लें, किन्तु हिम्मत न पड़ी। सोचा, कहीं ऐसा न हो कि दिल्लगी करनेके लिए किसी मसखरेने फेंक रखा हो। किन्तु उसकी लालचका सम्वरणकर वह आगे भी न बढ़ सके। यदि यह रुपया उन्हें

मिल जाता तो उनकी दो दिनकी क्षुधित जठराग्नि शान्त हो जाती और कलके लिए भी आधार हो जाता। खड़े-खड़े देखने लगे। जब बहुत देर होगयी और किसीने उस रुपयेको नहीं उठाया, —यहाँतक कि उसपरसे एक गाड़ी भी चली गयी, किन्तु कोई कुछ न बोला, तब उन्होंने साहस-पूर्वक लपककर उस रुपयेको उठा लिया। लोगोंकी नजरें बचाकर बड़े यत्नसे उन्होंने उसे जेबमें रख लिया और आगे बढ़े। जब थोड़ी दूर निकल गये, तब उनके हृदयकी धड़कन शान्त हुई। आनन्दका ठिकाना न रहा। हायरे दुर्दिन ! तेरी महिमा अपार है ! एक समय वह था, जब कि बालक ज्ञानदत्त अपने जेबखर्चके रुपयेमेंसे दस-पाँच रुपये निकालकर गरीब छात्रोंको दे देता था और यह सोचता था कि हाय, इतनेसे इस बेचारेका काम कैसे चलेगा ? और एक समय यह है कि आज स्वतः उसे एक रुपया पानेकी प्रसन्नता हो रही है।

साहस-पूर्वक उद्योग करते रहनेवालेकी रक्षा परमात्मा करते हैं। दस बजे राततक ज्ञानदत्त कलकत्ता महानगरीके गली-कूचोंमें फिरते रहे, नौकरी कहीं न मिली। रामराम, भला ऐसे भी कहीं नौकरी मिलती है। उन्होंने किसीसे एक आखर पूछा भी तो नहीं। उनकी समझमें तो यही न आया कि किससे क्या पूछें। शरीर थककर चूर होगया। लाचार हो डेरेकी ओर लौटे। किन्तु उनके चेहरेपर निराशा न थी, बल्कि आशाका एक अपूर्व आलोक था। जब दीनानाथ परमात्मा

भूखोंके लिए सड़कपर रुपया देते हैं, तब नौकरी कैसे न देंगे। यही सोचते ज्ञानदत्त अपनी गलीके चौराहेपर आये। एक हलवाईकी दूकानपर बैठकर वनस्पति घी (!) की वस्तुओंसे उदर-तृप्ति की और दो पैसेका एक हिन्दी दैनिक पत्र खरीद-कर डेरेपर आये। सड़ककी पटरीपर एक लालटेनके पास बैठ-कर अखबार पढ़ने लगे। आद्योपान्त समाचार पढ़ गये, पर नींद न मालूम हुई। फिर विज्ञापन-बहार लेने लगे। अचानक उनके कामकी चीज़ निकल आयी। उन्होंने नीचेकी लाइनें बड़े ग़ौरसे दो-तीन बार पढ़ीं—

आवश्यकता है—

एक ऐसे आदमीकी जो हिन्दी, उर्दू में पत्र लिख-पढ़ सकता हो। कुछ अंग्रेजी जानना भी जरूरी है। वेतन योग्यतानुसार। दिनके दस बजेसे दो बजेके भीतर नीचेके पतेपर पूछताछ की जा सकती है:—

मैनेजर, सुरेन्द्रमोहन कविराज औषधालय,
नं० ४ जकरिया स्ट्रीट, कलकत्ता।

फिर क्या था, आनन्दकी सीमा न रही। उठकर सोने चले गये। प्रतिदिन सोते समय आहें भरते थे कि हाय, घरका वह मखमली गद्दा व्यर्थ पड़ा होगा और मैं यहाँ चटाईपर सोता हूँ। किन्तु आज उन्हें इसका स्मरण ही न हुआ। रातभर नींद नहीं आयी। करवट बदलकर प्रातःकालकी प्रतीक्षा करने लगे। पलभरका बीतना युगके समान प्रतीत होता था।

भिनुसारी रात लेटे भी न रहा गया, उठकर बैठ गये। टट्टी गये, हाथ-मुँह धोया, कलमें पानी आनेमें देर थी, इसलिए गंगाजी नहाने चले गये। नौ बजेतक भोजन बना-खाकर जकरिया स्ट्रीटकी ओर चले। गन्तव्य स्थानपर पहुँचकर देखा कि फाटकपर सैकड़ों आदमी बैठे हैं। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि सबलोग उसी नौकरीके लिए आये हैं। हाय भगवान, देशकी इतनी गिरी दशा है! अब तो ज्ञानदत्तकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया। भला ग्रेजुएटको न रखकर अल्प-शिक्षित ज्ञानदत्तको कौन नौकर रखेगा? जीमें आया लौट चलना ठीक है। फिर सोचा, जब आ गये हैं तो बी० ए०, एम० ए० वालोंकी इस अंग्रेजी राज्यमें इज़्ज़त तो देख लें। हिन्दुस्तानी घसत्रसके अनुसार दस बजेके बदले सवा ग्यारह बजे मैनेजर साहब आये। चपरासीने लोगोंकी दरख्वास्तें समेटकर मैनेजरकी टेबुलपर रख दीं। इधर-उधर उलटकर मैनेजरने तीन आदमियोंको बुलवाया। उनमें एक ज्ञानदत्त थे, बाकी दो बी० ए० पास उम्मेदवार। मैनेजरके दिलमें ज्ञानदत्तके आवेदन-पत्रपर तरस आयी, अतः उन्हें चालीस रुपये मासिकपर रख लिया। सबलोग लौट गये। ज्ञानदत्त आजहीसे काम करने बैठ गये। थोड़े ही दिनोंमें ज्ञानदत्तकी नम्रता, सरलता एवं कार्य्य-कुशलताने मैनेजरपर अपना अधिकार जमा लिया।

संगतिका प्रभाव मानव-हृदयपर बहुत जल्द पड़ता है। रामपुरमें ज्ञानदत्तके सिवा किसी भी आदमीको अँग्रेजीका

ज्ञान न था, इसलिए वहाँ ज्ञानदत्त अपनेको महापंडित समझते थे। इस मिथ्या अहंमन्यताके कारण ही उनका पढ़ना भी छूट गया। किन्तु यहाँ जब बड़े-बड़े विद्वानोंकी बातें सुनने लगे, समाचार-पत्र पढ़ने लगे, तब मन-ही मन लज्जित होने लगे कि मैं कुछ भी योग्यता न प्राप्त कर सका। अब उनके दिलमें पढ़नेका शौक हुआ। जिस आदमीके यहाँ उन्होंने आश्रय-ग्रहण किया था, उसके यहाँ रहनेसे समयका दुरुपयोग अधिक होता था, अतः वह स्थान उन्हें छोड़ देना पड़ा। बारह रुपये मासिकका एक कमरा भाड़ेपर लेकर उसीमें रहने लगे। इस मकानमें सब कालेजके लड़के रहते थे। उन लड़कोंसे ज्ञानदत्तको बहुत कुछ सहायता मिलने लगी। तबतक नौकरी करते सात महीने बीत गये, बेतन भी साठ रुपया होगया। अब बीस रुपया मासिक-पर एक घंटा पढ़ानेके लिए एक अनुभवी तथा योग्य अध्यापक रखकर ज्ञानदत्त अंग्रेजी पढ़ने लगे। समाजार-पत्र भी प्रतिदिन अवश्य पढ़ा करते थे। सच्ची लगन थी, इसलिए तीन वर्षमें ही ज्ञानदत्तको अंग्रेजीकी खासी योग्यता होगयी। किन्तु इतने दिनोंमें बचत एक पैसेकी भी नहीं हुई। नौकरी लग जानेपर सात-आठ महीनेके बाद ज्ञानदत्त कभी-कभी खाली हाथ घर हो आया करते थे। दो-ढाई महीने रहकर फिर चले आते।

समयने पलटा खाया। औषधालय टूट गया। यदि वह चाहते तो दूसरी नौकरी कर लेते, क्योंकि अब उनमें खासी

योग्यता होगयी थी। किन्तु विद्याध्ययनका व्यसन इतना बढ़ गया था कि उन्होंने कोई काम न किया, केवल अपने जीवन-निर्वाहके लिए समाचार-पत्रोंमें लेख लिखकर थोड़ीसी आय कर लेते थे। इस प्रकार इधर दो वर्ष बीत गये, घर जाना तो दूर रहा, पिताके किसी पत्रका उत्तर भी न दे सके। इस समय वह तीन अंग्रेजोंको हिन्दी पढ़ाने जाते हैं, वहाँसे उन्हें ढाई सौ रुपये मिलते हैं तथा पचास रुपयेके दो मारवाड़ी ट्यूशन और करते हैं। आयके साथ ही खर्च भी एक महीनेसे बढ़ गया है। अब चालीस रुपया रहनेके कमरेका भाड़ा तथा पन्द्रह रुपये मासिक नौकरको देने पड़ते हैं।

रवीवारका दिन है। ज्ञानदत्त अपने पाँच-सात मित्रोंके साथ बैठे साहित्यिक आनन्द लूट रहे हैं। इनके तर्कीले मित्र बाबू गौरीशंकर खत्री एम० ए० एल० टी० ने कहा,—हाँ भाई उस दिनकी बात भले याद पड़ी—रावणके साथ कवियोंने क्या अन्याय किया है?

इतनेमें रामदीन काली-दर्शन करके लौट आये। ज्ञानदत्तने नौकरसे जलपान करानेके लिए आज्ञा देकर कहा,—मैंने अच्छी तरह मनन-पूर्वक ग्रंथावलोकन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि रावणके साथ कवियोंने अवश्य ही अन्याय किया है—वास्तवमें रावण इतना अत्याचारी नहीं था।

गौरीबाबूने पूछा,—सो कैसे?

ज्ञानदत्तने कहा,—यह बात सबको माननी पड़ेगी कि

रावण महा-पंडित था। यहाँतक कि घोर अत्याचारी कहने-वाले कविलोग भी उसके पाण्डित्यको नहीं उड़ा सके हैं। वेदोंपर लिखित रावण-महाभाष्य जगत्-प्रसिद्ध है और सबसे प्राचीन है। यह भी लोगोंको मानना ही पड़ेगा कि रावण भक्त भी असाधारण था, तभी तो उसने शिवजीको अपना मस्तक चढ़ा दिया था। वेदोंपर महा-भाष्य लिखने बैठना साधारण काम नहीं है; यदि होता तो रामायण और गीताकी तरह अबतक वेदोंपर भी सैकड़ों-हजारों भाष्य हो गये होते। अब सोचनेकी बात है कि, जो व्यक्ति इतने उच्च कोटिका विद्वान हो, इतने गहनातिगहन अत्यन्त सूक्ष्म विषयोंका निरूपण कर सकता हो तथा भक्ति-पूर्वक अपना शिरोच्छेदन कर डालनेमें भी न हिचकता हो, उस व्यक्तिका इतना बड़ा अत्याचारी होना क्या सम्भव है? क्योंकि अत्याचारी होना, तामसी प्रकृतिका लक्षण है और ब्रह्म-तत्वका निरूपण करना अथवा उसकी व्याख्या करना, तामसी बुद्धिवालेके लिए बिलकुल असम्भव है। मनुष्यकी बुद्धि तीन तरहकी होती है,—सात्विकी, राजसी और तामसी। सात्विकी बुद्धि ब्रह्मके सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूपका प्रत्यक्ष अनुभव करती है; राजसी, अनुभव करती है, किन्तु प्रत्यक्ष अनुभव नहीं; और तामसी बुद्धि दोनों ही अनुभवोंसे बंचित रहती है। अतः मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि रावणकी बुद्धि रजः-प्रधान थी, वह कुछ अत्याचारी अवश्य रहा होगा पर इतना नहीं जितना कि कवियोंने ठहराया है। यदि यह बात न होती, तो वेदोंकी

सूक्ष्म बातें उसकी समझमें कदापि न आतीं।

गौरीबाबूने व्यंग-भावसे कहा,—जान पड़ता है कि रावणने अपनी सभामें कवि-सत्कार नहीं किया था।

सबलोग हँस पड़े और बोले,—तभी तो कविलोग उससे इतना रूठ गये।

ज्ञानदत्तने कहा,—तुमलोगोंने मेरी बातकी सूक्ष्मतापर ध्यान नहीं दिया। मैं यह नहीं कहता कि द्वेषके कारण कवियोंने ऐसा लिखा।

गौरीबाबूने कहा,—जब वह सूक्ष्मता महर्षि बालमीकिके हो ध्यानमें न आयी तो फिर हमलोगोंका उसपर ध्यान देना बेकार था।

ज्ञान—मेरे कथनसे महर्षि बालमीकि जैसे पूज्य कवियोंकी अनभिज्ञता नहीं सूचित होती; न मैं ऐसी कल्पना करके अपनेको पापका भागी ही बनाना चाहता हूँ। उन्होंने कवि-मर्यादाके भीतर रहकर ही अपने ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं। छोटी घटनाको बड़ी और बड़ोको छोटी बनाने तथा रोचक, भयानक और यथार्थरूपसे कथन करनेमें कवि बिल्कुल स्वतंत्र है। रावण······

गौरीबाबूने बात काटकर पूछा,—न्यायीको अन्यायी और अन्यायीको न्यायी सिद्ध करनेके लिए भी कवि बिल्कुल स्वतंत्र है?

ानज्ञ—मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है। मैं तो यह कह रहा

कि आवश्यकतानुसार साधारण न्यायीको महान न्यायी और साधारण अन्यायीको महान अन्यायी चित्रित करनेसे कवि दोषी या अल्पज्ञ नहीं कहा जा सकता।

गौरी—अच्छा थोड़ी देरके लिए मैं यही मान लेता हूँ। फिर भी प्रश्न यह उठता है कि रावणको महान अन्यायी सिद्ध करनेकी क्या आवश्यकता थी ?

ज्ञान—यह कि द्वन्द्वी और प्रतिद्वन्द्वीको सामने रखकर न्यायान्याय सिद्ध करनेकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसी दशा-में अन्यायकी महानता सिद्ध कर देनेसे ही न्यायकी महानता सिद्ध हुआ करती है। इस ढंगसे जनतापर जितना अच्छा प्रभाव डाला जा सकता है, कोरा न्यायका वर्णनकर देना उतना प्रभावशाली नहीं हो सकता। उदाहरण लीजिये,—हम महादेवसिंहकी वीरताका वर्णन करना चाहते हैं। अब यदि हम यह कहें कि महादेवसिंह बड़े बहादुर हैं, उनके बल-की सीमा नहीं है, क्षणभरमें ही उन्होंने अपनी तलवारसे बेनीसिंहको उनके सैकड़ों साथियों सहित काट डाला था, इत्यादि। तो इसका प्रभाव विशेष नहीं पड़ सकता। किन्तु यदि हम महादेवसिंहकी वीरता दिखलानेके लिए पहले बेनीसिंह-के बल-पौरुषका वर्णन कर दें, फिर यह कहें कि बेनीसिंह सरीखे वीर मनुष्यको महादेवसिंहने पलभरमें मार डाला, तो इसका कहीं अधिक प्रभाव पड़ेगा। इसी प्रकार श्रीरामजीके न्याय और बलको महत्ता दिखलानेके लिए रावणको महान्

अत्याचारी और भीषण बलशाली दिखलाना अत्यावश्यक था। पर मेरे कहनेका यह अर्थ न निकालो कि रावण महान् योद्धा और अत्याचारी नहीं था, कवियोंने योंही लिख मारा।

गौरी—तो फिर तुम्हें कहनेका कोई अधिकार नहीं कि कवियोंने रावणके साथ अन्याय किया है।

श्याम—अवश्य है। जिस प्रकार कवियोंको उक्त रीतिसे वर्णन करनेका पूर्ण अधिकार है, उसी प्रकार सच्चे समालोचक-को गवेषणा-पूर्वक तथ्यको ढूँढ निकालनेका भी पूर्ण अधिकार है। समालोचकको एक विशेष दृष्टिसे ग्रन्थावलोकन करना चाहिए। उसे यह देखना चाहिए कि किस प्रकारके मानससे कैसा कार्य होना सम्भव है। यह युग पहलेकी अपेक्षा बहुत गिरा हुआ है, क्योंकि कहा जाता है कि राम-राज्यमें भारत-वर्ष पूर्ण उन्नत दशामें था, और उस समयके इतिहाससे भी यही बात सूचित होती है। तथापि आधुनिक समयमें कोई भी विद्वान ऐसा जघन्य कार्य नहीं कर रहा है जैसा कि रावणके सम्बन्धमें कवियोंने लिखा है। हमें इस बातपर ध्यान रखना चाहिए कि विद्याका असर मानसपर पड़े विना नहीं रहता।

गौरीबाबूने जरा तीखे स्वरमें कहा,—बड़े आश्चर्यकी बात है कि इतना पढ़-लिखकर भी तुम ऐसी भद्दी भूल कर रहे हो। जो रावण सुरापायी, मांस-भक्षी और परायी स्त्रीको चुराने-वाला था, जो रावण गो-ब्राह्मण-बध करनेके लिए सदा खड्ग-हस्त रहता था, जो रावण विभीषणके समान सत्यवक्ता और

शुभचिन्तक बन्धुका तिरस्कार किया करता था, उसे ऐसा कौन सहृदय है जो महान अत्याचारी न कहेगा? तुम कहते हो कि पांडित्य-पूर्ण हृदयसे जघन्य कार्य कभी नहीं हो सकता। किन्तु हम कहते हैं कि रावण महा पण्डित होकर भी जो महारानी सीताको छलसे हर ले गया, वह क्या जघन्य कार्य नहीं था? पण्डित होना और बात है, किन्तु पांडित्य-पूर्ण आचरण करना, दूसरी बात है। उदाहरण लीजिये,—एक आदमी यह जानता है कि चौर-वृत्ति बहुत बुरी है, इससे मान-प्रतिष्ठा नष्ट होती है, पकड़े जानेपर नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। किन्तु फिर भी वह चोरी करता है। इससे यह ज्ञात हुआ कि 'चोरी करना बुरा है,' यह जानना पांडित्य है और 'चोरी करना' यह आचरण है—जोकि पांडित्यसे सर्वथा भिन्न है। कहनेका अभिप्राय यह कि संसारमें स्वार्थ एक ऐसी वस्तु है, जो सीमासे अधिक होते ही मनुष्यके सारे गुणोंको आच्छादित कर लेती है। तुम कहते हो कि आधुनिक समयमें कोई भी विद्वान ऐसा नहीं कर रहा है। पर हम कहते हैं कि कोईभीको कौन कहे, मि० हार्नीमैन सरीखे कुछ विभीषणोंको छोड़, सारी अंग्रेज-जाति तुम्हारी कल्पनासे भी अधिक जघन्य कार्य कर रही है। क्या अंग्रेज-जातिमें साधारण शिक्षा है? यदि नहीं, तो वह क्यों ऐसा कर रही है? अब विचार करनेकी बात है कि ब्रिटिश-राज्यका अस्तित्व मिट जानेके बाद भविष्यमें यदि कोई समालोचक अंग्रेजोंके पांडित्यपर दृष्टि

डालकर अपने पूर्ववर्त्ती इतिहास-लेखकों या कवियोंको यह कहकर अन्यायी बनावे कि अंग्रेजलोग बड़े पण्डित थे, इसलिए भारतपर ऐसा जुल्म कभी न किये होंगे, तो क्या उस समालोचकका यह कहना न्याय-संगत, धर्म-विहित तथा दूरदर्शिता पूर्ण होगा? परमात्माकी लीला अज्ञेय है। देखो, रूसके बोलशेविक-नेता महात्मा लेनिनमें जहाँ इतनी दयालुता थी कि सड़कोंपर किसी कोढ़ी या लँगड़े-लूलेको देखते हो उनका हृदय प्रेम-कातर हो जाता था और तुरन्त ही बिना घृणा किये अपने कन्धेपर लादकर उसे सुरक्षित स्थान (अपने खोले हुए अनाथाश्रम) में ले जाकर अपने हाथसे उसकी सेवा-सुश्रुषा करते थे, वहाँ इतना अधिक क्रोध भी था कि पूँजी-पतियोंकी हत्या करनेमें उन्हें ज़रा भी तरस न आता था—यद्यपि दया और क्रोध परस्पर-विरोधी भाव हैं। तो क्या यह कहना उचित होगा कि क्रोधी और हिंसक लेनिनका दयालु-हृदय होना मिथ्या है अथवा दयालु लेनिनका हिंसक होना असम्भव है?

ज्ञान—मैं यह पहले ही कह चुका हूँ कि रावण कुछ अत्याचारी अवश्य था, किन्तु कवियोंने उसे बढ़ा दिया है। मद्य-मांस-भक्षण करना उस समयकी प्रचलित प्रथा थी; परायी स्त्रियोंके अपहरण करनेके भी कम उदाहरण उस समयके इतिहासमें नहीं पाये जाते; इसलिए इन कामोंसे रावण उस समयकी प्रचलित प्रथाके अनुसार कोई विशेष दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

धर्मके दो भेद हो सकते हैं। एक नित्य (शाश्वत्) धर्म, दूसरा नैमित्तिक धर्म। सच बोलना, दीन-दुखियोंपर दया करना, अहिंसा-व्रतका पालन करना आदि नित्य धर्म हैं। नित्य धर्म वही है, जिसे हर सम्प्रदायके लोग मानते हों और जिसमें कभी भी परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकता न पड़े। बारह वर्षके भीतर कन्याका विवाह कर डालना चाहिए, विधवा-विवाह न करना चाहिए आदि बातें नैमित्तिक धर्मके अन्तर्गत हैं। नैमित्तिक धर्म वह है, जिसे सब सम्प्रदायके लोग न मानते हों और जो समयानुसार परिवर्त्तित एवं परिवर्द्धित होता हो। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि नैमित्तिक धर्म उपेक्षणीय, वर्जनीय अथवा अमाननीय है। समाजके उचित एवं हितप्रद नियम ही धर्म हैं। उनका उचित रीतिसे न पालन करना, अपनेको समाज-प्रतिघातक पापका भागी बनाना है। कहाँतक कहा जाय, धर्मका असली स्वरूप पहचानना बड़ा ही कठिन है। इसके पहलू ही बड़े पेचीले हैं।

रही बात अंग्रेज़ोंकी, सो अंग्रेजी-राज्य, रावण-राज्यसे कई सौ गुना पतित है। क्योंकि अंग्रेज-राजा, प्रजाकी रक्षा करनेको तैयार नहीं, इसकी प्रजाको पीनेके लिए दूध नहीं, खानेके लिए अन्न नहीं, पहननेके लिए वस्त्र नहीं, यह राजा बिना कारण प्रजाको कत्ल कराता है, मद्य-मांस सेवन करता है—जोकि प्रचलित प्रथाके अनुसार अधर्म है और अफीम, शराब, गाँजेका व्यापार करता है, घुड़दौड़का जुआ कराता है, यह राजा गो-

मांस खाकर हिन्दुओंका और सुअरका मांस खाकर मुसलमानोंका दिल दुखाता है। ऐसे राजाकी रावणसे तुलना करनेमें रावणका अपमान होता है। एक बात यह भी विचारणीय है कि अंग्रेजोंकी दृष्टि वहिमुंखी है, इनकी साहित्यिक उन्नति भी तदनुकूल ही हुई है। किन्तु रावणके कुछ-न-कुछ आध्यात्मिक विचार अवश्य रहे होंगे, उसे साहित्यसे प्रेम अवश्य रहा होगा, तभी तो वह वेदोंपर भाष्य लिख सका था। अवश्य ही स्वार्थके वशीभूत होकर मनुष्य अनर्थ करनेमें नहीं हिचकता; किन्तु विद्वान या साहित्य-प्रेमी मनुष्यका हृदय अपने स्वार्थके लिए घोर अन्याय करनेके लिए उद्यत नहीं हो सकता। देखिये न, स्वार्थके वशीभूत हो, अंग्रेजोंने लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलकको जेलमें ठूँस रखा था, किन्तु मेक्समूलर अंग्रेज होते हुए भी जातीय स्वार्थोंकी ओर ध्यान न देकर उन्हें छोड़ देनेकी प्रार्थना करके अपनी विद्वत्ता एवं साहित्यिकताका परिचय देनेसे कुण्ठित न हुआ।

गौरी—तब तो रामचन्द्रजीने रावणको मारकर अन्याय किया न?

ज्ञान—नहीं। उन्होंने भी न्याय किया। क्योंकि रावण उनकी धर्मपत्नी सती सीतादेवीको उठा ले गया था। ऐसा अपमान कोई भी भद्र पुरुष नहीं सहन कर सकता। फिर भी उन्होंने दूतद्वारा रावणको समझाया कि रार न बढ़ाकर सीताको वापस कर देनेमें दोनोंका कल्याण है। जब इसपर

भी वह न सुधरा, तब भगवान रामचन्द्रजीको युद्ध करना पड़ा।

इस विषयमें रामदीन भी अपने शकारका शङ्पा लगाना चाहते थे, किन्तु उन्हें अवसर न मिलता था। वह कुछ बोलना ही चाहते थे कि तबतक एक महाशयने वार्तालापको रोककर कहा,—यह विषय बड़ा सूक्ष्म है, यों इसका निर्णय होना कठिन है। बहुत देर होगयी, अब घूमने-फिरने चलना चाहिए।

इसके बाद बैठक स्थगित होगयी।
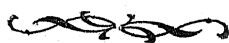
सातवाँ परिच्छेद

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगा, शम्भूदयाल अपनी स्त्री-सहित अधिक खिन्न-चित्त होने लगे। रामदीन भी लौटकर नहीं आये। उन्होंने अपने कुशल-समाचारका एक पत्र भी नहीं दिया। क्या कोई अमंगल समाचार तो नहीं है? आठ दिनमें वापस आनेके लिए कह गये थे, किन्तु आज पूरे एक महीने होगये। देवकी अपने एकतल्लेवाले कमरेके सामने, बरामदेमें लेटी हुई हैं। एक घण्टा रात रहते नींद उचट गयी। चेष्टा करनेपर भी फिर नींद न आयी। ज्ञानदत्तकी किशोरावस्थाका श्यामल रूप उनकी आँखोंके सामने खड़ा है। वही विशाल नेत्र, घुँघराले बाल, सुन्दर चिबुक, सुडौल शरीरवाला उनका ज्ञानू 'माँ' कहकर

पुकारना चाहता है । किन्तु चुपचाप खड़ा क्यों है ? बोलता क्यों नहीं ? इतनी देरतक तो कभी भी ज्ञानू चुप नहीं रहता था, फिर आज उसे क्या होगया है ? क्या रूठा हुआ है ? किन्तु रूठनेका कारण ? अज्ञात ! देवकी कुछ पूछना ही चाहती थी कि तन्द्रा टूट गयी, मालूम हुआ कि स्वप्न था।

इतनेमें सबेरा हुआ। प्राच्याकाशमें भगवान भुवन-भास्करकी लाल-ध्वजा फहराने लगी। चन्द्रदेवकी विश्व-मोहिनी चन्द्रिका न जानें कहाँ प्रच्छन्न होगयी; बेचारे निस्तेज हो, आशा-भरी दृष्टिसे पृथ्वीकी ओर देखने लगे । तारागण एक-एककर मुँह छिपाने लगे । आकाशकी यह हलचल देख कलियाँ एकदम खिलखिलाकर हँसती हुईं अपने मधुर सुगन्धकी धूल उड़ाने लगीं। किन्तु प्रकृतिकी इस अनूठी लीलाके समय भी पुत्र-शोकाकुला देवकी इस प्रकार उदासीन होकर पड़ी है, मानो उसे इन विचक्षण लीलाओंका कुछ पता ही नहीं । तबतक घरकी मजूरिन झाडू-बुहारू देने आयी, उसने मालकिनको लेटी देखकर पूछा,—क्या आज तबीयत अच्छी नहीं है ?

देवकीकी आँखें खुलीं। बोली,—नहीं री, ठीक तो, है—योंही आलस्यसे पड़ी हूँ।

मजदूरिन—ज्ञानू बबुआका कुछ सन्देश मिला न ?

देवकी उठकर बैठ गयी और बोली,—नहीं तो, अभी तो पुरोहितजी आये ही नहीं। क्या तुझे कुछ मालूम हुआ है ?

मजदूरिन—कल शामको मानकी दर्ज़िनका दामाद आया

था। चार-पाँच दिन हुए, वह कलकत्तासे आया है। ज्ञानू बबुआ-के पास ही उसकी सिलाई करनेकी दूकान है।

देवकीने व्याकुल स्वरमें पूछा,—वह कुछ कहता था?

मजदूरिनने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा,—हाँ।

देवकीने शोकातुर होकर पूछा,—क्या कहता था? ज्ञानू अच्छी तरह है न?

मजदूरिन—हाँ मजेमें हैं। लेकिन घर न आवेंगे।

इतना सुनते ही देवकीकी आँखोंमें रुका हुआ अश्रु-प्रवाह मानो बाँध टूट जानेके कारण उमड़कर बह चला। लाख चेष्टा करनेपर भी न रुका। बड़ी कठिनाईसे उसके बेगको रोककर देवकीने करुण-कातर कण्ठसे पूछा,—यह भी कुछ कहता था कि वह क्यों नहीं आवेगा?

मजदूरिन—कहता था कि साहबोंके साथ रहते हैं, साहबों-की तरह कपड़ा-लत्ता भी पहनते हैं। जो कुछ पैदा करते हैं, सब खर्च कर डालते हैं।

देवकी—और भी कुछ कहता था?

मजदूरिन—नहीं; और तो कुछ नहीं कहता था।

इसके बाद देवकी उठकर नीचे चली गयी। सोचने लगी, जान पड़ता है, ज्ञानू नहीं आ रहा है, इसीसे पुरोहितजी रुके हुए हैं। क्या ज्ञानूके हृदयमें कुछ भी दया-माया नहीं रह गयी? उसने मुझे भी भुला दिया?

देवकी इन्हीं बातोंकी उधेड़-बुन कर रही थी कि रमा एक

अखबार हाथमें लिए वहाँ आ गयी। उसके सुन्दर कपोलोंपर मोतीके दानेकी भाँति अश्रु-बिन्दु जमे हुए थे। सासको देखते ही रमाने उन बिखरे हुए मोतियोंको कपोलोंपरसे समेट तो लिया, किन्तु देवकीने उसका समेटना देख लिया। अब वह ज्ञानदत्त-की चिन्ता तो भूल गयी और रमाका दुःख जाननेके लिए व्याकुल हो उठी। घबराकर बोली,—यह क्या? क्या हुआ तुझे?

सासके सुधा-बारि-सिंचित शब्द सुनते ही रमासे न रहा गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। देवकीने बहूका हाथ पकड़-कर बिठाया और उसका मस्तक अपनी गोदमें छिपाकर बड़े स्नेहसे अश्रु-मोचन करते हुए पूछा,—क्यों, क्या मामला है बहू शीघ्र बतलाओ।

रमा कुछ न बोली। उसकी रुदन-गति उत्तरोत्तर तीव्र होती गयी। बहूकी यह दशा देख, बिना कारण जाने ही स्त्री-स्वभावानुसार देवकीकी आँखोंसे भी आँसू गिरने लगे। बार-बार पूछनेपर रमाने समाचार-पत्रकी ओर संकेत किया, पर मुँहसे कुछ भी नहीं कहा। रमाके संकेतपर देवकीका ध्यान नहीं गया; उन्होंने फिर पूछा,—क्या दुलहिनने कुछ कहा है?

अधिक शोकके समय मनुष्यकी श्रवणेन्द्रिय भी जवाब दे देती है। यही कारण है कि देवकीकी उक्त बात रमाको सुनायी नहीं पड़ी। उसका इस प्रकार रुदन देखकर देवकीकी समझ-हीमें न आता था कि किन शब्दोंमें और क्या पूछूँ। इतनेमें

पास-पड़ोसकी कई स्त्रियाँ आ गयीं। बिना कुछ पूछ-ताछ किये ही आगत स्त्रियाँ भी रमाके रुदनमें योग देने लगीं।

पं० शम्भूदयाल बँगलेमें बैठे हुए थे। किसी नौकरने आकर कहा,—न जानें क्यों बखरीमें रुलाई हो रही है।

इतना सुनते ही शम्भूदयालका हृदय धक्-धक् करने लगा। घबड़ाकर उठे और नौकरसे बिना कुछ पूछे, शीघ्रतासे मकानमें चले गये। दाईको बुलाकर शुष्क और खिन्न स्वरमें पूछा,—क्या बात है, कहींसे कोई आदमी आया है क्या? यह रुलाई क्यों हो रही है?

दाईने समीप आकर धीरेसे कहा,—न मालूम क्यों छोटी बहू रो रही हैं। उनसे पूछा जा रहा है, लेकिन कुछ बतलाती नहीं।

शम्भूदयालने रुष्ट होकर कहा,—जाकर पूछ जल्दी, गधी कहींकी।

दाई उदास होकर चली गयी। मालकिनसे कहने लगी, पर उस कोलाहलमें सुनता कौन है? बिचारी निराश होकर डरके मारे इधर-उधर जाकर सब स्त्रियोंसे पूछने लगी, किन्तु कारणका पता न चला। तबतक रमाके विलाप-युक्त शब्दोंको सुनकर एक स्त्रीने समाचार-पत्र उठा लिया। उन शब्दोंके आधारपर शम्भूदयालको भी इतनी बात ज्ञात होगयी कि ज्ञानूके सम्बन्धमें कोई अशुभ सम्बाद समाचार-पत्रमें प्रकाशित हुआ है। फिर क्या था, वह भी अधीर होकर समाचार-पत्र

लेनेके लिए स्त्रियोंके समूहकी ओर टूट पड़े। सरलाने सिस-कते हुए समाचार-पत्रको पिताकी ओर बढ़ा दिया। अखबार-को लेकर शम्भूदयाल बाहर चले आये। देखा तो शोक-समाचार-सूचक काले बाडरोंमें लिखा थाः—

'हायरे दुर्दैव'

"हमें अत्यन्त खेदके साथ यह समाचार प्रकाशित करना पड़ रहा है कि कल ता० १३ जून सन् १६२८ को हिन्दीके उदीयमान् सुलेखक स्वनामधन्य पं० ज्ञानदत्तकी अचानक मृत्यु होगयी। आप हिन्दीके अमूल्य रत्न थे। हिन्दी-संसार-को आपकी अलौकिक प्रतिभा देखकर बहुत बड़ी आशा थी, किन्तु कल परमात्माने उन सारी आशाओंपर पानी फेर दिया। पंडितजी कल ईडन गार्डनकी ओर टहलनेके लिए जा रहे थे; स्ट्राण्ड रोडपर हठात् एक मोटरके धक्केसे गिर पड़े। साथियोंने तुरन्त ही अस्पतालमें पहुँचाया, किन्तु सिविल-सार्जनने कहा,—कलेजेपर गहरी चोट लगी है, बचना कठिन है। यह समाचार कलकत्ताकी पढ़ी-लिखी जनतामें विद्युत्-गति-से चारों ओर पहुँच गया। डाक्टरने बड़ी रहमदिलीसे पंडित-जीकी चिकित्सा की, पर हुआ वही जो उसने पहले ही कह दिया था। हाय पंडितजी, क्या आप अपना सदा-हास्य-विमंडित मुख-चन्द्र एकबार और दिखलाकर अपने स्नेही चातकोंकी आशा पूरी न करेंगे? क्या पुनः एकवार मातृ-भाषा हिन्दीकी गोदमें बैठकर सुललित और मधुर शब्दोंमें अपने कुछ नवीन

भावोंको न सुनावेंगे ? ओफ् ! अब तो यह सब कहना केवल पागलके प्रलापकी भाँति है! भला अब आप काहेको सुनने लगे ! यदि सुनना हीं होता तो आप केवल इक्कीस वर्षकी ही अवस्था- में जाते क्यों ? जबकि हिन्दी-माताके भाग्यमें यही बदा था तो आप रहते कैसे ! अब तो आहें भरनेके सिवा कोई चारा नहीं ! जगदीश्वर आपकी पवित्र आत्माको सद्गति दें तथा आपके व्यथित-हृदयी आत्मीय-जनोंको धैर्य धारण करनेकी शक्ति प्रदान करें, बस यही अन्तिम विनय है।"

किन्तु ऊपरके समाचारको शम्भूदयाल पढ़ न सके। वह तो दो ही तीन लाइनें पढ़ पाये थे कि अचेत होकर धड़ामसे पृथिवीपर गिर पड़े। इतनेमें गाँवके बहुतसे लोग एक-एककर- के आ चुके थे, लोगोंने उन्हें उठाकर बिठाया। थोड़ी देरके बाद जब शम्भूदयाल होशमें आये, तब 'आह भैया' 'हाय ज्ञानू' कहकर बिलखने लगे। संसारकी रीतिके अनुसार लोग तरह तरहकी बातोंसे उन्हें समझाने-बुझाने लगे। एकने कहा,—अखबारोंमें बहुतसी झूठी खबरें भी छपा करती हैं, इसलिए तार देकर पक्की खबर मँगा ली जाय। हमारी समझसे तो यह खबर बिलकुल झूठ है।

किसी दूसरे आदमीने कहा,—नहीं नहीं, अखबार निकालने- वाले बड़े विद्वान और ऊँची तनख्वाहवाले होते हैं, वे ऐसी झूठ बात कभी नहीं लिख सकते।

इस तरह सबलोग आपसमें बातें करने लगे। अन्तमें

यही स्थिर हुआ कि तारद्वारा ठीक ठीक समाचार मँगा लिया जाय। तबतक आदमीने घरमें जाकर कह दिया कि यह खबर बिलकुल झूठ है। यह बात सुनकर स्त्रियोंको बहुत कुछ शान्ति मिली। किन्तु कोई विश्वसनीय प्रमाण न मिलनेके कारण रमाको सन्तोष न हुआ, यद्यपि औरोंकी अपेक्षा उसके पास इस समाचारकी झुठाईके काफी सबूत थे। समाचार-पत्रमें ता० १३ को ज्ञानदत्तकी मृत्युका समाचार छपा था। और इधर रमाके पास दो बर्षके बाद स्वामीके हाथकी ता० १३ की लिखी हुई चिट्ठी आयी थी। जब उन्हें १२ तरीखको चोट लगी, और १३ को उनकी मृत्यु हुई, तब उन्होंने सचेत होकर इसके बीचमें ही पत्र कैसे लिखा? जिस समय रमाने मृत्यु-सम्बाद पढ़ा, उसके मनमें यह सन्देह अवश्य उत्पन्न हुआ; अन्यमनस्का एवं खिन्न-बदना रमानेइसपर बहुत देरतक सोचा-विचारा भी, किन्तु अन्ततः नारी-हृदय शोक-सम्बादकी ओर लुढ़क ही गया। इसके अतिरिक्त, रमाको आजतक कोई अशुभ सूचना भी तो नहीं मिली! न तो उसके मनमें उद्विग्नता ही कभी उत्पन्न हुई, न दाहिना अंग ही फड़का, न कोई दुःस्वप्न ही हुआ; फिर रमाने अपने वैधव्यपर कैसे विश्वास कर लिया? रमा तो कई बार परीक्षा ले चुकी है। जब उसके स्वामी विदेश-से घरके लिए रवाना होते थे, तब रमाकी बायीं आँख फड़कने लगती थी, माथेकी बेनी छूट छूट जाती थी, हाथकी चूड़ियाँ अचानक ही चटकने लगती थीं, इससे वह तुरन्त ही स्वामीके

आगमनकी सूचना पा जाती थी। इसी प्रकार यदि ज्ञानदत्तको साधारण ज्वर भी आ जाता था तो यहाँ पाँच सौ मीलकी दूरीपर बैठी हुई रमाका हृदय अकारण ही छटपटाने लगता था, किसी काममें दिल न लगता था। इससे वह समझ जाया करती थी कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है और दो-चार दिनके बाद ही पत्र आनेपर उसका समझना सत्य—अटल सत्य—ठहरता था। अबतक रमाके सब शकुन-अशकुन सत्य हुए हैं और कभी भी ऐसा नहीं हुआ है कि वहाँ उसके स्वामीपर किसी तरहकी आपत्ति आयी हो और रमाको अशकुनद्वारा ज्ञात न हुआ हो। फिर इतना बड़ा बज्रपात होनेपर उसे किसी प्रकार-का अशुभ चिह्न न दिखे, यह आश्चर्य नहीं तो क्या है! यही कारण है कि रमाको समाचार-पत्रपर बहुत कम विश्वास पड़ा, और वह उठकर सासके पासतक जा सकी; नहीं तो क्या रमा चीख मारकर वहीं अचेत न हो जाती? किन्तु सासके पास आतेही उसकी ज्ञान-गरिमा नष्ट होगयी। किसी स्नेहीके मिलने-पर स्वाभाविक ही शोक-सागर उमड़ पड़ता है।

होता वही है, जो ईश्वरको मंजूर होता है,—अपनी इच्छा-के अनुकूल कोई काम नहीं होता। इसलिए किसी कामको कलपर टालनेमें बहुधा पश्चात्ताप ही करना पड़ता है। रमा अपने हृदयके उमड़े हुए शोक-सागरमें नाना प्रकारकी स्वामि-स्मृतियोंद्वारा भयंकर तरंगें उत्पन्न कर रही थीं। हाय, क्या कोई दैवका लाल रमाको यह न सुनावेगा कि ज्ञानदत्त सकुशल

हैं ? बेचारी रमा तो अपने स्वामीके पत्रका उत्तर भी न भेज सकी। क्या लिखूँ, कैसे लिखूँ, यह लिखूँ, ऐसे नहीं ऐसे लिखूँ आदि बातोंकी चिन्तामें ही वह फँसी रह गयी। उन्होंने अन्तिम समयमें पत्र भेजकर अपना कर्त्तव्य-पालन किया, किन्तु रमासे वह भी न हो सका। व्यर्थकी लोक-लज्जाने ही रमाका सर्वनाश किया! प्रार्थना-पूर्ण पत्र जानेसे ही तो वह घर आ जाते! इसमें कौनसी लोक-लज्जा टूटी जाती थी! किन्तु ये सब निर्मूल कल्पनायें हैं। १३ तारीखके बाद प्रश्नोत्तर पहुँचनेसे क्या होता? यदि ऐसा ही था तो पहले ही रमाने पत्र क्यों नहीं भेजा? उस समय तो वहा मान किये बैठी थी कि जबतक वह कोई पत्र न भेजेंगे तबतक मैं कदापि न भेजूँगी। पर इस मानका इतना बड़ा दंड! ऐसी कौन युवती है जो इतना भी मान नहीं करती? ऐसा कौनसा मनुष्य है जो नायिकाके इस मानको चाह-भरी निगाहोंसे कृत-कृत्य होकर नहीं देखता? ऐसा कौनसा काव्य-ग्रन्थ है जो इस मानको स्त्रीका अपूर्व आभूषण कहकर उसकी भूरि भूरि प्रशंसा नहीं करता? फिर इसके लिए रमा अपराधिनी कैसे हो सकती है?

किन्तु अब इन थोथी दलीलोंमें धरा ही क्या है। जो होना था सो हो गया। कुछ ही देर पहले लज्जा और यौवनके भारसे रमाका जो कोमल तथा कमनीय शरीर किंचित् झुका हुआ अपूर्व शोभा बढ़ा रहा था, वही अब शोक और वैधव्यके कारण उसी प्रकार झुका रहनेपर भी वृद्धावस्थाकी अनुहारि

करने लग गया। स्वामीका जो पत्र उसके लिए आनन्दका विषय था, वही अब वेदनाका यंत्र हो गया। पत्र उसके सामने न रहते हुए भी उसका एक एक अक्षर उसके मनश्चक्षुद्वारा दृग्गोचर होकर उसके हृदयमें तेज बर्छीकी भाँति चुभने लगा। मन-ही-मन रमा सोचने लगी कि, यदि पासमें बैठी स्त्रियाँ हट जातीं तो अवसर पाकर मैं भी स्वामीके पास पहुँच जाती! झपटकर उनका दामन पकड़ती और गिड़गिड़ाकर विनय-युक्त शब्दोंमें कहती,—अब तो दामन न छोड़ूँगी नाथ! मैंने कौनसा गुनाह किया, जिसके कारण आप मुझे असहाय छोड़कर अकेले चले आ रहे थे? यही सब सोचते-विचारते रह-रह-कर रमाका पुक्का फूट जाता और बिलख बिलखकर रोने लगती थी। फिर अपने आप ही कुछ देरमें चुप हो जाती और मुखसे आर्त्त बचन निकालने लगती थी। समीपमें बैठी हुई स्त्रियाँ रमाकी यह विलक्षण दशा देखकर आपसमें कानाफूसी करने लगीं कि बहूकी दशा देखकर यही मालूम होता है कि यह उन्मादिनी हो जायगी। किसीके मुखसे निकलता, यह जियेगी नहीं। किन्तु ये बातें समझनेकी चेतना यदि रमामें होती, तो कदाचित् वह यही उत्तर देती कि, ऐसा भाग्यमें कहाँ! यदि हो भी तो बिना ठीक और निश्चयात्मक समाचार जाने मैं कभी न मरूँगी!

लोगोंके बहुत कहने सुननेपर भी रमाने अपने हाथकी सुहाग-सूचक चूड़ियाँ और मस्तकका नारी-जीवन-सर्वस्व-

स्वरूपसिन्दूर नहीं हटाया। यही कारण है कि स्त्रियाँ उसे पगली समझने लगीं। लोग चाहे जो समझें; पर रमा अभी अपनेको सधवा समझती है, अतः हम भी परिच्छेदकी समाप्तिमें एकबार सधवा रमा कह देना उचित समझते हैं।

आठवाँ परिच्छेद

अर्जेण्ट जवाबी तार दिये पूरे दो दिन होगये, पर ज्ञानदत्त-का कोई समाचार नहीं आया। लोगोंको दृढ़ विश्वास हो गया कि ज्ञानदत्तके सम्बन्धमें जो समाचार छपा था, वह ठीक है—नहीं तो तुरन्त तारका जवाब आता। शम्भूदयाल भी पुत्रकी अन्त्येष्टि क्रिया करनेके प्रबन्धमें लग गये। धर्मदत्तको भ्रातृ-शोक बहुत खला; वह दिन-रात एक कोठरीमें पड़े रहते, बहुत कहने-सुनने तथा हठ करनेपर कुछ खा लेते। देवकीका तो मानो हृदय ही क्षत-विक्षत होगया। प्रभाको विशेष कष्ट नहीं था। नारी-हृदयमें कोमलताके साथ कितनी कठोरता होती है, यह बात प्रभाकी कृतिसे लोगोंको भलीभाँति ज्ञात होगयी। उसने अपने स्वामी धर्मदत्तसे जाकर कहा,—"उठकर सीधेसे खाया-पिया करो, शरीर चौपट हो जानेपर कोई साथी न होगा। इस संसारमें कोई रहनेके लिए नहीं आया है। सबकी

एक-न-एक दिन यही दशा होगी। ज्ञानूने तो कभी फूटी आँखों भी तुम्हें नहीं देखा और तुम उनके लिए इस तरह दुःखी हो रहे हो। भाईके मरनेसे इतना दुखी क्यों होते हो; भला भाई भी किसीके होते हैं?" इस प्रकार प्रभा समझाया करती थी। उसका समझाना बहुतसे लोगोंने सुना भी था। बेचारे धर्मदत्त कितनी बातें तो सुनते ही न थे और जो कुछ सुनते थे, उसे जीवनका कटु अनुभव समझकर विषके घूँटकी भाँति पी जाते थे। किसी समय असह्य होनेपर कह देते,—इस समय जाओ, मुझे नींद आ रही है। न मानोगी तो मेरी तबीयत खराब हो जायगी।

इतना ही नहीं, किसी किसी समय प्रभा अपने दो वर्षके लड़केको कपड़ा-लत्ता पहनाकर लाती और धर्मदत्तकी गोदमें बिठा देती थी। जब धर्मदत्त बच्चेकी ओर देखते भी न थे, तब वह झुँझलाकर लड़केको लेकर चली जाती थी। इधर पतिके साथ तो ऐसा करती थी और उधर अपनी सास देवकीके पास दिनभरमें एकबार जाती भी न थी। प्रभाके इस दुर्व्यवहार और कठोरतासे पास-पड़ोसकी स्त्रियाँ बहुत कुढ़ने लगीं,—भला ज्ञानूने इनका क्या बिगाड़ा था कि यह इस तरह प्रसन्न हैं! वाहरे संसार! रामजी ऐसी स्त्री शत्रुको भी न दें। किन्तु पुत्र-शोकाकुला देवकीको प्रभाकी बातोंका कुछ भी ध्यान न था। वह तो यह जानती ही न थीं कि कौन उन्हें समझा-बुझा रहा है, कौन दुखी है, और कौन सुखी।

अवश्य ही यदि देवकी सज्ञानावस्थामें होतीं, तो प्रभाको हरकतें जलेपर नमकका काम करतीं। इस प्रकार प्रभाका उद्देश्य सफल होता और उसे प्रसन्नता होती। प्रभाको यदि कुछ दुःख था तो यही कि उसके इच्छानुसार देवकीको कष्ट नहीं हो रहा है।

ये तो हुईं घरके प्राणियोंकी बातें, अब रमा किस स्थितिमें है, यह भी ज़रा देखना चाहिए। रमा, समाचार-पत्र लेकर सासके घरमें आयी थी; अन्यान्य स्त्रियाँ कई बार वहाँ आयीं गयीं, किन्तु वह वहाँसे हिलीतक नहीं। स्त्रियाँ समझाकर थक जातीं, पर वह किसीकी एक न सुनती और न किसीकी बातका कुछ उत्तर ही देती। सचमुच ही रमा उन्मादिनी होगयी। उसे इस बातकी भी सुध नहीं कि वह कबसे यहाँ पड़ी है। तारका जवाब आया या नहीं, लोगोंका क्या अनुमान है आदि बातें न तो उसे मालूम ही थीं और न उन्हें जाननेकी उसने चेष्टा ही की। किन्तु इस अचेतनावस्थामें भी चूड़ियोंपर या मस्तकपर किसीका हाथ पड़ते ही वह चौंक उठती और कहती,—हाय राम, ये सब मेरा अहिवात नष्ट करनेपर ही तुली हैं। सबके आगे हाथ जोड़ती हूँ, मुझे कोई न छेड़े।

पूरे दो दिन बीत गये, रमा न तो वहाँसे उठी, न अन्न-जल मुँहमें डाला और न नींद ही ली। पहले दिन तो वह रह रहकर रो दिया करती थी, किन्तु आज वह रो

भी नहीं रही है। अब वह क्या करना चाहती है, बहुत प्रयत्न करनेपर भी किसीकी समझमें नहीं आ रहा है। क्या रमा पति-वियोगमें प्राण-त्याग करेगी ? यदि हाँ, तो फिर वह विलम्ब क्यों कर रही है ? किसकी प्रतीक्षामें दो दिनसे बैठी कठिन यंत्रणाका अनुभव कर रही है ? अच्छा, तो क्या उसे चित्त-भ्रम होगया है ? कदापि नहीं ; यदि ऐसा होता, तो वह घरमें शान्तिसे बैठी न रहती। पागल-पनका कोई भी लक्षण उसमें नहीं है ; निद्रा न आनेका कारण भी उन्माद नहीं है, बल्कि शोक है। मानव-स्वभावको पहचाननेवाले लोग ही यह बात जानते हैं कि उन्मादिनी या मरणासन्ना होनेके कारण रमाकी यह दशा नहीं हो रही है, बल्कि वह गम्भीर-शोक-ग्रस्ता, चिन्तिता, मर्माहता और अवाक्-बुद्धि होगयी है। इसीसे उसकी यह दशा हो रही है। सरला, अल्प-वयस्का होनेपर भी रमाकी वास्तविक स्थितिसे परिचिता थी। ग्यारह बजे रातमें जब सब स्त्रियाँ रमाके पाससे चली गयीं, तब सरला अवसर पाकर वहाँ गयी और झाँककर पीछे पाँव लौट आयी। प्रभाके पास जाकर कुछ कहना ही चाहती थी कि प्रभाने कहा,—आओ बबुई, तुम बड़ी भाग्यवती हो ; मैं अभी अभी तुम्हें याद कर रही थी कि चाँदका टुकड़ा दिखलायी पड़ा।

सरलाने कहा,—कुसमयकी सहनाई अच्छी नहीं लगती भाभी।

प्रभा ताड़ गयी कि मेरी बात सरलाको नहीं रुची। उसने

तुरन्त मुद्रा बदलकर कहा,—किसीका दोष नहीं बिट्टीरानी, यह सब मेरे कर्मका फेर है; इसीसे मेरी अच्छी बातें भी लोगों-को बुरी मालूम होती हैं।

सरला भिखारिनीकी भाँति मुखापेक्षिनी होकर भाभीके समीप चली गयी और बोली,—तू रुष्ट होगयी भाभी? मैंने तो कोई ऐसी बात नहीं कही। सोचो न, ऐसे दुःखके समयमें चाँदके टुकड़े और बर्फके गोले कहीं अच्छे मालूम हो सकते हैं!

निशाना लग गया, यह समझकर अपनी सफलतापर प्रभा-को विशेष हर्ष हुआ। उसने बातें बनाकर कहा,—यह मैं भी जानती हूँ रानी बबुई, पर क्या करूँ तुम्हारा उदास मुँह मुझसे नहीं देखा जाता; इसीसे तुम्हें हँसानेकी चेष्टा किया करती हूँ।

वास्तवमें बात भी कुछ ऐसी ही थी। यद्यपि भीतरसे तो प्रभा अपनी ननँद सरलासे जलती थी, किन्तु ऊपरसे उसे स्नेह-भाव दिखलाना ही पड़ता था। कारण यह था कि सरलाके रूप, गुण और कुशाग्र-बुद्धिपर घरके सभी लोग मुग्ध थे। धर्मदत्त भी उसे बहुत प्यार करते थे; यहाँतक कि उसके कहनेपर एकबार प्रभासे नाराज़ भी होगये थे। उसने बहुतेरी चेष्टाएँ कीं, पर वह प्रसन्न न हुए। अन्तमें उसे क्षमा माँगनी पड़ी। तबसे प्रभाको सरलाका लोहा मान जाना पड़ा। प्रभाको और किसीके सन्तुष्ट-असन्तुष्ट होनेकी ज़रा भी परवाह नहीं रहती थी, किन्तु स्वामीकी असन्तुष्टता उसे असह्य हो जाती थी।

सरला संकुचित होकर चुप रह गयी। उसकी उस समय-

की मुखाकृति उसके भीतरी पश्चात्तापको प्रकट कर रही थी। थोड़ी देरतक दोनों ही चुप रहीं। बाद सरला कुछ कहना ही चाहती थी कि प्रभा बोल उठी,—हमलोगोंके दुर्भाग्यसे ज्ञानू बबुआ चल बसे। सच मानो बबुई, यह बात मैं पहलेहीसे जानती थी।

सरलाने आश्चर्य-चकिता हरिनीकी भाँति भाभीकी ओर आशाभरी दृष्टिसे निहारकर पूछा,—सो कैसे भाभी ?

प्रभा—बात यह है कि ज्ञानू बबुआ बड़े ही भाग्यमान लड़के थे। ऐसे मामूली घरमें उनका अधिक दिनोंतक रहना असम्भव था;—हाथी किसी दरिद्रके दरवाज़ेपर नहीं रह सकता।

बाल-स्वभावा सरलाको प्रभाकी बातोंपर पूर्णरीतिसे विश्वास होगया। उसने करुण-कातर भावसे कहा,—तो तुमने यह बात घरमें कही क्यों नहीं ?

प्रभाने कहा,—अभी तुम्हें संसारका ज्ञान नहीं है; ऐसी बातें किसीसे कही नहीं जातीं। तिसपर ऐसे घरके प्राणियों-से! और मैं कहती !! छोटी बहू तो और भी जल-भुन उठती। इस तरहकी बहुतसी बातें मैं लक्षण देखकर जान लिया करती हूँ, जो कभी भी झूठ नहीं हो सकतीं; किन्तु यही सब सोच-समझकर मौन रह जाती हूँ कि घरके लोग तो योंही मुझसे असन्तुष्ट रहते हैं, आगमकी बातें कहनेसे मैं इस घरमें रहने ही न पाऊँगी।

अब तो सरलाकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी। उसने अधीर होकर प्रभासे पूछा,—अच्छा, और कौनसी बात जानती हो, मुझे बतलाओ। गंगा-कसम मैं किसीसे न कहूँगी।

प्रभाने कहा,—कह दोगी।

सरलाने कहा,—विद्या-कसम भाभी, न कहूँगी—न कहूँगी—न कहूँगी।

प्रभाने किंचित् मुसकराकर कहा,—तुम्हारी और सब बातें मैं मान सकती हूँ, किन्तु यह बात न मानूँगी। क्योंकि तुम्हारे पेटमें बात नहीं पचती।

सरलाने उदास होकर पूछा,—मैंने कौनसी बात कही?

प्रभाने सरलाको बड़े दुलारसे अपनी गोदमें बिठाकर कहा,—याद करो।

सरला थोड़ी देरके लिए चिन्तामें पड़ गयी। पश्चात् बोली,—वही गुड्डीकी बात?

प्रभाने हँसकर कहा,—हाँ, देखो वह बात याद आयी न!

सरला संकुचित होगयी। गुड्डीकी बात ही मानो उसके लिए राजकीय मंत्रणा थी। ससंकोच बोली,—अच्छा अबकी बतला दो, अगर यह बात मैं किसीसे कहूँ, तो फिर कभी कोई बात मुझसे न कहना।

प्रभा—ऐसी बात?

सरला—हाँ।

प्रभा—अच्छा भाई, यदि ऐसा ही है तो यह बात बतला दूँगी।

सरला—बतलाओ ?

प्रभा—बतला दूँगी ।

सरला—कब ?

प्रभा—और किसी दिन ।

सरलाने कहा,—नहीं नहीं, मैं समझ गयी कि तुम बहाना कर रही हो, बतलाना नहीं चाहतीं ।

प्रभाने विश्वास-प्रद स्वरमें कहा,—ऐसा न सोचो ।

सरलाने कहा,—तो फिर बतलाओ न ।

प्रभाने कहा,—बिना पूछे न मानोगी ?

सरलाने सिर हिलाकर 'नहीं' शब्दका बोध कराया ।

प्रभा थोड़ी देरके लिए गम्भीरता धारण करके बैठी रही । वह मन-ही-मन अपनी सफलतापर प्रसन्न हो रही थी । भीतर-का आनन्द उमड़ा पड़ता था । उत्फुल्ल मुखसे बोली,—अच्छा, क्या तुम्हें मालूम है कि छोटी बहूको क्या हुआ है ?

सरलाने उत्सुकताके साथ कहा,—ये बातें जाने दो, पहले वह बतलाओ ।

प्रभाने कहा,—वही बतलाती हूँ, सुनो भी तो ।—यह कहकर पश्चात्ताप-पूर्ण दीर्घ निश्वास छोड़कर आर्त्त-स्वरमें कहना प्रारम्भ किया,—देखो सुग्गी—

प्रभाके मुखसे अपने लिए 'सुग्गी' शब्दका प्रयोग सुनकर सरलाको हँसी आ गयी । उसने सोचा कि भाभी चार-छः वर्ष तो मुझसे बड़ी होगी, और बातें ऐसे ठाटसे करती है, मानो

सत्तर वर्षकी बुढ़िया! किन्तु अपने हृद्गत-भावको छिपानेके लिए बात काटकर बोली,—यह विद्या तुझे कहाँ मिली, मैं तो यही आश्चर्य करती हूँ। अच्छा हाँ, कहो;—अभी जाने दो यह बात; और किसी दिन पूछूँगी।

प्रभाने कहा,—छोटी बहूको सबलोग बहुत लजधर कहते हैं। अभी कलकी लड़की और पतिके लिए कैसी निर्लज्जतासे बैठी है कि देखकर लज्जा मालूम होती है। भला सोचो तो, क्या इसीका नाम लज्जा है? लज्जा करती थीं, हमारे यहाँ सन्त-रामकी दुलहिन। अहा-हा! उसकी सत्रह वर्षकी अवस्थामें सन्तराम मर गये, किन्तु वह औरत मारे लाजके रोयीतक नहीं। ऐ, तभी तो लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। छोटी बहू अपने पतिकी चर्चा सुनकर तो झुँझलाती थी और अब वह लाज ही न मालूम कहाँ चली गयी। वाहरी दुनिया! भला यह कैसी लज्जा? अभी तो भलीभाँति पतिका मुँह भी नहीं देखा था। कहीं दो-चार वर्ष बीत गया होता, तब तो न जानें क्या कर डालती। परन्तु......कहकर प्रभा एकाएक रुक गयी।

सरलाने कहा,—'परन्तु' क्या? चुप क्यों होगयी?

प्रभाने कहा,—यों ही चुप होगयी; जाने दो और बातें लेकर क्या करोगी।

सरलाने किंचित् भौंहें चढ़ाकर कहा,—तो अभी तुमने बात ही कौनसी कही? बोलो न; 'परन्तु' क्या?

प्रभाने कहा,—परसों रोना-पीटना शुरू होनेके पहले कोई

आया था, याद है ?

सरलाने ज़रा याद करके कहा,—हाँ, छोटी भाभीके मैकेसे एक भले आदमी आये थे ।

प्रभाने कहा,—वह आदमी इतना बन-ठनकर क्यों आया था, यह तुम नहीं जान सकतीं । मेरा अनुमान है कि छोटी बहूसे और उस आदमीसे प्रेम है । अभीतक तो मैं यों ही बातें करके तुम्हें भुलवा रही थी, पर अब सच्ची बात कहे देती हूँ । देख लेना, मेरी बात ठीक होती है या नहीं ।—यह कहते समय प्रभाकी त्योरियाँ बदल गयीं । उसने आवेशमें आकर कहा,—गाँव-घरकी औरतें समझती हैं कि छोटी बहू विधवा होनेके कारण इतना दुःखी है ; पर यह बात बिलकुल ग़लत है। देखती नहीं हो, उसकी आँखोंसे एक बूँद आँसू भी नहीं गिर रहा है । भला ऐसा भी कहीं होता है कि पति मर जाय और आँसू न गिरे !

सरलाने इस यौवन-निगूढ़ अर्थधारी प्रेमको पूर्णरीतिसे तो नहीं समझा, पर कितना समझा और किस रूपमें समझा, यह कहना भी कठिन है । उसने किंचित् उत्सुकतासे पूछा,—अच्छा तो उसने अन्न-जल क्यों छोड़ दिया है ?

प्रभाने कहा,—वह यहाँसे भाग जानेकी चिन्तामें है । चिन्तामें आँसू नहीं गिरता । देख लेना अवसर पाते ही वह यहाँके लोगोंके मुखपर कालिमा पोतकर अपने उसी यारके साथ निकल जायगी । देखो न, उसने अभीतक अपना सुहाग-

चिह्न किसीको नहीं हटाने दिया। हटावे क्यों, क्या वह अपने-को विधवा समझती है?

प्रभाने सारी बातें ऐसे ढंगसे कहीं कि सरलाको उसकी बातोंपर विश्वास होगया। उसने पूछा,—तो क्या वह आदमी इसे भगा ले जानेके लिए ही आया था?

प्रभाने कहा,—सो मैं नहीं कह सकती, क्योंकि दोनोंकी बातें मैं सुन न सकी। किन्तु लक्षणोंसे मालूम होता है कि उसीके साथ जायगी। पर देखो बबुई, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, इसकी चर्चा किसीसे भूलकर भी न करना।

सरलाने फिर अपनी सफाई दी। इसके बाद दोनोंमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। कहाँ तो सरला आयी थी प्रभासे कोई खाने लायक चीज़ माँगने! यह सोचकर कि ले चलकर रमाको खिलाऊँगी और कहाँ क्या होगया। सारी बातें सुन-कर सरलाके हृदयमें रमाके प्रति चाहे घृणाका भाव उत्पन्न न हुआ हो, किन्तु अब रमाको खिलानेके लिए कुछ माँगने-जाँचने-की उसकी हिम्मत न पड़ी।

रात थोड़ी शेष थी, इसलिए सरला सोनेके लिए जाने लगी। उसके जाते समय सरलाने फिर गिड़गिड़ाकर कहा,—देखो बिट्टी, मैं तुम्हें अपना प्राण समझकर ऐसी ऐसी बातें सुना देती हूँ। भूलकर भी किसीसे मत कहना, और यदि कभी किसीके सामने धोखेसे यह बात निकल भी आवे तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु मेरा नाम न बतलाना।

'अच्छा' कहती हुई सरला चली गयी। अपने कमरेमें जा पलँगपर लेटकर प्रगाढ़-निद्रामें तन्मय होजानेकी चेष्टा करने लगी। थोड़ी ही देरमें उसका मनोर्थ सिद्ध भी होगया, किन्तु प्रभाको बहुत देरतक नींद न आयी। वह मन-ही-मन प्रसन्न होकर अनेक तरह-की बातें सोच रही थी। आज उसने अपने जीवनका एक बहुत बड़ा कार्य कर डाला। अब उसके हृदयका भार कुछ हलका होगया। वह सोचने लगी कि सरलाद्वारा यह बात बहुत शीघ्र चारों ओर फैल जायगी और अधिक निन्दा होनेपर असह्य हो जानेके कारण रमा अवश्य ही कहीं जाकर डूब मरेगी। फिर तो लोगोंपर मेरी धाक जम जायगी। लोगोंको इस बातका विश्वास हो जायगा कि जो बात होनेवाली होती है, उसे यह पहले ही जान लेती है। इस प्रकार लोगोंमें मेरी प्रतिष्ठा भी हो जायगी और झानू-रमाकी इति हो जानेसे जीवनका कंटक भी दूर हो जायगा।

ओफ्! इतनी स्वार्थ-परता! इतनी अधमता!! दूसरेकी इज़्ज़त नष्ट करना, सर्व-नाशकी चेष्टा करना, मनुष्य-जातिके पिशाचके लिए बिलकुल सरल काम है। कठोरताकी प्रतिमूर्ति प्रभे! तूने यह क्या किया? क्या भोली रमाका वैधव्य भी तुझे साधारण दंड जँचा?
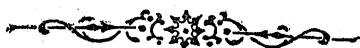
नवाँ परिच्छेद
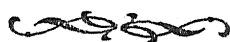
प्रभाको सफलता प्राप्त हुई। यद्यपि सरला एक गम्भीर-स्वभावा कन्या थी तथापि उसने प्रभाकी बातोंकी चर्चा अपनी दो एक अन्तरंग सखियोंसे कर दी। हाँ, इतना अवश्य था कि उसने अपनी ओरसे तनिक भी नमक-मिर्च न लगाकर उसे सुसंस्कृत करके कहा। इसका कारण यह था कि पहले तो वह ऐसे स्वभावकी लड़की नहीं थी, दूसरे वह रमाको बहुत चाहती थी। यदि प्रभाने अन्तिम समयमें यह बात न कही होती कि,—"यदि किसीसे कहना भी तो मेरा नाम न बतलाना"—तो सरला जीवन-पर्यन्त उस बातकी चर्चा किसी से न करती। किन्तु कहनेमें उसने कोई रुकावट न समझकर अपनी साधारण बुद्धिसे यही स्थिर किया कि सहेलियोंसे राय लेकर रमाको बचानेके लिए यत्न करना जरूरी है। उसके भाग जानेसे बड़ा कष्ट होगा।

किन्तु जैसी सहानुभूति सरलाकी रमाके प्रति थी, वैसी अन्यान्य सखियोंकी कैसे हो सकती है! अतएव एक कानसे दूसरे कानमें पड़ते ही वह बात हवा होगयी। चारों ओर स्त्री-पुरुषोंमें रमाकी ही आलोचना-प्रत्यालोचना होने लगी और बात भी बहुत बढ़ गयी। अच्छी बातोंका प्रचार विलम्बमें होता है, पर किसीकी निन्दा बहुत जल्द फैल जाती है। अब

रमाको सबलोग घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। पहले हरवक्त उसके पास दस-पाँच स्त्रियाँ बैठी रहती थी, पर अब एक भी स्त्री उसके पास दिखलायी नहीं पड़ती। धीरे धीरे यह बात रमाके कानतक भी पहुँच गयी। यदि रमा सज्ञानावस्थामें होती, तो अवश्य ही मारे लज्जाके आत्म-हत्या कर लेती, किन्तु इस समय उसे कुछ समझ ही न पड़ा। उसकी स्थितिमें ज़रा भी अन्तर नहीं पड़ा। इसलिए लोगोंका सन्देह और भी पुष्ट होगया।

उदीयमान शारदीय चन्द्रदेव दो घड़ी रात बीतनेकी सूचना देनेके लिए आकाशमें दिखलायी पड़े। रामपुर गाँवमें किंचित् कोलाहल मच गया। माताएँ अपने बच्चोंको खिला-पिलाकर सुलानेके लिए अधीर हो उठीं। बड़े-बूढ़े सोनेकी तैयारी करने लगे। किन्तु रमा ज्योंकी त्यों अपने स्थानपर बैठी है। रात है या दिन, उसकी प्रशंसा हो रही है या निन्दा, इसका उसे क्या पता? उसे तो लगन है, बस अपने प्राणनाथकी! धुन है स्वामि-सम्मिलनकी! विश्वास है आशा-पूर्तिकी!

इधर पंडित शम्भूदयाल पुत्र-शोकमें बैठे हुए थे। उनके पास दस-पाँच आदमी ज्ञानदत्तके अन्त्येष्टि संस्कारकी सामग्री-पर विचार करनेके लिए उपस्थित थे। सबलोग बिलकुल शान्त थे, किसीके मुँहसे शब्द नहीं निकलता था। इतनेमें एक अखबार-प्रेमी, लोगोंकी नज़रें बचाकर पासमें पड़ा हुआ समाचार-पत्र धीरेसे खोलकर पढ़ने लगा। पहले ही उसकी

दृष्टि 'भूल संशोधन' शीर्षक समाचारपर पड़ी। इच्छा न होते हुए भी वह मनुष्य उसे पढ़ने लगा। लेख समाप्त भी नहीं हुआ कि वह बड़े गम्भीर भावसे गर्वके साथ बोल उठा,—"सब झूठ है, ज्ञानू बबुआको कुछ नहीं हुआ है।" सबलोग आतुर दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए पूछने लगे,—"यह कैसे मालूम" "क्या अखबारमें छपा है?" "क्या लिखा है, पढ़ो तो।" किन्तु अध्ययन-शील मेधावी पुरुषकी भाँति वह मनुष्य इतने प्रश्नोंके उत्तरमें एक अक्षर भी न बोला और मस्तक सिकोड़कर उक्त समाचारको शीघ्र समाप्त करनेमें तन्मय रहा। उसका यह कार्य लोगोंको बहुत बुरा लगा। यहाँतक कि एक आदमीने लपककर अखबार छीन लिया और पढ़कर सबलोगोंको सुनाने लगाः—

'भूल संशोधन'

"गत ता० १४ जूनको जो 'हायरे दुर्दैव' शीर्षक शोक-समाचार प्रकाशित हुआ था, वह ग़लत है। पं० ज्ञानदत्तजीको बहुत ही गहरी चोट लगी थी, यह बिलकुल सही है; बचनेकी आशा नहीं थी, इसमें भी सन्देह नहीं; पर अब वह बहुत अच्छी तरहसे हैं। इन पंक्तियोंका लेखक स्वयं उनसे मिलने गया था। उन्होंने होश-हवाससे बातें कीं और कहा कि अब मेरे किसी अंगमें पीड़ा नहीं है। सिविल-सार्जन डाक्टरने भी कहा कि,—उस दिन गर्मी इतनी बढ़ गयी थी कि मालूम हुआ, कलेजेपर गहरा सदमा पहुँचा है; पर अब मालूम होता है कि

कलेजेपर बिलकुल चोट नहीं लगी है और अब इन्हें दो-तीन दिनके भीतर ही अच्छा हो जायगा।

पहले दिन आठ घंटेतक पंडितजी बिलकुल अचेत थे—यहाँतक कि शहरमें चारों ओर उनका शोक-सम्बाद भी फैल गया! इसीसे हमारे एक सम्बाद-दाताने फोनसे उक्त समाचार प्रकाशनार्थ भेज दिया। बहुधा ऐसे समाचार झूठ नहीं हुआ करते, अतः दृढ़ निश्चय किये बिना ही सबेरेके अंकमें प्रकाशित कर दिया गया। हमें अत्यन्त खेद है कि उक्त दुःसम्बाद-को पढ़कर पंडित ज्ञानदत्तजीके स्नेहियोंको मार्मिक वेदना हुई होगी। आशा है कि यह समाचार पढ़कर पाठकगण सन्तुष्ट होंगे।

—'सम्पादक'

यह समाचार सुनकर लोगोंका हृदय आनन्दित हो उठा। पंडित शम्भूदयालकी आँखें खुल गयीं, शरीरमें नये प्राणका संचार हो गया। मारे आह्लादके उनके नेत्रोंसे अश्रु-वर्षा होने लगी। उस समय वहाँके लोगोंमें हर्षका अपूर्व समाँ बँध गया था। किन्तु न जानें क्यों थोड़े ही देरमें शम्भूदयालके हृदयसे वह आनन्द फिर तिरोहित होगया। शायद उन्होंने यह सोचा कि अखबारोंके समाचारका क्या विश्वास! सम्भव है कि मिथ्या ही हो। जो भी हो, उनका अश्रु-प्रवाह पूर्ववत् ही जारी था, इसलिए उनका भीतरी भाव और किसीको कुछ

भी मालूम न हुआ। हां, अश्रु-प्लावनमें अन्तर केवल यही हुआ कि पहले वह उत्फुल्ल हृदयका शीतल प्रसेक था और अब परितप्त हृदयकी उष्ण भाफ। शम्भूदयालको इस बातकी भी सुध न रही कि यह समाचार घरमें गया या नहीं। यदि उनके कहनेपर रहता तो सम्भवतः इस समय उक्त समाचार घरके लोगोंको मालूम भी न होता; पर किसीने बिना उनकी आज्ञाके ही भीतर जाकर देवकीसे कह दिया। देवकी तुरन्त ही हाँफती हुई रमाके पास गयी और सुसम्बाद सुनाया। पहले तो रमाको कुछ सुनायी न पड़ा, किन्तु बारबार कहने-पर उसने सुना या नहीं, कौन जाने। न जाने क्यों उसमें कुछ भी परिवर्तन न हुआ। सम्भव है, उसके हृदयमें भी ससुरके ही भाव उत्पन्न होगये हों। इतनेमें सरला भी वहाँ आ गयी। भाभीकी दशा देखकर पहले तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, बाद प्रभाकी दूरदर्शिता-पूर्ण बातोंकी याद आते ही वह गम्भीर होगयी।

इतनेमें शम्भूदयाल हाथमें एक चिट्ठी लिए दरवाजेके पास आकर खड़े होगये। देवकीकी ओर मुखकरके प्रसन्नताके साथ बोले,—ज्ञानूका पत्र आ गया; यह पत्र उनके हाथका लिखा हुआ है। अब मुझे पूरा यकीन होगया।

देवकीने चकित होकर पूछा,—कब आया? क्या लिखा है?

शम्भू—अभी अभी डाकिया दे गया है। लिखा है, यह कहकर आँसू बहाते हुए भर्राई आवाजसे पत्र पढ़ने लगेः—

"पूज्यवर पिताजी,

चरण-कमलोंमें सादर प्रणाम। इस अभागे पुत्रने आपको बड़ा कष्ट दिया! पर जान-बूझकर नहीं; अतः सर्व-प्रथम मैं क्षमा माँगनेकी धृष्टता करता हूँ। पूजनीया माताजीको कितना कष्ट हुआ होगा, भैयाको तथा घरके और सब प्राणियोंको कितनी मानसिक यंत्रणा भोगनी पड़ी होगी, इसका अनुमान करनेसे चित्त व्याकुल हो जाता है—आँखोंके सामने अँधेरा छा जाता है। बस अब तो मेरा निस्तार तभी हो सकता है, जब आपलोग मुझे खुले दिलसे प्रसन्नतापूर्वक क्षमा-प्रदान करेंगे। बाबूजी, आपके आशीर्वादसे अब मैं बिलकुल अच्छी तरहसे हूँ। पर हाँ यह अवश्य है कि अबकी आपलोगोंके आशिषने ही मुझे नव-जन्म दिया है; नहीं तो यह आशा न थी कि पुनः आपके चरणोंके दर्शन होंगे तथा स्नेहमयी माताकी गोदमें बैठकर वह अद्वितीय स्वर्गीय आनन्द लूटनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। बलीयसी विधि-विडम्बना जानी नहीं जाती! इस दुर्दिनमें मेरी देख-रेख करनेके लिए आपने पहले ही पं० राम-दीनको भेज दिया था। पंडितजीने मेरी बड़ी सहायता की। जाना नहीं जाता कि कब क्या होगा। कहाँ तो उस दिन घरके लिए प्रस्थान करनेकी तैयारी हो रही थी और कहाँ क्या होगया।

तारका जवाब दे चुका था, इसलिए यह पत्र देरमें लिख रहा हूँ। अब घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं है। माँको भी

सान्त्वना दीजियेगा। मैं बिलकुल अच्छा होगया हूँ, अब चलने-फिरनेमें भी मुझे कोई कष्ट नहीं होता। यदि ईश्वरकी दया हुई, तो आज शामको अस्पताल (hospital) से छुट्टी भी मिल जायगी। यह बात मुझे अच्छी तरह मालूम है कि इस पत्रसे आपलोगोंको सन्तोष न होगा—जबतक आँखों देखकर छातीसे लगाते हुए मुझे अभयदान न देंगे। किन्तु-इसके लिए अधीर न होइयेगा, मैं बहुत जल्द दर्शन करनेके लिए आपकी सेवामें उपस्थित होऊँगा। जहाँतक सम्भव है, बृहस्पतिवारको पंजाबमेलसे मैं अवश्य रवाना होकर शुक्रवार-को कल्वारोड पहुँचूँगा।

ता० २३—६—२८

Bagla hospital
Harrisson road,
Calcutta

आज्ञाकारी—
ज्ञानू

पत्र पढ़ते समय कईबार शम्भूदयालका गला भर आया; नेत्र भी कई बार अश्रु-पूर्ण होकर ज्योति-हीन होगये। इस प्रकार रुक रुककर उन्होंने पूरा पत्र पढ़ सुनाया। देवकी सिस-कती जाती थीं। पत्र समाप्त हो जानेपर भी "स्नेह-मयी माँ-की गोदमें बैठकर......" यह वाक्य उनके हृदयमें उमड़ता रहा। बहुत देरतक दोनोंके मुखसे कोई शब्द न निकला। शम्भूदयाल मूर्तिवत् खड़े रहे। देवकीने बड़े कष्टसे अस्पष्ट

स्वरमें कहा,—जब ज्ञानूको आँखों देखूँ तब जानूँ, अभी क्या ?

क्षण कालतक चुप रहनेके बाद अश्रु-मोचन करते हुए फिर देवकीने कहा,—इसी अगले शुक्रवारको ही आनेके लिए लिखा है न ?

शम्भूदयालने दुःखित स्वरमें कहा;—हाँ ।

इसके बाद वह पत्र देवकीको देकर उन्होंने कहा, बहूको धीरज दो और पत्र पढ़नेके लिए कहो। यह कहकर वह बाहर चले आये। उनके मनमें नाना प्रकारकी तरंगे उठ रही थीं:—तारका जवाब ज्ञानूने भेजा, किन्तु तारघरकी गड़बड़ीसे मिला नहीं। अवश्य ही इसके लिए टेलीग्राफ आफिसको लिखना चाहिए। अब ज्ञानूको कहीं न जाने दूँगा । चार दिनकी-जिन्दगीमें आँखोंके सामने रखकर बोध करूँगा । यही बात सोचते हुए बैठकमें आये । थोड़ी ही देरमें चापलूसोंकी सभा गर्म हुई। एकने कहा,—तभी तो मैं कहता था कि भैया सरीखे साधु आदमीपर ऐसा बज्रपात कभी नहीं हो सकता। मनुष्यसे अन्याय काम हो सकता है, पर ईश्वर अन्याय नहीं कर सकता ।

दूसरेने कहा,—मैं तो दोनों बेला भगवतीके मन्दिरमें जप करता था और यही प्रार्थना करता था कि हे जगज्जननी, ज्ञानू बबुआके आरोग्य होनेका शीघ्र समाचार सुनाओ। माईने आज मेरी विनती सुन ली ।

तीसरेने कहा,—भैयाका शरीर सूखकर आधा होगया ।

चौथेने कहा,—आधा ? वाह भाई तुम भी खूब कहते हो ! अरे भैया बड़े शान्त आदमी हैं, चलते-फिरते और बोलते-चालते रहे, नहीं तो शरीरमें क्या रह गया है । रुपयेमें एक पैसा भी तो नहीं रह गया है ।

ये सब बातें वे ही लोग कर रहे थे, जिनके यहाँ शम्भूदयालका पुराना पावना टूटा हुआ था और जो लोग कुछ अन्न-पानी, दान-दक्षिणा पाते थे । शम्भूदयाल अपना बहुतसा रुपया तथा गल्ला लोगोंको छोड़ दिया करते थे । ऋण-भार इतना अधिक होजानेपर भी उनकी दान-दक्षिणा-प्रियता कम नहीं हुई थी । उनकी यह उदारता गाँवभरमें ही नहीं, बल्कि आसपासके गाँवोंमें भी प्रसिद्ध थी । इसीसे चापलूसोंकी बन आती थी । यदि सच पूछा जाय तो चापलूसों और चुगुलखोरोंके भरेमें आनेके कारण ही इस धनी घरकी सारी सम्पत्ति मिट्टीमें मिल गयी ।

शम्भूदयालने अपने मिथ्या वैभवका अनुभव करते हुए मधुर स्वरमें कहा,—खैर ज्ञानूका कुशल-समाचार आ गया, शरीर तो होता जाता रहेगा ।

'हाँ हाँ भैया,' 'बस यही भैया,' 'हाँ भैया हाँ,' 'यही भैया यही,' आदि ध्वनिसे बैठक गूँज उठी । इतनेमें बाहरके दो-चार सभ्य मनुष्य सहानुभूति प्रकट करनेके लिए आ गये । उन लोगोंको यह नयी खबर नहीं मिली थी । शम्भूदयालने आदरपूर्वक सबलोगोंको बिठाते हुए ज्ञानदत्तकी कुशल कह सुनायी ।

लोगोंने हर्ष प्रकट किया। इस प्रकार एक-एककर बहुतसे लोग आ जुटे और बातका सिलसिला जारी रहा।

इधर रमा अपनी उसी पहली हालतमें बैठी हुई थी। ससुरने पत्र पढ़कर सुनाया, देवकीके साथ दो-चार बातें कीं, किन्तु उसे कुछ पता नहीं। उसके कानतक वे शब्द पहुँचते ही नहीं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता; क्योंकि देवकीके निकट ही आड़में तो वह भी बैठी हुई थी। हाँ यह अवश्य था कि वह संज्ञा-हीन थी, शब्दार्थ-ज्ञान उसे कुछ भी नहीं हुआ। हाय! इस समय अनुपम रूपवती युवती रमाकी दशा देखकर बेहोशी आ जाती है। इस समय तो उसे पहचानना भी कठिन है। असमयमें कुम्हलाये हुए कुसुमकी हीनताकी भाँति उसका मुख मुरझाया हुआ, सूखा और उदास है। न गालोंपर लाली है, न आँखोंमें तेज। पति-शोकने उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया है! यद्यपि फणिनी सदृश कुसुम गन्धा-वेणी अब भी ज्योंकी-त्यों उसकी पीठपर लहरा रही है, बढ़िया किनारेदार रेशमी साड़ी पहने हुए है, बदन बहुमूल्य चोलीसे कसा हुआ है, जहाँ-तहाँ हीरा-पन्ना जड़ाऊ स्वर्णालंकार उसके शरीरपर जगमगा रहे हैं, तथापि रमाकी द्युति ही बदल गयी है। यदि ज्ञानदत्त अपनी प्रेयसीको इस स्थितिमें देखते तो उनका हृदय विदीर्ण हो जाता। कौन कह सकता है कि विधाताके निपुण हाथोंसे रची हुई रमाके उस हँसीकी अपूर्व कमनीयताका दिग्दर्शन करनेके लिए ज्ञानदत्त व्याकुल न हो जाते? आषाढका

महीना है; दिन-रात जलका फुहारा छूट रहा है; कई दिनकी झिपझिपाहटसे पृथिवीकी ग्रीष्म-संचित ज्वाला शान्त हो चली है; सृष्टिभरमें शीतलता आ गयी, पर रमाकी ज्वाला ज्योंकी-त्यों है। ओफ् कैसी नादानी है! भला रमाकी हृदय-ज्वाला कहीं वर्षासे शान्त होनेवाली है? उसके उद्वेलित हृदयके उछ्वासमें कितनी ज्वाला है, इसपर भी विचार किया है? रमाके उन करुण-कातर दीन नेत्रोंमें क्या है, यह जानना सहज नहीं। रमाकी अनन्य पति-भक्ति और शोक-पूर्ण स्थिति अकथनीय है। प्रभा जैसी कठोर-हृदया स्त्रीको छोड़कर संसारमें किसीका सामर्थ्य नहीं जो रमाकी विगलित निस्सहाय दीन दशाको देखकर पानी न हो जाय। रमाकी आधुनिक मुखाकृति उस भिखारिनीकी भाँति है जो मूक-वाणीमें बड़ी दीनता और अधीरताके साथ समूचे जगत्से पति-दर्शन-भिक्षा माँग रही है।

वाहरी अखबारी दुनिया! धन्य है तेरी लीला। यह तूने क्या किया सर्वनाशिनी? तू तो 'भूल संशोधन' छापकर दूर होगयी और यहाँ रमाका जीवन ही चौपट होगया होता। बलिहारी है इस सम्पादन-कलाकी! यदि रमाकी दशा देखकर भी तुझे अपनी कृतिपर लज्जा न आयी, यदि रमाकी अपूर्व-कष्ट-सहिष्णुतासे भी तेरी बानि (आदत) न छूटी, तो तुझे किन शब्दोंमें और क्या कहा जाय, इसका निर्णय तू ही कर! सम्पादन-कले! यह कहकर तू अपना पिंड छुड़ानेका दुस्साहस

न कर कि ऐसी त्रुटियोंका होना अनिवार्य है। क्योंकि संसार-में कोई ऐसा काम नहीं है, जिसका कोई-न-कोई यत्न न हो। रमाकी मार्मिक यंत्रणाका स्मरण करके यदि तुझे तरस न आया, तो तू ही समझ कि संसार तुझे क्या कहेगा! यदि इसी प्रकार समय समयपर लोगोंको अकारण तेरी अदूरदर्शितासे असह्य-पीड़ा पहुँचती रही, तो स्वयं ही विचार कि परमात्माके यहाँ तू कितने भयानक दंडकी अपराधिनी समझी जायगी।

सासने वह पत्र रमाके सामने किया। रमाने उस ओर ध्यान नहीं दिया। देवकीने कहा,—ले बेटी ज्ञानूकी चिट्ठी आ गयी।

रमाने सुना ही नहीं। यदि सुनती भी तो सम्भवतः यह बात उसे स्वप्नवत् प्रतीत होती। देवकीने रमाका किंचित् घूँघट हटा पत्र खोलकर उसके सामने रख दिया। रमाकी दृष्टि उस पत्रपर पड़ी। बहुत देरतक बड़े गौरसे उसे देखती रही। उस समय उसकी दृष्टि योगीके दृष्टिके समान स्थिर थी। जान पड़ता है, उसकी चेतना अब भी ठीक नहीं हुई है। हो सकता है कि अभी वह अक्षरोंकी पहचान कर रही हो। इतनेमें पड़ोसकी एक स्त्री आ गयी। उसने देवकीसे कहा,—बहू अभीतक नहीं उठी क्या बहन?

देवकीका ध्यान रमाकी ओरसे टूटा। आगता स्त्रीकी ओर मुख करके बोली,—अभी तो इसे कुछ चेत ही नहीं हुआ, बैठो।

पड़ोसिनने बहूकी ओर दृष्टि करके कहा,—मोरि दैया! भला बहू अब तुम्हें क्या हुआ है? ज़रा सोचो तो सही, तुम्हारे बराबर सौभाग्य संसारमें कितनी स्त्रियोंको प्राप्त होता है? अब……

इतनेमें रमाने वह पत्र उठाया। ज्योत्स्नासे भींगी बसन्त-की एक नीरव विभावरीमें वायुका जो झोंका आया, उसके कल्पित स्पर्शसे रमाके प्राण सिहर उठे। मानो उसको किसीने जगा दिया—अद्भुत शक्ति भर दी। देवकीने पड़ोसिन-को इशारेसे रोक दिया। पड़ोसिनने समझा कि कहना काम कर गया। अतः वह फिर कुछ बोलना ही चाहती थी कि देवकीने मनाकर दिया। क्योंकि देवकी यह बात अच्छी तरह जानती थी कि बहू किसीकी बात नहीं सुन रही है। वास्तवमें बात भी ऐसी ही थी। पड़ोसिनकी बातें सुनकर उसने पत्र उठाया, यह बात नहीं है। अभीतक तो उसका ध्यान ही न जाने कहाँ था। कहाँ क्या, स्वामी-मूर्तिमें तन्मय था। बहुत देरतक स्वामि-लिखित अक्षरामृतका दृष्टि-पान करनेके बाद अब उसमें चेतना आयी है। बलिहारी है, रमाकी स्वामि-भक्ति-की! रमा उस पत्रको आद्योपान्त पढ़ गयी। बँधा हुआ जल-प्रवाह कई दिनोंके बाद टूट जानेके कारण उमड़ पड़ा। जान पड़ता है कि हृदयमें भीषण ज्वाला उत्पन्न होनेके कारण अबतक वह जल-धारा वहीं भस्मसात् होती जाती थी, और अब वह ज्वाला कम होगयी, अतः जल-प्रवाह नेत्रोंद्वारा बह

चला। रमा होशमें आयी और घूँघट काढ़ लिया। देवकोको यह सब देखकर धैर्य हुआ।

धीरे धीरे और बहुतसी स्त्रियाँ वहाँ आ जुटीं। प्रभा भी अपने कमरेमें अकेली न रह सकी। सरला पहलेहीसे आकर बैठी हुई थी। प्रभा भी उसके पास ही जा बैठी। देखा, रमाकी आँखें मोतीके बड़े-बड़े दाने बिखेर रही हैं और उन्हें पृथिवी माता समेटती जा रही हैं। प्रभाने सरलाकी ओर मुख करके नेत्र-कटाक्ष किया। सरला उसका नेत्रद्वारा यह कहना अच्छी तरह समझ गयी कि, देखो ढोंग; आज आँसू भी गिर रहा है।

बाहरी दुष्ट-स्वभावा प्रभा! रमाने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू उसके पीछे हाथ धोकर पड़ी है? बालिका सरलाके मनमें रमाके प्रति घृणाका भाव उत्पन्न करनेसे तेरा क्या उपकार होगा? नहीं नहीं, भूल हुई। सरलाके द्वाराही तो तेरी अभीष्ट-सिद्धि होगी। सचमुचही तू एक चतुर कुटनी है। तू स्वयं तो दूर रहना चाहती है और सरलाके द्वारा रमाकी बदनामी कराना चाहती है। फिर सरलाको अच्छी तरह साजे बिना तेरा कार्य कैसे सिद्ध होगा। प्यारी सरला! इस कुघातिनी प्रभाके कुचक्रसे रामजी तेरा भला करें! यदि प्रभामें समझने और पहचाननेकी शक्ति होती तो वह जानती कि रमाका पति-प्रेम कितना उच्च और आदर्श-पूर्ण है! पर यह समझना बिलकुल भूल है; जो प्रभा रमाको मटियामेट करनेका

दावा रखती है, उसमें क्या इतनी साधारण बुद्धि भी नहीं है ? वह सब कुछ जानती है, केवल ईर्ष्याके कारण उसकी ऐसी अनभिज्ञता प्रतीत हो रही है। किन्तु इसपर तो न जाने क्यों विश्वास नहीं होता। रमाके प्रति प्रभाका सन्देह करना असम्भव नहीं कहा जा सकता। युवती स्त्रीका अन्त ईश्वर भी नहीं जानता। रमामें तो यौवन और सौन्दर्य दोनों हैं। अच्छा तो क्या प्रभाका समझना ठीक है ? कदापि नहीं ! अहा! रमाके स्वप्न-रञ्जित नेत्रोंमें क्या ही विह्वल करुणापूर्ण माधुर्य विराजमान है ! आह, री दैया ! कौन माईकी लाड़िली अपने हृदयपर हाथ रखकर कह सकती है कि रमा दुश्चरित्रा है ? प्रभे ! सच बता, तू ईर्ष्या-डाहके कारण ही ऐसा कह रही है न ? नहीं ? तो क्यों ?—अच्छा मालूम होगया। कभी कभी ईर्ष्या-द्वेषके कारण मनुष्यकी बुद्धि उल्टी भी हो जाती है। अतः रमाके प्रत्येक कार्यको तेरी दृष्टि विपरीत ही देखती होगी। प्रभे ! अब भी सँभल जा; मालूम है कि ज्ञानदत्तका सुसम्वाद मिलनेसे तेरी इच्छापर बड़ा गहरा धक्का पहुँचा। पर यह तेरी भूल है, ज्ञानदत्त और रमासे तेरा सर्वथा उपकार ही होगा। यदि तू शुद्ध हृदयसे समझनेकी चेष्टा करेगी तो जान सकेगी कि रमाके हृदयका पवित्र पति-प्रेम क्षुद्र-नदीका ससीम जल-प्रवाह नहीं है,—वह है अनन्त सीमा-हीन प्रशान्त सागर। वह साधारण वायुसे हिलनेवाला नहीं है, और न साधारण सूर्य-तापसे उसमें उष्णता ही आ सकती है। रमाको अच्छी

तरह मालूम है कि स्वामी-प्रेम संसारको दिखलानेके लिए नहीं है,—स्वामी-प्रेम ऐहिक मिलनके लिए नहीं है,—स्वामी-प्रेम कहने-सुननेकी भी वस्तु नहीं है। इसलिए न समझो कि रमाका कोई काम दिखौवा है। समय बड़ा ही बलवान है, नहीं तो रमाकी तरफ अँगुली उठानेकी हिम्मत किसीकी न पड़ती। जब विधाता ही उसके बाम हैं—व्यर्थ ही इतना कष्ट पहुँचा रहे हैं, तो फिर मनुष्यका बाम होना आश्चर्य-जनक नहीं। यदि और समय होता तो प्रभा यहाँ आती ही न और यदि आती भी तो इतनी जलन होनेपर नाना प्रकारके वाक्य-विन्याससे कलहका उपसंहार करती हुई तुरन्त चली जाती। देवकी अन्यान्य स्त्रियोंके साथ बैठकर रमाकी सुश्रुषा कर रही है, यह क्या प्रभाके सहन करने योग्य बात है?

दसवाँ परिच्छेद

सन्ध्यादेवीका आगमन हुआ। शंखोज्वल शुभ्र-ज्योत्स्नासे पृथिवी आलोकित हो उठी। आज कई दिनोंके बाद आकाश निर्मल है। गौरीबाबूका साफ-सुथरा विशाल कमरा जगमगा रहा है। नीचे फर्शपर कीमती कालीन बिछा हुआ है, उसके ऊपर करीनेसे एक सुन्दर टेबिल सजाकर रक्खी हुई है। टेबिल-

के चारों ओर मखमली गद्देकी रंग-बिरंगी कुर्सियाँ लगी हैं। टेबिलके ऊपर दो-चार पत्र-पत्रिकाएँ तथा संगमरमरका बना हुआ एक कलमदान और एक होल्डर-स्टैंड आगरेकी कारीगरी-के परिचायक स्वरूप कायदेसे रक्खे हुए हैं। दीवारके सहारे चारों ओर पुस्तकोंसे भरी हुई शीशेदार आलमारियाँ खड़ी हैं। सुनहले फ्रेम-(चौखट) वाले चित्रों, ब्रैकेट्स नकली फूलोंके गमलोंसे कमरा सुसज्जित है। बेल-बूटेदार पेंटिंगसे कमरेकी शोभा दूनी हो रही है। बाहरमें ठीक दरवाजेके ऊपर एक गोलाकार घड़ी टँगी है। फुल पावरकी वस्त्राच्छादित तीन बिजली बत्तियाँ जल रही हैं, इससे यह कमरा समुज्वल सुन्दर प्रभातकी भाँति मनोरम प्रतीत होता है। यही गौरीबाबूके पढ़ने-लिखने तथा इष्ट-मित्रोंके साथ उठने-बैठनेका कमरा है। यह कमरा चौकके भीतरी भागमें चार-पाँच हाथकी ऊँचाईपर है। गौरीबाबू कलकत्ताके धनी-मानी लोगोंमें हैं और यह उनका निजी मकान है; इधर दो वर्षसे पिताका देहान्त हो जानेके कारण गौरीबाबू ही इस मकानके स्वामी हैं।

इसी कमरेमें एक तरफ तख्तपोशके ऊपर सादे राजहंसके पंखोंके समान कोमल और स्वच्छ बिछौनेपर अस्पतालसे लाकर रुग्ण ज्ञानदत्त लिटाये गये हैं। सिरहानेका तकिया ऊँचा करके उसीके सहारे ज्ञानदत्त लेटे हुए हैं और आसपासमें चार-छः मित्र कुर्सियोंपर बैठे शोक-प्रकाश कर रहे हैं। यद्यपि अब ज्ञानदत्त भलीभाँति चल-फिर सकते हैं, किन्तु गौरीबाबू उन्हें

कहीं भी नहीं जाने देंगे, इसकी भी चर्चा हो रही थी। दिनभर मित्रोंका आना-जाना लगा रहता है, इसलिए ज्ञानदत्तकी इच्छा भी कहीं जानेकी नहीं होती। फिर भी कल सन्ध्या समय मोटरसे गौरीबाबू हवाखोरीके लिए किलेके मैदान ले चलनेका प्रलोभन दिये हुए हैं। 'कितना ही आराम क्यों न हो, इधर-उधर घूमने-फिरनेवाले आदमीके लिए एक जगह पड़ रहना, जेलके कष्टसे कम दुःखप्रद नहीं होता,'—यह बात गौरीबाबूने कही। रामदीनने इसका समर्थन करते हुए कहा,—शो तो शच है बाबू-जी। हमारे ज्ञानू बबुआ जो है शो शंझा-शबेरे शब दिन घूमते रहे।

रामदीनकी बातें सुनकर मित्र-मण्डली हँस पड़ी। गौरी-बाबूने इशारेसे लोगोंको रोका और रामदीनकी ओर मुख करके कहा,—ठीक है पण्डितजी।

रामदीनने कहा,—अब दो ही तीन दिनमें घर चलना है, इश वाश्ते कालीमाईका दरशन भी कै लेना चाहिए।

आजकलके युवकोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होगयी है कि वे पुराने आदमियोंकी बात बड़े चावसे काटते हैं। एकने कहा,—दर्शन करनेसे क्या होता है पण्डितजी?

रामदीनने कहा,—देवीके दरशनशे बड़ा फल होता है बाबू। पुराणोंमें बड़ा माहात्म्य लिखा है।

युवकने कहा,—आमका या और किसीका?

बेचारे रामदीनकी समझमें कुछ भी नहीं आया। कहा,—ऊँ?

युवकने कहा,—हूँ।

सबलोग खिलखिलाकर हँस पड़े। ज्ञानदत्तसे भी उस हँसीमें योग दिये विना न रहा गया। बात टालकर हँसीको रोकते हुए उन्होंने कहा,—अच्छा, यह तो बतलाओ कि मुझे किस ट्रेनसे जानेमें आराम मिलेगा? सुनते हैं, आजकल गाड़ीमें भीड़ बहुत होती है।

युवकने कहा,—बस पञ्जाबमेलसे जाना ही ठीक है।

ज्ञानदत्तने कहा,—तो फिर सीट रिजर्व कैसे होगी? उसके लिए तो एक हफ्ता पहले सूचना देनी होती है न?

गौरीबाबूने कहा,—वाह भाई, तुम भी अच्छे रहे। अरे इस रिश्वतखोरीके युगमें भी ऐसी बातें कर रहे हो?

ज्ञानदत्त मुस्कराकर चुप रह गये। युवकने कहा,—घबड़ाइये मत, इसका प्रबन्ध गौरीबाबू करेंगे।

बहुत देरतक वार्त्तालाप होनेके बाद सबलोग उठकर चले गये। एकान्त पाकर ज्ञानदत्तपर आर्थिक चिन्ताका भूत सवार होगया। सोचने लगे, पासमें केवल पन्द्रह रुपये हैं, कैसे काम चलेगा! कम-से-कम एक सेकेण्ड और एक थर्डका टिकट लेनेके लिए तथा राह-खर्च और घुस देनेके लिए पचास रुपया होना बहुत जरूरी है। इसके अलावा इतने दिनोंके बाद क्या खाली हाथ घर चलना उचित है? औरोंकी बात तो दरकिनार, क्या भैयाके लड़केको भी योंही गोदमें लेंगे? लोग क्या कहेंगे? यही न कि बच्चेके प्रति इनके दिलमें कुछ भी प्रेम नहीं है। यदि होता तो क्या दो रुपये भी उसके हाथपर न धर देते?

अच्छा, उसके (रमाके) लिए कौन कौनसी चीजें ले चलनी चाहिएँ ? वह रुपया तो लेगी नहीं, और हम देंगे ही क्या कह कर ? अवश्य दो-एक अच्छी चीज़ उसके लिए खरीद लेना जरूरी है। किन्तु माँ और भाभी तथा भैया और बाबूजीके लिए कुछ न ले चलना बड़ा अनुचित होगा। लोग कहेंगे यह केवल स्त्रीका दास है। तो फिर कैसे काम चलेगा ? पासमें जो कुछ था, वह तो अस्पतालमें खर्च होगया। कहाँसे रुपये आवेंगे ? गौरीबाबूसे दो-तीन सौ रुपये ले लेनेमें क्या हर्ज़ है। नहीं, यह नहीं होनेका। मित्रके साथ लेन-देनका वर्त्ताव करना मूर्खता है,—मैत्रीमें फर्क डालना है। प्राणोंपर आ बीतनेपर ही मित्रकी सहायता लेनी चाहिए, अन्यथा नहीं। सो भी कहकर नहीं, यदि वह अपनेसे सहायता दे, तब।

मनुष्य कभी कभी उचित कारण न होते हुए भी बिना किसी युद्धमें विजय प्राप्त किये ही विजयीके और बिना पराजित हुए ही विजितके क्रमशः गर्व और निरादरका अनुभव करता है। ज्ञानदत्तके सम्बन्धमें भी यही बात हुई। जब बहुत राततक सोचते-विचारते थक गये, तब अचानक उन्होंने घर पहुँचनेपर लोगोंकी सम्मिलन-कल्पना की। सोचा,—मेरा नव-जन्म हुआ है, अतः माँका हृदय मुझे देखनेके लिए बेतरह छटपटा रहा होगा। हृदयसे लगाते ही उसकी—रमाकी—मार्मिक-वेदना मुरझा जायगी। अहा ! यौवनावस्थाके आनेपर भी मनोहर लज्जा शीलता-युक्त उसकी बाल्य-सुलभ-चपलता

कितनी प्यारी लगेगी! क्या अब भी वह वैसी ही होगी? पहले तो वह मेरे सामने शर्मसे गड़ी जाती थी, क्या अब भी वैसा ही करेगी? अवश्य वैसा ही करेगी। मेरे पहुँचनेपर पहले वह अबोध-बालिकाकी भाँति सिसकेगी! उस समय मैं भी अपने-को न सँभाल सकूँगा। पर यह दृश्य तो क्षणभरमें ही विलीन हो जायगा और मुझे देखकर उसके हृदयमें एक विचित्र प्रकारकी आनन्द-स्फूर्ति संचारित हो जायगी। फिर तो मैं उसे पकड़कर खूब दिक करूँगा। उसे चिढ़ानेमें क्या ही आनन्द मिलेगा!

इस प्रकारकी सुख-मय स्मृति-कल्पनामें ज्ञानदत्त विभोर होगये। खुशीसे उनका चेहरा चमक उठा। फिर सोचने लगे,—बाबूजीके पैरोंपर गिरते ही उनके शरीरमें प्राणका संचार हो जायगा। मैं क्या लाया हूँ और क्या नहीं, इसकी सुधि किसे रहेगी? मैं जीता-जागता उनके सामने पहुँचूँगा, यह क्या कम आनन्दकी बात है? किन्तु भाभीको प्रसन्न करनेके लिए मेरा पहुँचना ही काफी न होगा। इसलिए उनके लिए तथा उनके लड़केके लिए कुछ-न-कुछ ले चलना आवश्यक है। भैया-की विशेष चिन्ता नहीं है। मैंने यहाँ आकर बड़ी भूल की। यदि अपने डेरेपर होता तो थर्ड क्लासका टिकट लेकर चुपके-से गाड़ीपर सवार हो जाता। किन्तु अब यहाँ गौरी बाबूसे कैसे कहूँ कि मैं थर्ड क्लासमें जाऊँगा, मेरे पास रुपये नहीं हैं? वह अपने मनमें क्या कहेंगे? यही न, कि यह थर्ड क्लासका ही

आदमी मालूम होता है। खैर उनकी तो विशेष चिन्ता नहीं, पर उनके नौकरों-चाकरोंकी दृष्टिसे भी मैं उतर जाऊँगा। और फिर ऐसा कहनेपर भी तो छुटकारा नहीं हो सकता। गौरीबाबू तुरन्त ही कह बैठेंगे,—"कोई चिन्ता नहीं; आपके पास रुपये नहीं हैं तो क्या? मेरे पास तो हैं न? आखिर ये किस काम आवेंगे?" गौरीबाबू क्या मुझपर साधारण कृपा और प्रेम रखते हैं? यदि उनका असाधारण प्रेम न होता तो वह अस्पतालमें यह क्यों कहते कि,—'तुम हमारे यहाँ चलो। डेरेपर रहोगे:तो तुम्हें कष्ट होगा।' ओफ्! चोट लगनेके दिन-से लेकर अबतक कमसे-कम पाँच-छः सौ रुपये गौरीबाबूने मेरे लिए व्यय किये होंगे। ऐसे सच्चे मित्रका मिलना कठिन है। हाय! मैंने गौरीबाबूके साथ कुछ भी न किया! परमात्मा-ने मुझे किसी योग्य न बनाया।

ऊपरके विचारोंसे यह प्रकट होता है कि ज्ञानदत्तमें शास्त्रीय ज्ञानकी तो कमी नहीं है, पर व्यावहारिक ज्ञानकी कुछ-न-कुछ न्यूनता अभी अवश्य है। यदि न्यूनता न होती, तो वह धनी मित्रोंके सामने थर्ड क्लासमें बैठना अपमान-जनक कदापि न समझते। सम्मान-लोलुप युवक! अपनी वास्तविक स्थितिपर पर्दा डालकर मैत्री बढ़ानेकी आशा न करो! क्या धनी और निर्धन मनुष्यमें मैत्री नहीं होती? क्या सुदामाजी भगवान श्रीकृष्णकी मैत्रीके योग्य थे? मैत्रीकी दृढ़ता सत्यता-में है; नकि मिथ्या आडम्बरमें। मैत्रीका सम्बन्ध हृदयसे है

नकि वाह्य-पदार्थोंसे। किन्तु इस कमीके लिए ज्ञानदत्तको दोषी ठहराना उचित नहीं। अभी उनकी अवस्था ही क्या है? संसारका अनुभव एक दिनमें नहीं होता। किसी-न-किसी दिन गौरीबाबूके हृदयकी विशालता ज्ञानदत्तको स्वयं ही ज्ञात हो जायगी।

अन्तमें दो दिनके बाद ज्ञानदत्तने यह स्थिर किया कि आज डेरेपर चलना चाहिए और वहाँसे रुपयेका प्रबन्ध करना चाहिए। इसी निश्चयके अनुसार उन्होंने काम भी किया। गौरीबाबू अपनी आफिसमें गये थे, किन्तु अभीतक आये नहीं। ज्ञानदत्तने घरमें कहला भेजा कि,—साढ़े चार बज गये, अभी-तक गौरीबाबू नहीं आये; इसलिए अब मैं अपने डेरेपर जाता हूँ, बहुत जरूरी काम है। कल सबेरे आकर उनसे मिलूँगा।

डेरेपर पहुँचकर उन्होंने दरवाजा खोलकर देखा कि, चारों ओर कागज़-पत्र तथा पुस्तकें बिखरी हुई हैं। टेबुल और कुर्सी तथा कमरेकी प्रत्येक वस्तुको पवनदेवने रज-कणसे ढँक दिया है। मानो उन चीजोंको चोरोंकी दृष्टिसे बचानेके लिए पवनदेवने प्रवीण पहरेदारका काम किया है। ज्ञानदत्तने पहुँचते ही कमरेको साफ कराया, बाद अंग्रेजीमें एक पत्र लिखकर नौकरद्वारा उस अंग्रेजके पास भेजा, जिसे पढ़ाने जाते थे। लगभग दस बजे रातको साहबके यहाँसे पत्रका उत्तर लेकर नौकर वापस आया। यह पढ़कर ज्ञानदत्त प्रसन्न हुए कि कल बारह बजे सौ रुपये आपके पास भेज दिये जायँगे।

पश्चात् उन्हें नींद आ गयी। भोरमें उठकर ज्ञानदत्तने देखा कि प्रातःकालका प्रकाश दुधमुँहे बच्चेकी हँसीके समान स्वच्छ होकर प्रस्फुटित हो रहा है। आकाशमें यदा-कदा सफेद बादल-के टुकड़े निष्प्रयोजन इधरसे उधर फिर रहे हैं।

सड़ककी ओरके बरामदेमें एक कुर्सीपर बैठकर ज्ञानदत्त निर्मल प्रभातकी स्मृतिसे मन-ही-मन पुलकित हो रहे थे। इतनेमें सड़कपर तेजीसे आती हुई मोटरकी आवाजने उनका ध्यान भंग कर दिया। सड़ककी ओर दृष्टि डालते ही मकानके दरवाजेके सामने वह मोटरकार खड़ी होगयी। देखनेपर मालूम हुआ कि गौरीबाबू हैं। ज्ञानदत्त व्यस्त होकर उठे और कमरेको लाँघकर चौकवाले बरामदेमें पहुँचे ही थे कि सीढ़ियों-की चढाई तय करके गौरीबाबू दिखलायी पड़े। ज्ञानदत्त कुछ कहना ही चाहते थे कि गौरीबाबू बोल उठे,—भाई वाह! मुझसे भेट भी नहीं की और चले आये। रातको क्या खाया-पिया?

ज्ञानदत्तने संकुचित भावसे कहा,—क्षमा करना गौरीबाबू, जब तुम आफिस चले गये, तब मुझे एक जरूरी कामकी याद आयी। फिर भी मैंने तुम्हारे लौटनेकी पूरी प्रतीक्षा की।—यह कहते हुए ज्ञानदत्त और गौरीबाबू कमरेमें आकर बैठ गये।

गौरीबाबूने पूछा,—ऐसा कौनसा काम था, जिसे तुम वहाँ रहकर नहीं कर सकते थे?

ज्ञानदत्तने साहबका पत्र खोलकर दिखलाया। कहा,—आज यदि यह काम न होता तो हफ्तेभर मुझे और रुकना पड़ता। क्योंकि यह अंग्रेज हफ्तेभरमें एक ही दिन वेतन-भोगियोंकी बातें सुनता है। अंग्रेजलोग कितना नियम-बद्ध काम करते हैं, यह तो तुम जानते ही हो। यद्यपि यह काम वहाँसे भी किया जा सकता था, तथापि मेरा यहाँ आना बड़ा आवश्यक था; क्योंकि डायरीमें देखकर उसे यह लिखना था कि किस तारीखसे किस तारीखतक मैंने उसे पढ़ाया है।

गौरीबाबूने कहा,—तो इसकी कौनसी जल्दी पड़ी थी। घरसे लौटकर भी तो उससे ले सकते थे। खैर जो हुआ सो हुआ, अब यह बतलाओ कि कल तुमने भोजन क्या किया?

ज्ञानदत्तने हिचकिचाते हुए कहा,—दूध पिया था। कल कुछ भी खानेकी इच्छा न थी।

इसके बाद गौरीबाबूने घर चलनेके लिए अनुरोध किया, किन्तु ज्ञानदत्तने नम्रता-पूर्वक अपने कामका हर्ज बतलाकर उनसे क्षमा माँगी। पश्चात् गौरीबाबू चले गये। ज्ञानदत्त नौकरकी प्रतीक्षामें बैठे रहे। ठीक एक बजे साहबका नौकर आया। ज्ञानदत्तको सलाम करते हुए एक लिफाफा दिया। ज्ञानदत्तने लिफाफा खोलकर देखा तो उसमें एक पत्र और सौ रुपयेका एक नोट था। पत्रमें आग्रहपूर्ण शब्दोंमें लिखा था कि घरसे लौटनेपर मुझसे अवश्य मिलियेगा। ज्ञानदत्त मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। सचमुच ही अंग्रेजलोग वादेके बड़े

पक्के होते हैं। इतनेमें उनके कानमें मानो किसीने कहा,—"सन्१८५७ के गदरके समय महारानी विक्टोरियाकी घोषणा तभी तो काममें लायी जा रही है? पंचमजार्जने जर्मन-युद्धके समय भारतीय सिपाहियोंको जो आश्वासनपूर्ण बचन दिये थे, उन्हें चरितार्थ करनेमें अंग्रेजोंने कमाल किया। पंजाबके जालियाँवाले बागमें अंग्रेजोंकी दी हुई बिदाई भारतीयोंको जन्मभर याद रहेगी।" इतना सुनते ही ज्ञानदत्त लज्जित हो-गये। यदि बैठे रहते तो अभी और न जानें क्या क्या सुनते; किन्तु वह उठकर टेबुलके पास चले गये। रुपयेकी पहुँचका पत्र लिखकर चपरासीको दिया और कहा,—मेम साहबसे हमारा सलाम कहना। 'बहुत अच्छा' कहकर चपरासी बिदा हुआ।

इस प्रकार वह दिन बीत गया। घरके लिए चीजें खरीदी जा चुकीं। दूसरे दिन संध्याके समय पाँच बजेसे ही मित्रलोग जुटने लगे। घंटे डेढ़ घंटेके भीतर ही पन्द्रह बीस आदमी आ गये। ज्ञानदत्त अपनी चीज़ें ठीक करनेमें व्यस्त थे। गौरीबाबू-ने कहा,—ज़रा जल्दी करो, नहीं तो गाड़ी न मिलेगी।

मित्रकी चेतावनी सुनकर ज्ञानदत्तको समयका खयाल हुआ। बोले,— क्या टाइम है गौरीबाबू?

गौरीबाबूने कहा,—सात बज रहे हैं।

इतना सुनते ही ज्ञानदत्त घबड़ा उठे। झटपट सामान ठीक करके सबलोग घोड़ागाड़ी और मोटरसे हवड़ा स्टेशनकी

ओर रवाना हुए। सड़कपर बिजली बत्तियाँ जगमगा रही थीं। दोनों ओर दूकानें सजी थीं; ऐसा प्रतीत होता था, मानो दूकानपर रक्खी हुई चीज़ें विक्रयार्थ नहीं हैं बल्कि दर्शनार्थ हैं। उस समय कलकत्ता महानगरी स्वर्णपुरीकी अनुहार कर रही थी। यह दृश्य अधिक देरतक आँखोंके सामने न टिका, ज्ञानदत्तकी मोटर पुलपर पहुँच गयी। भगवती भागीरथी पति-सम्मिलनके लिए आतुर हो, बड़े वेगसे दौड़ी जा रही थीं। इस उद्विग्नतामें भी उनका इठिलाना बड़ा ही मनोहर था। किनारेकी कतार-बद्ध बत्तियोंके प्रकाशमें अस्पष्ट अट्टालिकाएँ ऐसी भली मालूम होती थीं, मानो देवाङ्गना-समूह श्री गंगाजी-की आरती करनेके लिए खड़ा है।

सबलोग स्टेशन पहुँचे। गाड़ी छूटनेमें केवल सात मिनट-की देर थी। उत्सुकताके साथ टिकट लेकर सबलोग ज्ञानदत्तकी सीट ढूँढ़ने लगे। ढँढ़नेमें एक मिनट भी नहीं लगा कि गौरी-बाबूको रिजर्व सीट मिल गयी। ज्ञानदत्तका सब सामान रखा गया, बिस्तरा लग गया। मित्रोंने पुष्प-मालाओंसे उनकी यथो-चित सम्बर्द्धना की। गौरीबाबूकी आँखोंमें आँसू भरे थे। ज्ञानदत्तका सामना होते ही वे छलछला पड़े। अब ज्ञानदत्त भी अपनेको नहीं सँभाल सके। ग्लानि-युक्त हृदयसे मुँह फेर लिया। इतनेमें गाड़ी सीटी देकर चल पड़ी। ज्ञानदत्त गाड़ीमें दरवाजेके पास आकर खड़े होगये। गौरीबाबूने आँसू पोछते हुए बड़े कष्टसे कहा,—पहुँचका पत्र भेजनेमें दे र न करना।

ज्ञानदत्त 'अच्छा' कहना चाहते थे, पर कण्ठ-द्वार न खुला। गाड़ी भक-भकाती हुई आगे बढ़ गयी। मित्र-मंडली अपने स्थानपर खड़ी आशाभरी दृष्टिसे ताक रही थी। जब ज्ञानदत्त नजरोंसे ओझल होगये, तब सबलोग निराश होकर घर लौट आये। उधर ज्ञानदत्त भी अपनी सीटपर जा बैठे और समाचार-पत्र पढ़ने लगे। आकाशमें काली घटा छायी हुई थी, दिशाएँ मेघान्धकारमें आच्छन्न होगयी थीं। यदि आलोक होता तो सम्भव था कि ज्ञानदत्त वर्षा-कालीन दृश्यों-का आनन्द लूटते—समाचार-पत्रमें मन न लगाते। थोड़ी ही देरमें मेघ-गर्जन भी ज़ोरोंसे होने लगा। ट्रेनके बर्दवान पहुँचनेपर वर्षा भी प्रारम्भ होगयी। हवाने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। ज्ञानदत्तने खिड़की खोलकर देखा तो मालूम हुआ कि मूसलधार वृष्टि हो रही है और रह रहकर बिजली भी कौंद जाती है।

इतनेमें गाड़ी स्टेशनपर खड़ी होगयी। दरवाजा खोलकर एक यूरोपियन सज्जन भीतर आये। कुलीने सामान लाकर रख दिया। इस गाड़ीमें कुल छः सीटें थी, जिनमें पाँच तो अंग्रेजों-की थीं और एक ज्ञानदत्तकी। कोई सीट खाली न रहनेके कारण यूरोपियन महाशय थोड़ी देरतक खड़े रहे। जब किसीने बैठनेके लिए न कहा, तब ज्ञानदत्तको दया आयी। अंग्रेजीमें बोले,—आइये मिस्टर, मेरी सीटपर बैठ जाइये। आगे चल-कर खाली सीट तलाश करियेगा। अभी पानी जोरोंसे बरस

रहा है, भींग जाइयेगा।

अंग्रेज 'थैंक यू' कहकर बैठ गया। संयोगवश पाँच ही सात मिनटमें वर्षा बन्द होगयी। गाड़ी खुलनेमें भी देर थी, इसलिए ज्ञानदत्तने कहा,—अब आप जगह ढूँढ़ सकते हैं, पानी रुक गया।

अंग्रेज कुछ न बोला और एक अंग्रेजसे व्यर्थकी बातें करने लगा। थोड़ी देरके बाद ज्ञानदत्तने फिर कहा,—अभी गाड़ी छूटनेमें देर है मिस्टर, और गाड़ियोंमें देख लीजिये; नहीं तो आपको भी कष्ट होगा और मुझे भी।

जिस अंग्रेजके साथ वह बातें कर रहा था, उसका नाम विलियम्सन था। विलियम्सनने घुड़ककर कहा,—कैसे असभ्य हो, दो आदमियोंकी बातचीतमें विघ्न डाल रहे हो? (उस अंग्रेजकी ओर मुँह करके) सचमुच हिन्दुस्तानी आदमी बड़े उल्लू होते हैं।

ज्ञानदत्तने नम्रताके साथ कहा,—क्षमा कीजिये महाशयजी, मैंने आपसे कुछ नहीं कहा है। मैं तो इनसे कह रहा हूँ। आप क्यों भुने बैगनकी तरह कलकला रहे हैं?

विलियम्सन जल-भुनकर ख़ाक होगया। हिन्दुस्तानीकी यह हिम्मत! तमककर बोला,—खबरदार! अब आगे ऐसी ज़बान निकालेगा तो गला पकड़कर बाहर फेंक दूँगा। निकल जा इस गाड़ीसे! नहीं है यहाँ सीट!!

यह कथन ज्ञानदत्तको सह्य न हुआ। फिर भी न जाने

क्यों अपनेको सँभालकर शान्तभावसे ही बोले,—शाबास्! सभ्यजातिके तो आप खासे नमूना हैं!

इतना सुनते ही उन्होंने जिस अंग्रेजको अपनी सीटपर बिठाया था उसने चिग्घाड़ मारकर कहा,—चुप रहो काला आदमी।

यह कहकर उस अंग्रेजने ज्ञानदत्तका बिस्तरा उलट दिया। ज्ञानदत्तको उसकी मूर्खतापर बड़ा दुःख हुआ। सोचा,-पक्षपात ही न्यायका गला घोंटता है। इस अंग्रेजके साथ मैंने तो इतना शिष्ट बर्ताव किया, और यह जातीय पक्ष-पातके कारण ऐसा अन्याय-पूर्ण शब्द निकाल रहा है। कहा,—क्या यही अंग्रेज-जातिकी सभ्यता है?

ज्ञानदत्तकी उक्त बातोंपर सब अंग्रेज बिगड़ खड़े हुए। ज्ञानदत्त भी अब आपेसे बाहर होगये। हुल्लड़-गुल्ल सुनकर गाड़ीके दरवाजेके सामने और भी बहुतसे लोग इकट्ठे होगये। साँपको दूध पिलाना इसीको कहते हैं? पं० रामदीन भी सर्वेण्टरूमसे निकलकर आ गये। ज्ञानदत्तने कहा,—पंडितजी आप सामान देखिये, मेरा जो कुछ होनेवाला होगा, सो होगा।

रामदीनने कहा,—नहीं बबुआ, ऐसा न करो। शाहबलोगों-से झगड़ना ठीक नहीं है।

ज्ञानदत्तने उनकी बात नहीं सुनी और अपना बिस्तरा ठीक करने लगे। विलियम्सनने उनका हाथ पकड़ लिया और

उस अंग्रेजने बिस्तरेको नीचे फेंक दिया।

ज्ञानदत्तके शरीरमें काफी ताकत थी। उन्होंने बल-पूर्वक विलियम्सनको झटक दिया, वह धड़ामसे गिर पड़ा।

इतनेमें बाहर खड़े हुए कई अंग्रेज गाड़ीमें घुसकर ज्ञानदत्त-को पीटकर बाहर करनेका प्रयत्न करने लगे। अंग्रेजोंका यह ऐक्य देखकर बाहर खड़े हुए एक हिन्दुस्तानी सज्जनने भारतीयोंको सम्बोधित करके कहा,—क्या तमाशा देख रहे हो, हिन्दू-मुसलमान भाइयो! ये लोग एक भाईकी बेइज्जती कर रहे हैं और हमलोग खड़े तमाशा देख रहे हैं! बड़े शर्मकी बात है।

उक्त बातें सबलोगोंके कलेजेमें चुभ गयीं। फिर क्या था, सबके सब गाड़ीमें टूट पड़े और ज्ञानदत्तकी मान-रक्षाके लिए अंग्रेजोंका गला पकड़ पकड़कर बाहर फेंकने लगे। दो-एकके बाहर फेंकते ही सब अंग्रेजोंकी सिटल्ली भूल गयी और देखते-ही-देखते वहाँसे सब अंग्रेज दुम दबाकर खिसक गये। ज्ञानदत्त अपने स्थानपर जा बैठे। गाड़ीने सीटी दी, शीघ्रतासे और लोग भी जहाँ-तहाँ बैठ गये। गाड़ी भकभक करती हुई शानके साथ रवाना होगयी।

ज्ञानदत्तको इस विजयसे प्रसन्नता तो अवश्य हुई किन्तु वह पश्चात्तापसे खाली नहीं थी। भारतीयोंकी एकता देखकर तो अत्यन्त प्रसन्नता हुई, किन्तु महात्मा गाँधीके सिद्धान्तोंका खून हुआ, यह सोचकर बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। वह इसी

चिन्तामें निमग्न थे कि एक यूरेशियन टिकट चेकरने ध्यान भंग कर दिया। टिकट दिखलाकर शायद वह फिर विचार-मग्न हो जाते, लेकिन एक हास्यास्पद घटनाने उन्हें रोक रखा। बात यह थी कि उस गाड़ीमें जो अंग्रेज पहले बैठे थे, उनमें दोको छोड़कर बाकी दूसरी गाड़ीमें चले गये थे और उनकी जगह-पर झगड़ेसे अनभिज्ञ तीन भारतीय युवक गाड़ी छूटनेके समय आ बैठे थे। ज्ञानदत्तका टिकट चेक करनेके बाद टिकट कलेक्टर-ने उनसे टिकट दिखलानेके लिए कहा। सब युवक अपने-अपने बूटके फीते खोलने लगे। यूरेशियनने कहा,—महाशयजी कृपा करके टिकट दिखला दीजिये।

एक युवकने जूता खोलते हुए ही कहा,—निकालकर अभी देता हूँ, घबड़ाओ मत।

यूरेशियनने कहा,—अच्छी बात है।

युवकने कहा,—अच्छी बात हो चाहे बुरी।

यूरेशियन थोड़ी देरतक खड़ा रहा। जान पड़ता है, उसने ऊपरकी बात नहीं सुनी। जब टिकट किसीने नहीं दिखलाया, तब उसने कहा,—ज़रा शीघ्रता कीजिये।

युवकने कहा,—आपहीके वास्ते जूता खोल रहा हूँ, जनाब।

यूरेशियनको झेंप आगयी। युवकोंने जूतेमेंसे टिकट निकाल-कर दिखला दिये। ज्ञानदत्तको बड़ी हँसी छूटी। समझा कि ये सब कालेजके मसखरे लड़के हैं। वास्तवमें बात भी यही थी।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

रमा अपनी सास देवकीका स्नेहानुरोध-भार अधिक देर-तक वहन न कर सकी। यद्यपि उसकी आन्तरिक इच्छा तो यह थी कि जबतक स्वामीका दर्शन न करूँगी, तबतक मैं यहाँसे उठूँगी ही नहीं और यदि उठूँगी भी तो केवल उनके दर्शनहीके लिए। तथापि वह ऐसा न कर सकी। सासकी स्नेहभरी आश्वासनपूर्ण बातोंसे पत्र पढ़नेके बाद रमाको उठना ही पड़ा।

आज ही ज्ञानदत्त आनेवाले हैं। रमाके हृदयमें पति-दर्शनकी उत्कण्ठा वारि-प्रयासी चातककी अपेक्षा भी अधिक सुदृढ़ हो-गयी है। उसका असीम धैर्य प्रचुर-वर्षा-वारि-प्राप्त क्षुद्रा-तटिनी-की भाँति विपर्यास्त होगया। यदि और समय होता तो वह लुक-छिपकर यथा-साध्य अपने कमरेकी सजावट करती, सरला आदिकी छेड़खानीका आनन्द लूटती, हृदयमें हर्षोत्फुल्लताका अनुभव करती, किन्तु इस समय उसकी दशा ही विचित्र है। चाञ्चल्य भाव तो उसमें आया ही नहीं।

दरवाजेपर बहुतसे बच्चे खेल-कूद रहे थे, बाहर-भीतर आ-जा रहे थे। ज़रा भी खटका होनेपर सबके सब चतुर सेनाकी भाँति एक साथ स्तब्ध होकर ज्ञानदत्तकी टमटम देखने लगते और विफल होनेपर फिर खेलनेमें योग देते थे। जिस प्रकार बारातमें द्वारपूजाके लिए हाथी सबसे पहले लड़कीवाले-

के दरवाज़ेपर पहुँचनेका विपुल प्रयास करते हैं, उसी प्रकार बाल-समुदायका प्रत्येक बालक भी ज्ञानदत्तके आगमनका समाचार सबसे पहले घरमें पहुँचानेके लिए उत्सुक था। इसीसे कई बार व्यर्थ समाचार देनेके कारण उनमें अधिकांश झूठे भी होगये थे। ठीक समयपर गाड़ी दिखलायी पड़ी। लड़के घरकी ओर टूट पड़े। कुछ तो रास्तेमें ही धक्केसे गिरकर ज़मीन चूमने लगे, कुछ दरवाज़ेपर ही अटक गये और कुछ समाचार लेकर देवकी-के पास गये। किसीने कहा,—'चाची! भैया आइगइलन।' किसीने कहा,—'बच्चा आवत हौवें।'

अबकी बार देवकीने झुँझलाकर कहा,—चल झूठे कहींके। जाओ सबलोग बाहर खेलो; व्यर्थ ही मेरे पास काँव-काँव न करो।

लड़के अपने वचनकी सत्यताके लिए क़समें खाने लगे और देवकीके ऊपर गिरने लगे। इतनेमें दाईने आकर कहा,—ज्ञानू बबुआ आ गये।

अब देवकीको विश्वास हुआ। हृदयकी धड़कन और भी तीव्रतर होगयी। अधिक देरतक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी कि सबलोगोंसे मिल-भेंटकर ज्ञानदत्त माँके पास आगये। आर्त्त होकर माताके पैरोंपर गिर पड़े। बड़ी देरतक अपने आँसुओंसे माताके पाँव पखारते रहे। माता देवकी भी अश्रु-वर्षाद्वारा लड़केको शीतल करनेका प्रयत्न कर रही थीं। माँ-बेटेकी हृदय-गतिका वर्णन करना असम्भव है। दोनोंकी यह स्थिति कबतक

रहेगी, यह कौन कह सकता है। इतनेमें एक स्त्रीने देवकीका ध्यान भंग कर दिया। बोली,—लड़केको कुछ पानी पिलाओ बहन। यह क्या कर रही हो?

मानो देवकीको सहारा मिल गया। साहस करके अश्रु-मोचन करती हुई करुण-कम्पित स्वरमें बोलीं,—उठो बेटा, ज़रा पानी पीलो। प्यास लगी.........

इतना कहते ही गला फँस गया। ज्ञानदत्त उठकर चारपाई-पर बैठ गये। महान अपराधीकी भाँति उनसे किसीकी ओर ताका नहीं जाता था। यदि आँगनमें दृष्टिपात करते तो अवश्य ही भाभीको पूछते कि कहाँ हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश उधर उनकी दृष्टि ही न गयी।

हाय! रमा देख भी न सकी और वे जलपान करके बाहर निकल आये। वाहरी हिन्दू-समाजकी प्रचलित प्रथा! किन्तु समय-स्रोत नदी-प्रवाहकी भाँति प्रवाहित होता रहता है, अतः रमा और ज्ञानदत्तके सम्मिलनमें अधिक देर नहीं लगी। भोजनादिसे निवृत्त होकर ज्ञानदत्त बाहर बैठे हुए आगत पुरुषोंसे बातें कर रहे थे। चार घंटा रात बीतनेपर सबलोग चले गये। रमासे मिलनेके लिए ज्ञानदत्तका हृदय तड़प रहा था। गाँवके लोगोंसे बातें करनेमें उन्होंने इतना समय निहायत बेसब्रीसे बिताया था। इसलिए उपयुक्त समय जानकर वह तुरन्त ही रमाके कमरेमें गये।

उस समय चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। केवल

पपीहा आदि पक्षियोंका जब-तब एकाध शब्द सुनायी पड़ जाता था। ज्ञानदत्त गहरे चोरकी भाँति दबे पाँवसे जाकर रमाके कमरे-में खड़े होगये। देखा कमरेमें कड़वे तेलकी बत्ती टिमटिमा रही है और विकसित-यौवना रमा पलँगपर लेटी हुई है। ज्ञानदत्त और भी चौकन्ने होगये; समझ गये कि रमाको झँपकी आ गयी है, ज़रा भी आहट पानेपर उठ जायगी। वह खड़े खड़े रमाका दीन-सौन्दर्य निहारने लगे। हृदय भर आया। ओफ्! अबतक तो इस अनादृताका रूप-यौवन मेघच्छायान्धकारमें विलीन हो गया होता। जो रमा चन्द्रमाके समान स्निग्ध, लताके समान कोमल, स्थिर-विद्युत्-रेखाकी भाँति समुज्वल-दर्शना और विधाताकी सृजन-कलाकी एक अपूर्व वस्तु थी, उसकी आज यह दशा!

नाकके पानी निगोड़ेने रंगमें भंग डाल दिया। ज्ञानदत्त इस प्रकारके विचारोंमें निमग्न थे और आँखें आँसू बरसा रही थीं कि सौतिया डाहके कारण नाकने भी पानी गिराना प्रारम्भ कर दिया। उसे रोकनेका प्रयत्न करनेमें बहुत हल्की आ-वाज हुई, रमा झटसे उठ गयी। ज्ञानदत्तने आगे बढ़कर प्यारी रमाको हृदयसे लगा लिया। रमा अबोध-बालिकाकी भाँति सिसक सिसककर रोने लगी। उस समय उसकी रुलाई रोकने-से रुकती ही न थी। वह दृश्य अपूर्व था, और वह हृदय-स्थित भाव भी निराला ही था।

इस प्रकार बड़ी देरके बाद रमाकी हृद्गत-ज्वाला स्वामि-

दर्शनसे शान्त हुई। किन्तु पहलेकीसी उत्फुल्लता उसके चेहरे-पर अब भी न आयी। अब उसमें विलक्षण शान्ति, गम्भीरता और सहनशीलता दिखलायी पड़ने लगी; चंचलताका तो नाम-निशान भी नहीं रह गया। किसी कविने क्या ही अच्छा कहा है :—

"सुर्ख़ रू होता है इन्साँ ठोकरें खानेके बाद।
रंग लाती है हिना पत्थर पै पिस जानेके बाद॥"

यौवनावस्थाका भूषण स्वरूप वह स्वाभाविक चांचल्य भाव प्रच्छन्न होगया। जो रमा पहले बात बातपर हँसा करती थी, वही अब गाम्भीर्यकी प्रतिमूर्ति बन गयी। यदि उसे इतना गहरा सदमा न पहुँचा होता, तो उसकी ऐसी दशा कदापि न होती। किन्तु ईश्वरको यही स्वीकार था; उन्हें रमाके द्वारा देश और समाजका जो कार्य कराना है, वह चपलता रहनेपर न हो सकता। रमाका यह परिवर्त्तन साहित्यिक ज्ञानदत्तसे छिपा न रहा। विलास-प्रिय मनुष्यके लिए यह परिवर्त्तन अवश्य खटकता, किन्तु ज्ञानदत्त तो इससे प्रसन्न हुए।

दुःखके समय एक पलका बीतना कठिन हो जाता है और सुखमें वर्षों बीत जानेपर कुछ मालूम ही नहीं होता। रमा और ज्ञानदत्तका यह जीवन सुखमय था। धीरे धीरे सात महीने ज्ञानदत्तको आये होगये। इतने दिनोंमें ज्ञानदत्तने रमासे लघुकौमुदी और सिद्धान्तकी उद्धरनी करा डाली और साथमें प्रथम ग्रन्थ स्वयं भी पढ़ लिया। उनमें जो संस्कृत-ज्ञानका

कमी थी, वह अब दूर होगयी। रमा भी काव्य-ग्रन्थोंसे चुन चुनकर सुन्दर रचनाएँ स्वामीको सुनाया करती और अर्थ-सहित अपनी बुद्धिके अनुसार उनकी-व्याख्या किया करती। इससे ज्ञानदत्तमें संस्कृत-काव्य समझनेकी शक्ति भी बहुत जल्द होगयी। इस प्रकार रमा जैसी विदुषी पत्नीको पाकर ज्ञानदत्तने सहजहोमें संस्कृत पढ़ लिया। और इधर रमाने भी बहुत कुछ अंग्रेजी तथा हिन्दीका ज्ञान प्राप्त कर लिया। रमाके प्रति स्नेहके साथ ज्ञानदत्तकी श्रद्धा भी बहुत बढ़ गयी। यद्यपि रमामें तो दोनों बातें पहलेहीसे विद्यमान थीं; किन्तु ज्ञानदत्तमें एक चीजकी कुछ कमी थी। उनका स्नेह तो चरम सीमापर पहुँचा हुआ था, परन्तु श्रद्धा उतनी नहीं थी। अब वह भी बढ़ गयी। इसका कारण यह था कि रमा, समयके सदुपयोगपर सदा ध्यान रखती थी और उसने कभी भी गृह-कलह सम्बन्धी अपने कष्टकी बातोंका जिक्रतक स्वामीसे नहीं किया। उसने ऐसी भी कोई बात कभी नहीं कही, जो स्वामी-के लिए चिन्ताका विषय हो। बस रमाके इसी गुणने ज्ञानदत्त-के हृदयमें उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी।

वास्तवमें ज्ञानदत्त और रमाके अनिर्वचनीय आनन्दका वर्णन करनेकी शक्ति भाषामें नहीं। ज्ञानदत्त जब अपनी प्रियतमासे मिलते, तभी उनके दिलमें आनन्दकी उमंगे एक विचित्र प्रकार-की गुदगुदी पैदा कर दिया करती थीं। रमा भी साधारण आनंद-का अनुभव नहीं करती थी। उसका सदा-हास्य-विमंडित मुख

कभी तो लज्जासे रँग जाता और कभी आनन्दसे विकसित हो उठता था। कभी अवसर पाकर ज्ञानदत्त रातके आठ-नौ बजे ही अपने सयनागारमें घुस जाते और निहायत बेसब्रीसे रमाके आनेकी प्रतीक्षा करते थे। वह सब काम-काजसे निवृत्त होकर पानका डब्बा लिए अज़ीब नाज़ोअन्दाजसे आती थी। यदि कभी उसके आनेमें तनिक देर हो जाती, तो ज्ञानदत्त व्याकुल हो जाया करते थे। उस समय उनकी यह दशा होती थी कि पलँगपर लेटे लेटे बेचैनीके पन्ने उलटा करते, परन्तु नजर सफ़होंपर न रहकर, दरवाजेपर डटो रहती। उस इन्तिजारीमें—उस बेचैनीमें, ज्ञानदत्तको कितना सुख मिलता था, इसका ठीक ठीक अन्दाजा कोई प्रेमी दम्पति ही लगा सकता है। उसी व्याकुलताके समय वह दरवाजा खोलकर दबे पाँव, सकुचाती और शर्माती हुई चालसे अन्दर आती थी। कभी कभी ऐसी ही भाव-तरंगोंमें लीन होकर ज्ञानदत्त कविता भी कर डालते थे, जिससे मासिक पत्रिकाओंकी उदर-तृप्ति हो जाया करती थी।

किन्तु इधर प्रभा अपने देवरसे कुढ़ रही थी। कलकत्तासे आनेपर वह सबलोगोंसे मिले, किन्तु उसे पूछातक नहीं। यह क्या कम अपमानकी बात है? यद्यपि आनेके दूसरे दिन ज्ञान-दत्तने प्रभाके चरण छूकर उसे प्रणाम किया, बड़े हर्षसे मिले-भेंटे, तथापि प्रभाकी ज्वाला शान्त न हुई। उसने अपने स्वामी-से कहा भी,—ज्ञानूने बाबाके लिए जो कमीज, जूता, मोजा

और टोपी तथा मेरे लिए साड़ी और जाकेट भिजवा दिये हैं, उन्हें मैं उनके पास भेज दूँगी, मुझे नहीं चाहिए।

धर्मदत्तने पूछा,—क्यों? क्या किसीने कुछ कहा है?

प्रभाने कहा,—कहनेवालेके मुँहमें आग न लगा दूँगी! मुझे कहनेकी हिम्मत किसकी है? क्या मैंने भी मैकेमें खसम किया है कि कोई मुझे कहेगा?

धर्म—तो फिर क्यों वापस करती हो?

प्रभा—मेरी इच्छा।

धर्म—आखिर कोई कारण भी है या नहीं?

प्रभा चुप रही। धर्मदत्तने कहा,—ऐसी नासमझीकी बात न करनी चाहिए। भला लोग क्या कहेंगे?

प्रभा भस्म होगयी। तमककर बोली,—बलासे। मुझे किसीके कहने-सुननेका भय नहीं है। जब ज्ञानूने आकर मुझे पूछातक नहीं, तब मैं उनकी कोई चीज़ न लूँगी—न लूँगी।

इस प्रकार बातें करके धर्मदत्तने सारा रहस्य समझ लिया और किसी तरह समझा बुझाकर प्रभाको रोका। प्रभा भी स्वार्थवश स्वामीकी बात मान गयी। ज्ञानदत्तको प्रसन्न रखनेमें ही उसे अपनी अर्थ-सिद्धि दिखायी पड़ी।

एक दिन प्रभाने ज्ञानदत्तको एकान्तमें पाकर अन्यान्य बातोंके सिलसिलेमें गुप्त रीतिसे रमाकी दुश्चरित्रताका हाल कह डाला। ज्ञानदत्तने उसका अभिप्राय अच्छी तरहसे समझ-कर भी ऐसी ही बातें कीं, जिनसे प्रभाको यही प्रतीत हुआ कि

इन्होंने कुछ भी नहीं समझा। अन्तमें उसे और भी स्पष्ट रूपसे कहना पड़ा। तब ज्ञानदत्तने भाभीके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए कहा कि,—अच्छा मैं इसका प्रबन्ध बहुत जल्द करूँगा।

यह बात सुनकर प्रभा मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। किन्तु ज्ञानदत्तने प्रभाकी बातोंकी चर्चा भूलकर भी रमासे नहीं की। जब एक दिन रमाने स्वयं ही अपने कलंककी यह बात कही, तब ज्ञानदत्तने भी उसकी पुनरुक्ति की। स्वामीके मुखसे सुनकर रमा रो पड़ी। उसे इस बातका दुःख हुआ कि इन्होंने सुनकर भी मुझसे कभी नहीं कहा।

ज्ञानदत्तने रमाको सान्त्वना देते हुए हृदयसे लगाकर कहा,—दुखी होनेकी कोई बात नहीं है भाई। तुम पढ़ी-लिखी होकर ऐसा क्यों करती हो? संसारका काम ही ऐसा है। तुच्छ स्वभावके लोग हमेशा दूसरोंको कष्ट पहुँचानेकी चेष्टा किया करते हैं।

रमा और भी सिसकने लगी। ज्ञानदत्तके बारबार समझानेपर बड़े कष्टसे रुकते हुए स्वरमें बोली,—तुमने मुझसे—कहा—तक नहीं!

ज्ञानदत्तने स्नेह-पूर्वक उसके सुन्दर कपोलोंपर पड़े हुए अश्रु-बिन्दुओंको पोंछते हुए पुचकार कहा,—इसीलिए तुम रो रही हो? दुत् पगली कहींकी। अरे मैंने तो यह समझकर तुमसे नहीं कहा कि, ऐसी व्यर्थकी बातें सुनकर तुम्हें दुःख होगा। तुम्हीं सोचो न, यदि मुझे सन्देह हुआ होता तो मैं तुमसे बिना

पूछे रहता ? चुप रहो ! इस तरह नहीं रोना चाहिए ।

रमा सतीत्व-गर्विता रमणी थी । यह उपहास सुनकर उसका हृदय फटा जाता था । यद्यपि पतिदेवकी बातें सुनकर उसके उत्तप्त हृदयको बहुत-कुछ शान्ति मिली, तथापि वह उस उत्तापसे सर्वथा मुक्त न हो सकी । बोली,—इस तरहकी बातें सुननेहीसे तो मनुष्यके मनमें सन्देह उत्पन्न हो जाता है ।

ज्ञानदत्तने धीरज देकर कहा,—तुम्हारा कहना ठीक है । लेकिन सत्य सदा सत्य ही रहता है—उसपर कोई भी धब्बा नहीं लगा सकता । शत्राजितने भगवान श्रीकृष्णको मणिकी चोरी लगाकर क्या किया ? जगज्जननी जानकीकी अग्नि-परीक्षाके समय सत्यने रक्षा की या नहीं ?

रमाने ग्लानि-युक्त स्वरमें कहा,—किन्तु दोनों घटनाओंमें क्या साधारण कष्ट हुआ था ?

ज्ञानदत्तने कहा,—तो क्या तुम कष्टसे डरती हो ? यदि हाँ, तो यह तुम्हारी भूल है । यह संसार सुख-दुःखके आधारपर ही स्थित है । यदि इनमेंसे एकका अभाव हो जाय, तो शरीर नहीं रह सकता । जिस प्रकार गाड़ीके पहियेका ऊपरी भाग नीचे और नीचेका भाग ऊपर आता ही है, उसी प्रकार मनुष्य-शरीरमें सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुखका आना अनिवार्य है । इसलिए दुःखोंका सामना करनेके लिए प्रत्येक मनुष्यको सदा तैयार रहना चाहिए ।

रमाने मौन रहकर अपनी भूल स्वीकार कर ली । उसने

प्रभाको प्रसन्न रखनेके लिए मन-ही-मन निश्चय किया। प्रभाके असन्तुष्ट रहनेका मूल कारण क्या है, इसका अन्वेषण करनेपर उसे मालूम हुआ कि सासकी कृपा-दृष्टि रखनेहीके सबबसे प्रभाके दिलमें जलन रहती है। वास्तवमें बात भी यही थी। देवकी चतुर गृहिणी नहीं कही जा सकतीं। क्योंकि उन्होंने प्रभाको अपने वशमें नहीं किया। प्रभाका जैसा स्वभाव अब है, वैसा पहले नहीं था। देवकीकी अनभिज्ञताके कारण ही उसका ऐसा क्रूर स्वभाव होगया। यदि पहलेहीसे वह उसका स्वभाव बनानेकी ओर ध्यान दिये होतीं, तो आज घरमें इतना विरोध ही न होता। प्रभाको आये महीनेभर भी नहीं हुआ था कि एक दिन उसे हलुआ बनाना पड़ा। वह पाक-शास्त्रमें प्रवीणा नहीं थी, इसलिए उसमें मीठा बहुत अधिक डाल दिया; सूजी भी कच्ची रह गयी। देवकीका कर्त्तव्य था कि वह प्रेमके साथ उसे समझा देतीं कि देखो बहू, सूजीके बराबर घी डालकर हलकी आँचसे खूब भूनना चाहिए। जब सूजीमें सुर्खी आ जाय और सोंधी महँक आने लगे, तब उसमें सूजीसे तिगुना गरम पानी छोड़ दे और सूजीसे डयोढ़ी चीनी डालकर चला दे। अथवा तिगुने पानी या दूधमें चीनीकी चाशनी बनाकर छोड़ दे। हलुआ चलानेमें खूब सावधानी रखनी चाहिए, ताकि न तो वह लगने पावे और न उसकी गोलियाँ बँधने पावें। इस प्रकार उसे पकाकर ऊपरसे मेवादि चीज़ें कतर-कर डाल दे। किन्तु देवकीने ऐसा उपदेश न करके नव-वधूको

कोसना और पास-पड़ोसको स्त्रियोंसे उसकी निन्दा करना शुरू कर दिया। बहुत दिनोंतक प्रभा कुछ न बोलती थी। पर जब देवकी बात-बातपर नुक्ताचीनी करने लगी, तब धीरे-धीरे उसकी धड़क खुल गयी और लुक-छिपकर वह भी अन्यान्य स्त्रियोंसे शिकायत करने लगी। वे स्त्रियाँ प्रभाकी सारी बातें बढ़ा-घटा-कर देवकीको सुनाने लगीं। कुछ ही दिनोंमें मनोमालिन्य बहुत बढ़ गया। फिर क्या था, सास-पतोहूमें देवरानी-जेठानीकी तरह जवाब-सवाल होने लगा। अब तो यदि देवकी एक बात कहें, तो प्रभा दस सुनानेके लिए तैयार रहती है।

देवकीने रमाके साथ भी ऐसा ही बर्त्ताव किया था। किन्तु एक तो रमा गृहस्थीके प्रत्येक कार्यमें बड़ी कुशल थी और दूसरे उसे इस बातकी पूर्ण शिक्षा मिली थी कि सासकी बातें सहन करके रहनेमें ही सुख मिलता है। इसीसे उसके साथ देवकीकी दाल न गली और उसने अपनी सहन-शीलतासे सासको वशमें कर लिया। यद्यपि अब भी देवकी ज़रासी बातपर रमाके ऊपर बेतरह बिगड़ जाया करती हैं, किन्तु रमा हँसकर टाल दिया करती है—जवाबतक नहीं देती।

बस यही सारे अनर्थोंकी जड़ है। यही बात प्रभाकी सहन-शक्तिसे बिलकुल बाहर है। वह तो यह चाहती है कि रमा भी मेरी ही भाँति साससे लड़े। ऐसा न होता देख, अब वह रमासे गहरा बदला लेनेके लिए तैयार बैठी है। घृणित और पतित विचारोंके करते रहनेसे उन्नतोन्मुखी बुद्धि भी क्रमशः

नष्ट होने लगती है और कुछ ही दिनोंमें वह इतनी गिर जाती है कि उसे और नीचे जानेका स्थान ही नहीं रह जाता। प्रभा ठीक इसी दशामें है। अब उसमें इतनी बुद्धि नहीं रह गयी है कि वह हित-अहित चाहनेवालोंकी पहचान कर सके। यद्यपि रमा अब भी उसका हित ही चाहती है, तथापि उसका प्रत्येक कार्य प्रभाको अहितकर ही दिखलायी पड़ता है।

एक दिन शामका वक्त था, डेढ़ वर्षके बालक जगदीशको आँगनमें बिठाकर प्रभा दिया-बत्ती करने चली गयी। रमा लड़केके पास ही बैठी थी। जगदीश चारपाईपर चढ़नेका प्रयास कर रहा था। रमा बैठी देख रही थी, किन्तु कुछ बोलती नहीं थी। जब बालकसे नहीं चढ़ा जाता था, तब नीचे पैर उतारकर फिर किलकारी मारता हुआ चढ़नेका उद्योग करता था। प्रभा अपना काम करते समय यह कौतुक देख रही थी। सोचने लगी,—देखो, छोटी बहूसे उठकर सँभाला नहीं जाता। अगर लड़का गिर पड़े तो? मगर गिर पड़ेगा तो उसका क्या बिगड़ेगा। वह तो लड़केका प्राण लेनेके लिए उधार खाये बैठी है।

प्रभाने जो सोचा, वही हुआ। अचानक जगदीश धड़ामसे उलट गया। आवाज़ सुनते ही प्रभा बड़े जोरसे बच्चेको उठानेके लिए झपटी। तबतक रमाने उसे उठा लिया था। प्रभाने पास आकर झुँझलाहटके साथ रमाकी गोदसे बच्चेको छीन लिया और जो कुछ बुरा-भला मुँहसे निकला, उसे

सुनाया । बेचारी रमा सब-कुछ सुनकर चुप रह गयी । जगदीश साँस छोड़कर चिल्ला रहा था । उसका रोना सुनकर पं० शम्भूदयाल भी दौड़कर आँगनमें आये । पूछा,—जगदीश रो क्यों रहा है ?

दाईने कहा,—गिर पड़े हैं ।

शम्भू०—जरा भी ध्यान तुमलोगोंसे नहीं रक्खा जाता । ले आओ यहाँ ।

दाई जगदीशको ले जाकर दे आयी । शम्भूदयाल उसे लेकर बाहर चले आये । यहाँ भीतर प्रभाकी ज्वाला और भी भभक उठी । घण्टेभर बाद उसने कलहका श्रीगणेश कर ही दिया । किन्तु रमाके कुछ न बोलनेपर बेचारी प्रभाको अपना-सा मुख लेकर रह जाना पड़ा । एक हाथ झलनेसे आवाज़ नहीं होती । थोड़ी देरतक अपने-आप बड़बड़ाकर प्रभा चुप होगयी ।

देवकीने एकान्तमें रमासे कहा,—जगदीशको पकड़ क्यों नहीं लिया बेटी ! जानती तो हो कि वह हवासे झगड़ा कर सकती है ।

रमाने खिन्न होकर कहा,—मैंने यह नहीं समझा था माँजी । मैं तो यह जानती हूँ कि बच्चोंको केवल समझा देना चाहिए, ऐसे कामोंमें रोकना नहीं चाहिए । रोकनेसे वे बढ़कर वही काम करना चाहते हैं और हठी हो जाते हैं। शिशु-पालन-विधि सबलोगोंको मालूम नहीं रहती । अबोध बच्चोंको

ऐसे कामोंसे रोकना भूल है; क्योंकि यही उनकी कसरत है। हाँ, यदि कोई भयानक काम करना चाहते हों,—जैसे आगमें हाथ डालना आदि, तो उससे उन्हें रोक देना चाहिए। पर साधारण कामोंमें ईश्वरके भरोसे छोड़कर उनकी देखरेख करनी चाहिए। ऐसा करनेसे बच्चोंका ज्ञान बढ़ता है, तन्दुरुस्ती ठीक रहती है और प्रत्येक कार्यका हानि-लाभ स्वतः उनकी समझमें आ जाता है। मामूली बातोंके लिए डपटनेसे बालकोंका स्वभाव दब्बू हो जाता है। बच्चोंको भूत, म्याऊँ, गोगा आदिका भय कभी न दिखलाना चाहिए। मेरे नानाजी कहा करते थे कि ऐसा भय दिखलाना, बच्चोंके विकाशमें बाधा डालना है। अंग्रेजोंके बच्चे निर्भीक होते हैं और हमारे देशके बच्चे डरपोंक होते हैं, इसका कारण यही है कि उनके बच्चों-को भयावह बातें बतलायी ही नहीं जातीं और हमारे बच्चोंको ज़रासी बातपर भय दिखलाया जाता है। अबतक मैं ऐसा ही समझती आयी। इसीसे मैंने जगदीशको नहीं रोका। मैंने तो यह समझा कि रोकनेसे वह चारपाईपर चढ़नेके लिए हठ करने लगेगा और न रोकनेसे उसका साहस बढ़ेगा। यदि गिर भी जायगा तो कोई हर्ज नहीं, आगे वह और भी सावधानीसे चढ़नेका उद्योग करेगा।

देवकीने डींग मारते हुए कहा,—तुम्हारा समझना बहुत ठीक है। ज्ञानू जब छोटा था, तब मैं भी ऐसा ही करती थी। यहाँतक कि एकबार जब वह आठ-नौ महीनेका था, अँगेठी

पकड़ने चला। मैं जी कड़ा करके बैठी रह गयी। उसका हाथ जल गया और महीनों बाद अच्छा हुआ। लेकिन उस मितीसे ज्ञानू आगसे बहुत डरने लगा।

ज्ञानदत्तकी चर्चा सुनकर स्वाभाविक ही संकोच-भारसे रमाका सिर झुक गया। देवकीने कहा,—लेकिन इसका हाल तो जानती हो। यह तो हमलोगोंको शत्रुके समान देखती है।

रमाका सिर उठा। बोली,—वह चाहे जैसा समझें माँजी, हमलोगोंके दिलमें तो उनके प्रति जरा भी बुरा भाव नहीं है।

देवकीने कहा,—अच्छा जिसका पाप उसका बाप। जाओ तुम अपना काम-धन्धा देखो।

इधर प्रभाने सारा समाचार स्वामीके आनेपर कह डाला। यह भी कहा कि,—यदि मैं न पहुँचती तो आज बाबाको बड़ी गहरी चोट लगती। क्योंकि जहाँ यह गिरा, वहींपर पत्थरका एक टुकड़ा पड़ा हुआ था। खैर हुई कि मेरे हाथका धक्का लगनेसे बाबाका सिर उस पत्थरपर न गिरकर जमीनपर गिरा। फिर भी लड़का बड़ी देरतक चिल्लाता रहा। क्या बतलाऊँ ऐसी औरत तो मैंने वसुधामें नहीं देखी।

यह कहकर उसने जगदीशका सिर टटोलनेके लिए कहा। धर्मदत्तने सिरपर हाथ रखकर आश्चर्यके साथ कहा,—अरे! यह तो बहुत फूला हुआ है। राम राम, मैं उसे ऐसी नहीं जानता था।

प्रभाने कहा,—तुम काहेको जानोगे? मैं तो तुमसे झूठ

कहा करती हूँ न !

धर्मदत्तने मौन रहकर माने अपराध स्वीकार कर लिया। थोड़ी देरतक चुप रहे। बाद बोले,—सचमुचमें छोटी बहूका स्वभाव अच्छा नहीं है। भला लड़केसे वह इतना द्वेष क्यों रखती है?

प्रभाने माथा सिकोड़कर उत्तेजित स्वरमें कहा,—इतनेपर तो लोग छोटी बहूकी तारीफ करते हैं। और लोगोंको कौन कहे, तुम भी प्रशंसाका पुल बाँध देते हो। देख लेना, किसी दिन यह औरत तुमलोगोंके मुँहमें कालिख जरूर लगावेगी। ज्ञानूको तो उसने भेंड़ा बना ही लिया है, तुम्हारी बुद्धिपर भी पत्थर पड़ गया है।

धर्म—क्या किया जाय तुम्हीं बतलाओ न?

प्रभा—बतलाना क्या है, उसे बिदापुर भेज दो, झंझट तय हो जाय। अपने बापके घरसे चाहे डोमके साथ निकल जाय, तुम्हें तो कोई कहनेके लायक न रहेगा। लेकिन तुमलोगोंका कुछ किया हो तब तो! कुछ भी कोई कहे, कानपर जूँतक नहीं रेंगती।

धर्म—अच्छा वहाँसे किसीको आने दो, ऐसा ही होगा।

बारहवाँ परिच्छेद

माघका महीना था। इसी महीनेके अन्तमें सरलाका व्याह होना स्थिर हुआ है। बारात बड़े धूमधामसे आवेगी, इसकी चर्चा चारों ओर हो रही है। ब्याहकी तिथि अब कुलमें सोलह दिन रह गयी है, पर अभीतक किसी चीजका प्रबन्ध नहीं हुआ। शम्भूदयाल छटपटा रहे हैं। इस समय क्या करना चाहिए यह उनकी समझमें नहीं आ रहा है। आवे कैसे? पासमें रुपया रहता है तो पैर अपने-आप ही उठता है। तिलकके दो हजार रुपये तो वह किसी तरह दे दिये, लेकिन अब कहीं भी रुपयेका जुगाड़ नहीं हो रहा है। इसी चिन्तामें वह रात-दिन व्यस्त रहते हैं। इसके अतिरिक्त वह अपने समधी पं० सदायतन-के आनेपर यह भी बचन दे चुके हैं कि ब्याह पर जो आदमी निमंत्रणमें आवेगा, उसीके साथ छोटी बहू बिदा कर दी जायगी। कमसे-कम आठ सौ रुपये हों तो छोटी बहूके गिरों रखे हुए गहने छूटें। सम्भ्रान्त कुलकी लड़कीको बिना गहनेके बिदा करना अपमान-जनक है। इस प्रकार कुल तीन हजार रुपये हों तो काम चले, और यहाँ एक पैसेका अभीतक प्रबन्ध नहीं हुआ।

अब पं० शम्भूदयालको अपनी भूलें मालूम होने लगीं। यदि वह बुद्धिमानीके साथ गृहस्थीका काम करते आये होते

तो आज उन्हें ऐसे संकटका सामना न करना पड़ता। उनके पिता पाँच लाखकी सम्पत्ति छोड़कर मरे थे। हजारों रुपये मासिक सूदकी आय थी, गल्लेका व्यवहार था—सबकुछ था। पिताके मरते ही इन्होंने सब नष्ट कर डाला। इनमें और कोई बुरी लत नहीं थी; हाँ यह अवश्य था कि यह अत्यन्त साधारण बुद्धिके मनुष्य होते हुए भी अपने मनमें अपनेसे बढ़कर बुद्धिमान किसीको नहीं समझते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अच्छे लोगोंने इनके यहाँका आना-जाना बन्दकर दिया और दुनियाभरके चापलूसोंने अड्डा जमा लिया। इन्हें इसका किंचित् भी ज्ञान न हुआ कि क्या हो रहा है। अब शेखी बघारनेका इन्हें अच्छा अवसर मिलने लगा। कभी कहते,—परसों कलट्टर साहबसे बातचीत हो रही थी; वह कहते थे कि विलायतमें एक नये यंत्रका आविष्कार हुआ है जो घंटेभरमें दोसौ मील-की रफ्तारसे दौड़ेगा। उसपर तीन आदमी बैठ सकते हैं। उस यंत्रमें प्रशंसनीय बात यह है कि वह दौड़ते समय दिखलायी भी नहीं पड़ता। हमने तो तीस हजारमें एक यंत्र मँगानेके लिए साहबसे कह दिया। क्यों, ठीक है न ?

चापलूस कहते,—बहुत ठीक भैया। अरे आप न मँगावेंगे तो कौन ससुरा मँगावेगा।

यह सुनकर शम्भूदयाल सम्पत्ति-गर्वका अनुभव करते। दो-चार महीनेके बाद यदि कोई चापलूस पूछता कि अभी वह यंत्र आया कि नहीं भैया, कितने दिनमें आवेगा ? तब शम्भू-

दयाल कह बैठते, तुमसे कहा नहीं ? वह तो जहाज़ ही समुद्रमें फट गया न ? बड़ी दिल्लगी हुई; साहब कहते थे कि वह यंत्र है तो बहुत छोटा, पर वज़नदार इतना है कि मामूली जहाज़ उसका भार नहीं सह सकता। बेचारा जहाज़वाला हजार पाँच सौ रुपयेके लोभसे उसे ला रहा था, दस लाखका जहाज़ गवाँ बैठा। अब उसे नहीं मँगावेंगे।

चापलूस कहते,—यहाँ मँगाकर क्या करियेगा भैया।

इस प्रकार शम्भूदयाल खूब ही डींग मारा करते और चापलूसलोग ध्यानसे सुना करते थे। पढ़े-लिखे लोगोंके साथ बातें करनेमें उन्हें यह सहूलियत न होती थी, इससे वह अच्छे लोगोंसे कोसों दूर रहने लगे। रुपये और गल्लेका व्यवहार भी झंझट समझकर तोड़ दिया, इससे वह आय भी कम होगयी। इधर नौकरों-चाकरोंकी निगरानी भी वह नहीं कर सकते थे। पहले तो उन्हें चापलूस-सभाकी बैठकसे छुट्टी ही बहुत कम मिलती थी और यदि मिलती भी थी तो वह बही-खातेकी जाँच करनेमें बिलकुल कोरे थे; हाँ यह जरूर था कि नौकरोंपर रुआब दिखानेके लिए कभी कभी बही-खातेकी जाँच करने बैठ जाते और त्योरियाँ चढ़ाकर पूछते,—यह रकम कैसी है, अभी-तक खतियावन क्यों नहीं हुआ? मुनीम-गुमास्ते भी इधर-उधर-की बातें करके लगे उल्लू सीधा करने। परिणाम यह हुआ कि पिताके मरनेके पन्द्रह वर्ष बाद ही आज यह दशा हो रही है।

पिताको चिन्तित देखकर ज्ञानदत्तने कारण पूछा । शम्भू-दयालने कह सुनाया । ज्ञानदत्तने कहा,—घबड़ानेकी आवश्य-कता नहीं है बाबूजी । सब ठीक हो जायगा । किन्तु आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था । दो हजारमें ही यदि विवाह कर लेते तो इतना कष्ट क्यों सहना पड़ता ?

शम्भू—तुम अभी लड़के हो बेटा । यह क्या मैं नहीं जानता ? लेकिन क्या करूँ, इज्जतमें तो बट्टा लग जाता न ! धन तो फिर फिर होता है, पर खोयी हुई इज्जत फिर जल्द नहीं आती ।

ज्ञान—यह समझना भूल है । मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार काम करना चाहिए । इसमें इज्जतमें बट्टा लगनेकी कोई बात नहीं है। इज्जत नष्ट होती है बुरे कामोंसे नकि वित्तके अनुकूल काम करनेसे ।

यदि और समय होता तो शम्भूदयाल ऊपरकी बातपर रुष्ट हो जाते, किन्तु इस समय वह जी मसोसकर रह गये । इसलिए नहीं कि ज्ञानदत्तकी बुद्धि सराहनीय है, बल्कि इस-लिए कि ज्ञानदत्तने कहा है "सब ठीक हो जायगा" । अतः कुछ कहनेसे ज्ञानू रंज हो जायगा । क्योंकि ज्ञानदत्तने विद्यामें कितनी उन्नति की, इसका शम्भूदयालको क्या गाँवके किसी भी आदमीको पता नहीं; सबलोग तो ज्ञानदत्तको नालायकोंकी श्रेणीमें समझते हैं; मूर्खलोग तो लायक उसे समझते हैं जो खूब रुपया पैदा करे ।

सच है ! गुणका आदर गुणियोंके समीप ही होता है। यदि बुद्धि होती तो शम्भूदयाल समझते कि ज्ञानदत्तने कितनी अच्छी बात कही है। पिताके उदासीन भावसे ज्ञानदत्तने समझ लिया कि मेरी बात इन्हें बुरी मालूम हुई है। अतः उन्हें प्रसन्न करनेके लिए बात टालकर कहा,—चारो इलाके कितने रुपयेपर गिरों रक्खे गये हैं बाबूजी ?

शम्भूने अन्यमनस्क भावसे उत्तर दिया,—साठ हजारमें।

ज्ञानदत्तने इलाकोंकी आमदनी जोड़कर हिसाब लगाया। मालूम हुआ कि रेहनदारोंको एक रुपया सैकड़ा माहवारीसे अधिक नफ़ा हो रहा है। कहा,—अच्छा, अब आप घबड़ावें नहीं, मैं रुपयोंका प्रबन्ध कर लूँगा।

यह कहकर ज्ञानदत्त चले गये। दो-चार जगह गये, पर कहीं भी काम न हुआ। अन्तमें वह बनारसके दलालोंसे मिले। ऐसे दलालोंसे जो जमींदारीके बिकवाने और खरिद्वानेका काम करते थे। दो-तीन दिनके भीतर ही आठ आनेके नफेपर एक जगह मामला बैठ गया। ज्ञानदत्त घर चले आये। सारा हाल कह सुनानेपर शम्भूदयाल प्रसन्न होगये। अभी काम तो नहीं हुआ, पर उनकी चिन्ता दूर होगयी।

इस प्रकार ज्ञानदत्तने एक लाख रुपयेमें तीन इलाके गिरों रखकर एक इलाका बचा लिया और जो फुटकल रुपये थे, उन्हें भी देकर सूद तोड़ दिया ;तथा ब्याहके लिए ढाई हजार रुपया पिताके हवाले कर दिया। अब चार-पाँच हजार रुपये

वार्षिक लाभकी गुञ्जायश होगयी । ज्ञानदत्तके इस प्रबन्धसे शम्भूदयाल जी उठे ।

परसों ही बारात आवेगी, यह समझकर सबलोग सामान जुटानेमें लग गये। दो दिनके भीतर सब सामान आ गया । ज्ञानदत्तने दो-तीन आदमियोंकी सहायतासे दरवाज़ेकी सजावट की। उन्होंने मकानके सामने बाँसकी फरेठियोंका महराबदार दरवाजा कपड़ेके फूलोंसे ऐसा अच्छा सजाया कि एक बार उसपर दृष्टि पड़ते ही हर मनुष्यके मुखसे बरबस निकल पड़ता था—'वाह !'

निश्चित समयपर बारात आगयी । ज्ञानदत्तने प्रबन्धका भार अपने ऊपर ले लिया। वह यह जानते थे कि बारातमें बड़ी गड़बड़ी हुआ करती है, इसलिए सबसे पहले उन्होंने यह अन्दाज़ा लगाया कि कुल कितने आदमी हैं। द्वारपूजा होनेके पहले ही उन्होंने चारपाई और जलका प्रबन्ध बारातियोंके लिए करा दिया । यह व्यवहार देखकर सब बाराती प्रसन्न होगये । अब यदि ज्ञानदत्तके प्रबन्धमें कोई त्रुटि भी हो तो बारातका कोई आदमी चूँ नहीं कर सकता, इतना भार ज्ञानदत्तने उनपर पहले ही लाद दिया । बाद स्वयं जाकर प्रधान लोगोंसे मिले और प्रत्येक बीस आदमियोंके बीच अपना एक आदमी नियुक्त करके चले आये । उन लोगोंसे यह भी कह आये कि जिस चीज़की जरूरत हो, आपलोग इसी आदमीसे कहें । और उन आदमियोंको यह सहेज दिया कि तुमलोग कोई चीज़ लानेके

लिए स्वयं न जाओ बल्कि जो दो आदमी तुमलोगोंमेंसे हर आदमीको दिये जा रहे हैं, उन्हींसे सामान मँगाओ। इस प्रकार चौदह सौ आगत बारातियोंका प्रबन्ध ठीक करके ज्ञानदत्त और कामोंमें लगे।

द्वारपूजाके बाद उन्होंने यह सूचना भेज दी कि आठ बजेतक सबलोग शौचादिसे निवृत्त हो जायँ। सवाआठ बजे भोजन कराया जायगा और साढ़े दस बजे वैवाहिक कार्य प्रारम्भ हो जायगा। स्वयं-पाकियोंको भोजनकी सारी चीज़ें भेजी जा रही हैं।

ज्ञानदत्तके प्रबन्धसे बारातमें हुल्लड़बाजीका नामतक नहीं था। स्त्रियोंके अश्लील-रहित सुन्दर गीत सुनकर तो सब बारातियोंको दंग रह जाना पड़ा। प्रसन्नता-पूर्वक सब कार्य समाप्त होनेके बाद तीसरे दिन बारात बिदा होगयी। ऐसा अच्छा सत्कार अबतक किसी बारातमें नहीं हुआ था, यह बात बाराती रास्तेभर कहते गये।

सबकुछ तो हुआ, किन्तु ज्ञानदत्तको इस विवाहसे एक बातका बड़ा ही दुःख हुआ। वह यह कि लड़का, सरलाके अनुकूल नहीं था। क्या लड़का कुरूपवान था? नहीं! लड़केकी सुन्दरताका तो गाँवभरमें बखान हुआ, गहने भी कम नहीं आये, देना-पावना भी बड़े ऊँचे दर्ज़ेका हुआ, धनकी भी शिकायत नहीं। शिकायत है, केवल लड़केकी अल्पावस्थाकी। लड़केकी अवस्था अभी तेरह वर्षकी ही थी। ज्ञानदत्तकी इच्छा

थी कि द्वादश वर्षीया सरलाके लिए सोलह वर्षसे कम अवस्था-का लड़का किसी भी दशामें न रहे। वह इच्छा पूर्ण न हुई, बस यही उनके दुःखका कारण था। किन्तु अब तो जो कुछ होना था सो होगया, यह सोचकर ज्ञानदत्तने इस बातको दिलसे उतार दिया।

धीरे-धीरे दो दिनके बाद सब रिश्तेदार बिदा होगये। ज्ञानदत्तका छोटा साला विजय अपनी बहनको ले जानेके लिए रह गया। उसने शम्भूदयालसे जाकर कहा,—कलके लिए सवारी और कहारका प्रबन्ध कर दीजिये।

शम्भूदयालने हँसकर कहा,—क्यों बेटा, सवारी लेकर क्या करोगे?

विजय—बहनको साथ ले जानेके लिए।

शम्भू—और तुम?

विजय—मैं अपने घोड़ेपर जाऊँगा। सड़क बन रही है, नहीं तो बाबूजीने मोटर भेजनेका विचार किया था।

दस वर्षके लड़केकी बातें सुनकर शम्भूदयाल बड़े प्रसन्न हुए। बोले,—अच्छी बात है, मैं प्रबन्ध कर दूँगा, मोटर नहीं आयी तो क्या हर्ज है।

विजय खुश होकर अपनी बहन रमासे यह समाचार कहनेके लिए चला गया। और शम्भूदयाल बैठकर मन-ही-मन सोचने लगे, रुपये सब खर्च होगये। छोटी बहूके गहने कैसे छूटगे? क्या इसके लिए ज्ञानदत्त कोई प्रबन्ध न करेगा?

उससे कहे कौन ! बिना गहनेके बिदा करना ठीक नहीं है। इतने बड़े धनीके घरकी लड़की बिना गहनेके जायगी तो सब औरतें क्या समझेंगी। यदि अभी न बिदा किया जाय तो कैसा हो ? पं० सदायतनसे वादा न किया गया होता तो अच्छा था। अब उनसे झूठा बनना उचित नहीं है। भला वह अपने मनमें क्या कहेंगे ? यही न, कि यदि नहीं बिदा करना था तो बचन क्यों दिया ! उनका यह सोचना क्या मेरे लिए कम अपमानकी बात है,—आदि बातें वह बड़ी देरतक सोचते रहे, किन्तु कुछ भी स्थिर न कर सके।

इधर रमा गहरी चिन्तामें पड़ी हुई थी। हैं ! माँ-बापके घर जाते समय चिन्ता कैसी ? क्या रमा मैकेमें जाना पसन्द नहीं करती ? ऐसी कौन स्त्री है जो पसन्द न करे ! किन्तु रमाकी स्थिति ही ऐसी है कि उसे चिन्तित होना पड़ रहा है। अच्छा तो क्या वह अपने स्वामीको छोड़कर नहीं जा रही है ? हो सकता है कि एक कारण यह भी हो। किन्तु जहाँतक समझमें आता है, वह किसी और भी कारणसे जानेमें हिचक रही है। क्या कारण है, समझना सरल नहीं है।

बात यह है कि रमाके पिता पं० सदायतनजी इस समय कमसे-कम तीस लाखके धनी हैं। उनके घरका चाल-व्यवहार तथा खाना-पहनना अमीराना है। ऐसे घरमें रमा जायगी। उसके पास रंग-विरंगे कीमती कपड़े नहीं, वहाँकी स्त्रियोंके मेलके गहने नहीं; ऐसी दशामें वह जानेमें कैसे प्रसन्न हो ?

अभी सालहीभर पहले तो वह सबकुछ भोग आयी है। उसकी सातो भापजें आपसमें काना-फूसी करती थीं। रमा क्या अबोध बालिका है जो इतना भी न समझ सके? यद्यपि उसे खुद तो इन सब चीजोंका बिलकुल शौक नहीं रहता, तथापि वह सब औरतोंके अँगुली उठानेकी वस्तु बनना नहीं चाहती। उसकी भावजें प्रतिदिन तरह तरहकी चीज़ें मँगाया करती हैं, रुपये दो रुपये रोज खर्च किया करती हैं, बेचारी रमाके पास इतने रुपये कहाँ? वह अपने घरमें रूखी रोटी खाकर दिन बितावेगी, आभूषण-रहित हो, फटे-पुराने कपड़े पहनेगी, नाना प्रकारके अपमान भी सहेगी, किन्तु भावजोंके बीच गरीबकी भाँति कभी न रहेगी। यद्यपि रमाको सबलोग चाहते हैं, भाइयोंका स्नेह अलौकिक है, माँ-बापके स्नेहका कुछ कहना ही नहीं है, भावजें भी ऊपरसे प्रेम ही रखती हैं, फिर भी उसे वहाँ रहना सुखकर नहीं प्रतीत होता।

इन बातोंके अतिरिक्त रमाके लिए सबसे बड़े दुःखकी बात यह है कि वहाँके सबलोग ज्ञानदत्तको मूर्ख समझते हैं। अभी-तक स्वामीके प्रति रमाकी भी ऐसी ही धारणा थी। किन्तु इस बारके सम्मिलनमें उसने समझ लिया कि ज्ञानदत्तने कितनी उन्नति की है। यदि वहाँके लोग भी रमाकी भाँति ज्ञानदत्तके पांडित्य-पूर्ण सुविचारोंसे परिचित होगये होते तो सम्भवतः वह नंगे बदन जानेमें भी संकुचित न होती। किन्तु अभी तो उसके भाइयोंकी धारणा पूर्ववत् ही है। ऐसी दशामें वह

स्वामीकी निन्दा सुननेके लिए क्यों जाने लगी। माना कि वहाँ जानेपर रमाको दो-चार सौ रुपये स्वभाविक ही मिल जायँगे, परन्तु रमाका स्वाभिमान इतना सस्ता नहीं जो रुपयोंसे खरीदा जा सके। परमात्मा करें रमाकीसी स्थिति शत्रुकी भी न हो! बेचारी अपनी कष्ट-कहानी किसीसे कह भी नहीं सकती,—यहाँतक कि स्वामीसे भी नहीं कह सकती। क्योंकि कहनेसे मैकेकी तथा उसकी तौहीनी होती है। लोग यह समझेंगे कि इसका वहाँ आदर नहीं होता। कैसे माँ-बाप हैं कि सात लड़कोंमें एक ही लड़की रहनेपर भी खातिर नहीं कर सकते। लोगोंका यह कहना क्या रमाके लिए सह्य होगा? कदापि नहीं! स्त्रियाँ सबकुछ सह सकती हैं, किन्तु नैहरकी निन्दा वे मरते दमतक नहीं सहन कर सकतीं। तिसपर रमा जैसी स्त्रीका तो कहना ही क्या!

इन्हीं बातोंकी चिन्तामें वह कई दिनोंसे पड़ी थी। विवाहोत्सवके समय भी वह क्षणभरके लिए इस चिन्तासे मुक्त नहीं हो सकी। आज भी वह अपने कमरेमें अकेली बैठी यही सब सोच रही थी, इतनेमें विजय दौड़ता हुआ आकर उसके ऊपर गिर पड़ा और हाँफता हुआ बोला,—बहन, तुम अपनी तैयारी करो, कल चलना होगा।

रमाने हँसकर उसे सँभालते हुए कहा,—मैं तेरे घर न जाऊँगी।

विजयने बहनकी आवाज सुनी। एक बार अर्थहीन दृष्टिसे

उसकी ओर देखा। उसकी सारी प्रसन्नता जाती रही। चेहरे-पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह अलग खड़ा होकर बोला,—क्यों, मेरा घर कैसा? क्या तुम्हारा घर नहीं है? बोलो?

रमा अपने छोटे भाईका दीन बचन न सह सकी। बोली,—है क्यों नहीं भाई।

विजय—तब तुम क्यों नहीं चलोगी?

रमा—यों ही।

विजयकी आमकी फाँकसी आँखें डबडबा गयीं। बड़े कष्ट से बोला,—कारण?

रमाकी दृष्टि भाईके चेहरेपर पड़ी। देखते ही उसका जी भर आया। बोली,—हँसी कर रही थी रे विजय। चलूँगी क्यों नहीं? भला तेरे आनेपर न चलूँगी, यह तुझे विश्वास है?

विजयको शान्ति मिली। नीचे ताकता हुआ सिर हिलाकर उत्तर दिया,—'उँहूँ।'

रमा यह कहना ही चाहती थी कि,—"क्या तू उदास हो गया?" किन्तु कहते कहते न जाने क्यों रुक गयी। शायद यह सोचकर रुकी कि यह कहते ही विजय रो पड़ेगा, फिर चुप कराना कठिन हो जायगा। भाईका जी बहलानेके लिए बोली,—हाँ रे विजय, तेरे लिए एक बढ़ियासी चीज रक्खी है।—यह कहकर रमा उठी और दीवारमें लगी आलमारीके भीतरसे एक तश्तरीमें दो तीन मिठाइयाँ तथा कुछ फल रखकर ले आयी। कहा,—ले, इसे खा ले।

विजयने नीचा सिर किये उदास भावसे कहा,—मेरी इच्छा नहीं है।

रमाने उसके कोमल गालोंपर हाथ फेरकर कहा,—ले, ले।

विजयने कहा,—अभी न खाऊँगा।

रमाने कहा,—न खाओगे तो मैं कल न चलूँगी।

अब तो विजय विवश होगया। मीन-मेष कुछ भी न कर सका। तश्तरी हाथमें लेकर खाने लगा।

इधर शम्भूदयालने बहुत माथा-पच्ची करनेके बाद यही स्थिर किया कि अभी न बिदा करना ही अच्छा है। इसलिए उन्होंने विजयको बुलाकर कहा,—कलके लिए तो मुहूर्त्त अच्छा नहीं है बेटा, चार-पाँच दिन ठहरो; बाद अपनी बहनको ले जाना।

विजयने कहा,—चार-पाँच दिनके बाद मुहूर्त्त है?

शम्भूदयालने कहा,—हाँ।

लड़का राजी होगया। शम्भूदयालने एक पत्र लिखकर सदायतनजीके पास भेज दिया। उस पत्रका आशय यह था कि,—मैं तो आपको बचन दे चुका हूँ, इसलिए बिदा करनेमें मुझे कोई इनकार नहीं है। पर मेरी आन्तरिक इच्छा यह थी कि यदि आप महीनेभरके बाद लड़कीको बुलावें तो अधिक उत्तम हो। आगे जैसी आप आज्ञा देंगे, उसे मैं शिरोधार्य करूँगा। आपके पत्रोत्तरकी देर है। चिरं० विजय मजेमें है। ज्ञानू अभी घरपर ही है; एक मासके बाद जानेके लिए कहता है,—यद्यपि मेरी इच्छा तो यह है कि अब वह कहीं न जाय, घरपर ही रहे।

पत्र पढ़कर सदायतनजीने सारा हाल अपनी स्त्रीसे कहा। स्त्रीकी तो रुचि थी कि बिदा करनेके लिए पत्र लिख दो; किन्तु सदायतनने कहा,—"अभी लड़का घरपर है, इसलिए बुलाना ठीक नहीं है। ज्ञानदत्तके चले जानेपर बुला लिया जायगा। यही समझकर उन्होंने राय भी ली है।" यह सुनकर रमाकी माँ राजी होगयी।

सबेरे पत्रका उत्तर लेकर आदमी आगया। शम्भूदयाल पत्र पढ़कर संकट-मुक्त होगये। यह समाचार सुनकर ज्ञानदत्त-की भी आन्तरिक ज्वाला शान्त होगयी। रमा, पहले कष्टसे मुक्त होकर अब दूसरी ही चिन्तामें पड़ गयी। पितृ-गृहका दर्शन अब आज उसे न हो सकेगा। कब होगा, यह भी ठीक नहीं। जिसकी सुश्रुषासे वह इतनी बड़ी हुई, अब भी जो उसके लिए प्रतिदिन प्रेमके आँसू बहाया करती है, उसके न आनेका समाचार सुनकर आज जिसका हृदय थोड़े जलकी मछलीकी भाँति छटपटा उठेगा, उस माँका दर्शन रमाको आज न होगा। एक ही दो दिनमें विजय भी चला जायगा! यह सोचते ही रमाकी आँखोंसे आँसूके दो कतरे, सीपसे मोतीकी तरह लुढ़ककर उसके गोरे गालोंपर आ गये। हाय! फिर तो रमा अकेली रह जायगी। यहाँ उसका कोई भी न रहेगा। वह किसे लेकर सन्तोष करेगी?

अब रमाकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। सोचने लगी,—अबतक मैं रास्तेमें होती, घण्टेभर बाद मैं माँके पास

पहुँच जाती, सखी-सहेलियाँ आकर मिलतीं-भेंटती, स्वतन्त्रता-पूर्वक बड़े हौसले और उमंगके साथ मैं पड़ोसियोंके घर जाती। हाय, वह सब दुर्लभ होगया! अब न जानें कब ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा!

रातके ग्यारह बज गये थे, बालक विजय खा-पीकर गहरी नींदमें बेखबर सो गया था और रमा इसी चिन्तामें लेटी जाग रही थी। ज्ञानदत्तने उसका चेहरा उतरा हुआ देखकर पूछा,—आज अभीतक तुम्हें नींद क्यों नहीं आयी? क्या माँकी याद कर रही हो?

रमाने कहा,—अभी तो सोनेका समय ही हो रहा है।

ज्ञानदत्तने उसके अरुण अधरोंका प्रेम-पूर्ण चुम्बन करते हुए कहा,—वाह! ग्यारह बज गये, अभी सोनेका समय नहीं हुआ? मेरे भाग्यसे ही तुम्हारा जाना रुक गया।

"और मेरे भाग्यसे नहीं," यह रमा कहना चाहती थी, किन्तु संकोचने उसकी जबान बन्द कर दी।

ज्ञानदत्तने कहा,—क्या तुम भारतेन्दुजीकी उस दिन-वाली कविताका स्मरण कर रही थी?

रमाने तिरछी नज़रोंसे ताकते हुए पूछा,—कौनसी?

ज्ञानदत्तने कहा,—याद करो।

रमाने मतवाली आँखोंके संकेतसे कहा,—मुझे नहीं याद है।—फिर न जानें क्या सोचकर मुखसे कहा,—बतलाओ?

ज्ञानदत्तने मुस्कराते हुए कहा,—मैं अच्छी तरह समझ

गया कि तुम उसी कविताकी याद कर रही थी।

रमाने ज्ञानदत्तके वक्षस्थलपर हाथ रखकर कहा,—बतला दो न !

ज्ञानदत्तने भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी कविताका पाठ किया:—

"टूट ठाट घर टपकत खटियउ टूट ।
पिय कै बाहँ उसिसवाँ सुखकर लूट ॥"

ऊपरकी पंक्तियाँ सुनते ही रमाने स्वामीपर एकबार नेत्र-बाण चलाकर मुस्कराते हुए, आँचलसे किंचित् मुँह ढँककर कहा,—चलो उधर, तुम्हें तो यही सब रहता है।

सुशिक्षिता रमाके इस शब्द और मनोहर भावमें कितनी सरलता है, इसका अनुमान करते ही ज्ञानदत्तका रसीला हृदय आनन्द-लहरीमें उद्वेलित हो नृत्य करने लगा। क्षण-कालतक चुप रहनेके बाद उन्होंने रमाको हृदयसे लगा लिया और कहा,—थी न यही बात ?

रमाने स्वाभाविक सलज्जताके साथ साहस-पूर्वक मधुर स्वरमें कहा,—तो इसमें अनुचित ही क्या है !

थोड़ी देरतक दोनों चुप रहे। बाद ज्ञानदत्तने पूछा,—अच्छा अब ये बातें जाने दो, सच बतलाओ तुम्हारी उदासी-का असली कारण क्या है ?

रमाने कहा,—कुछ तो नहीं, यों ही ज़रा वहाँकी याद आ गयी थी।

रमाका यह स्पष्ट उत्तर सुनकर ज्ञानदत्त बाग़बाग़ हो उठे।

इसके बाद दाम्पत्य विश्रम्भालाप (केलि-कलह-पूर्ण वार्त्तालाप) बहुत देरतक होता रहा।

भोली रमा ! ज़रा यह भी तो सोच कि, यदि तू चली गयी होती तो आज तुझे स्वामी-दर्शन कैसे मिलता ? तुलना करके देख तो सही, पति-सुखके बराबर संसारके समूचे सुख मिलकर होते हैं या नहीं ? कदाचित् तेरा हृदय यही निष्कर्ष निकालेगा कि संसारके सब सुख मिलकर स्वामी-सुखके पासंगेमें भी नहीं आ सकते। अच्छा, तो फिर तू पितृ-गृहमें जानेके लिए क्यों अधीर होती है ? नहीं नहीं, भूल हुई। तेरे पिताका घर तेरे लिए गौरव-पूर्ण स्मरण रखनेकी वस्तु है,—स्त्रियाँ तो ससुरकी भव्य अट्टालिकामें दर्जनों दासियोंसे सेवा कराना छोड़कर निर्धन पिताके घर जाकर बासन माँजनेके लिए तरसती हैं, बिलखती हैं, देवी-देवताको मनाती हैं। लेकिन क्या तूने अपनी स्थितिपर भी ध्यान दिया ? ज़रा पहलेकी बातोंका भी तो स्मरण कर पगली ! ओफ़् ! कैसी भद्दी भूल है ! सोचनेकी बात है, यदि रमा पहलेकी बातें न सोचे होती, तो स्वामीके आते ही—दो-चार बातें करते ही—वह सब चिन्ताओंसे मुक्त क्योंकर हो जाती ?

सामनेकी वस्तुका असर मनुष्यके हृदयपर चढ़ ही जाता है—चाहे वह थोड़े समयतक रहे अथवा अधिक समयतक; किन्तु असर अवश्य चढ़ता है, यह मनुष्यका स्वाभाविक धर्म है। इसीसे रमा भी पिताके घरकी याद करके दुःखी होगयी

थी। किन्तु स्वामीसे भेंट होते ही उसे भावजोंके अँगुली उठाने तथा पति-वियोगके दुःखका स्मरण हो आया, इसलिए उसका वह दुःख दूर होगया। यदि ऐसा न होता तो अभी वह न जानें कबतक यह यंत्रणा भोगती, रोती-कलपती, और ज्ञानदत्तसे भेंट होनेपर उसका वह दुःख-सागर अधिक वेगसे उमड़ता।

कुछ आहट पाकर ज्ञानदत्तने कहा,—ज़रा देखो, बाहरमें कोई है क्या।

रमाने दूसरी खिड़कीसे जाकर देखा और फिर पीछे पाँव वापस आकर आहिस्तेसे कहा,—मैं तो नहीं पहचान सकी, ज़रा तुम उठकर देखो कौन है।

ज्ञानदत्त चोरकी आशंका करके झट उठे और दबे पैरसे जाकर देखा तो मालूम हुआ कि स्त्री सफेद साड़ी पहने दरवाजेके पास कान लगाकर खड़ी बड़े यत्नसे भीतरकी बातें सुन रही है। ज्ञानदत्तने उस स्त्रीका पृष्ठ-भाग देखकर ही समझ लिया कि यह और कोई नहीं 'प्रभा' है।

तेरहवाँ परिच्छेद

——::*::——

प्रभाकी ज्वाला बहुत बढ़ गयी। रमाका यह सुखमय जीवन उसके कलेजेमें काँटेकी तरह चुभने लगा। ज्ञानदत्त १५-२० दिनके बाद चले जायंगे, यह सोचकर उसे कुछ सन्तोष तो अवश्य होता था, पर उतना नहीं, जितना कि होना चाहिए। वह कोई नया काम करनेके लिए यत्न सोचनेमें निमग्न ही थी कि दयालु परमात्माकी कृपासे दाईने आकर एक पत्र दिया और यह सुसम्वाद सुनाया,—कलकत्तासे ज्ञानू बबुआको बुलानेके लिए तार आया है बहू, वह बहुत जल्दी जानेके लिए कहते थे।

प्रभाने विह्वल होकर पत्र पढ़ते हुए पूछा,—तार कब आया है?

दाईने कहा,—अभी।—यह कहकर दाई चली गयी।

प्रभा फिर कुछ सोचने लगी। न जाने क्या सोचकर थोड़ी ही देरके बाद वह अपने स्थानसे उठी और रमाके कमरेमें गयी। वहाँ रमाको न पाकर फिर लौट आयी। शायद ज्ञानदत्तके तारका समाचार कहकर रमाको कष्ट पहुँचानेके लिए ही वह आतुर थी। आँगनमें आकर देखा तो सामने मालकिनके कमरे-में रमा बैठी थी। उसके मैकेसे एक औरत कुछ चीजें लेकर आयी थी, उसीसे वह बातें कर रही थी। देवकी सब चीजें

देख रही थीं । उसमें रमाके लिए एक साड़ी थी, दो जाकेट थे, पाँच जोड़ी कीमती चूड़ियाँ थीं और भी बहुतसी चीजें थीं। प्रभा जाकर खड़ी होगयी। देवकीने दुलहिनको देखकर आयी हुई मजदूरिनसे कहा,—जब तू आती है बुधिया, तब मैं यह समझती हूँ कि मेरे भी समधियान है, नहीं तो मैं तरस-कर मर जाती।

दुलहिनको सासकी यह बात बहुत खली। यदि उसके मैकेसे भी कभी-कभी इससे बढ़कर चीजें आती होतीं, तो आज देवकीको यह कहनेका अवसर न रहता। यद्यपि प्रभा ग़रीब पिताकी कन्या नहीं है; यह भी नहीं है कि उसके पिता कभी कोई चीज भेजते ही नहीं, तथापि यह अवश्य है कि अब उसके पिताकी स्थितिमें अन्तर पड़ गया है। पहले भी वह रमाके पिताके समान धनाढ्य नहीं थे और न इतनी चीजें हो भेजते थे, जितनी कि रमाके पिता। इसीसे वह तुरन्त ही वहाँसे खिसक गयी। सत्य है, दूसरेको कष्ट पहुँ-चानेकी चेष्टा करनेसे स्वयं दुःख भोगना पड़ता है। यदि प्रभा, रमाको कष्ट पहुँचानेके इरादेसे वहाँ न गयी होती तो उसका हृदय सासके व्यंगपूर्ण वाग्-बाणसे विद्ध कदापि न होता।

सासका कहना रमाको भी अच्छा न लगा। किन्तु वह भी कुछ बोल न सकी। थोड़ी देरके बाद ही रमा उठकर अपने कमरेमें चली आयी, क्योंकि आजहीसे कथा बैठनेवाली थी और उसके लिए प्रबन्ध करना था। यह नवीन कार्य्य ज्ञानदत्तके

उद्योगसे प्रारम्भ होनेवाला था। इसके लिए एक अस्सी वर्षके वृद्ध सदाचारी कथा-वाचक चुने गये थे। गाँवके लोग अपने घरकी स्त्रियोंको कथा सुननेके लिए जाने देना स्वीकार कर चुके थे। रमाने सब सामान एकत्र करके रख दिया और पढ़ी-लिखी स्त्रियोंको निमंत्रण-पत्र लिखकर भेज दिया। जो स्त्रियाँ मूर्खा थीं, उनके पास सन्देशा कहलवा दिया कि वे सन्ध्याके समय ७॥ बजे शिवजीके मन्दिरपर पधारें।

शिव-मन्दिर, पं शम्भूदयालके मकानके सामने थोड़ी दूरके फासलेपर बना हुआ है। इस मन्दिरका निर्माण पं० शम्भूदयाल-के पिताने किया था। स्थान बड़ा ही रमणीक है। आजकी शोभा वर्णनीय है। फुलवारीके बीचोबीच कथा-मंडप बनाया गया है और उसमें पर्देके भीतर तीन ओर स्त्रियोंके बैठनेका प्रबन्ध है। एक ओर तीन फुट ऊँचे चबूतरेपर व्यास-गद्दी है। सात बजे शाम होते ही धीरे-धीरे स्त्रियाँ जुटने लगीं। ठीक साढ़े सात बजे कथा-वाचकजी तथा गाँवके प्रमुख लोग भी आ गये। सबलोग ज्ञानदत्तकी प्रतीक्षा करने लगे।

इधर स्वामीकी यात्राका समाचार सुनकर रमाका सारा उत्साह भंग होगया। वह एकान्तमें बैठकर मन-ही-मन कुछ सोचने लगी। स्वामीके वियोगका स्मरण करके उसका हृदय विषादसे भर गया। तबतक मकानके बाहर किसी वृक्षपर बैठी हुई कोयल सहसा 'कुहूँ-कुहूँ' करके कूक उठी। यह कहना कठिन है कि उस कूकमें कौनसा जादू था जिसे सुनते ही रमा-

की आँखोंमें आँसू भर आये। आह कोयल! इस असमयमें तू क्यों कूक उठी? तुझे रमाकी आन्तरिक व्यथापर तनिक भी तरस न आया? क्या तेरा हृदय इतना निष्ठुर है? तेरे मधुर स्वरमें कितना हलाहल भरा है। माना कि तू बड़ी सुकंठा है; किन्तु तेरी संगीत-लहरीमें एक वेदना छिपी रहती है, जो मानव-हृदयकी उत्पन्न हुई ज्वालामें घृताहुतिकी भाँति काम करती है। सौभाग्यसे इसी समय ज्ञानदत्त आ गये। रमाने अपनी हृदय-वेदना छिपानेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु ज्ञानदत्तको देखते ही उसकी आँखोंसे जल-धारा बह चली। ज्ञानदत्तने कहा,—यह क्या? क्या मैं इसीलिए आया हूँ? ऐसे शुभ कार्यके प्रारम्भ करनेमें कहीं रोना होता है?

थोड़ी देरके बाद रमाने अपना सिर स्वामीकी छातीसे लगाकर मुख छिपा लिया। बड़े कष्टके साथ कहा,—क्या करूँ, चेष्टा तो करती हूँ कि आँसू न गिरें, पर ये निगोड़े रुकते ही नहीं।

रमाके इस वाक्यमें कितनी वियोग-व्यथा भरी थी, यह ज्ञानदत्तसे छिपी न रही। कहा,—तुम बुद्धिमती होकर ऐसा कहती हो? राम, राम! भला तुम इस प्रकार अपने मनके वश-में हो जाओगी, तो कैसे काम चलेगा? तुममें लोहेके समान दृढ़ता होनी चाहिए।

इस प्रकार बहुत समझाने-बुझानेके बाद रमाके परितप्त हृदयको कुछ शान्ति मिली। सभामें सम्मिलित होनेके लिए

राजी होगयी। ज्ञानदत्त चले गये। रमा उठी और सासके पास गयी।

देवकी दाइयोंको घर सहेजकर जानेके लिए तैयार बैठी थीं उनसे आज्ञा लेकर डरते-डरते अपनी जेठानी प्रभासे चलनेके लिए कहा। डरनेका कारण, वही सासका कथन था। उसे यह विश्वास था कि प्रभा क्रुद्धा सर्पिणीकी भाँति भल्ला उठेगी। किन्तु न जाने क्यों ऐसा नहीं हुआ। प्रभाने हँसकर बड़े प्रेमसे कहा,—तुम माँजीको लेकर चलो, मैं बाबाको सुलाकर किसी दाईके साथ अभी आती हूँ।

रमाने कहा,—तो फिर हमलोग भी ठहर जायँ, साथ ही चलगी।

प्रभाने बड़े आग्रहसे कहा—नहीं, तुम ठीक समयपर वहाँ पहुँच जाओ क्योंकि आज पहला दिन है। वक्त होगया है। जाओ। मैं अभी आती हूँ न! सबलोगोंका रुकना ठीक नहीं। बेचारी रमा यह न समझ सकी कि जगदीश तो सो गया है, यह झूठा बहाना किया जा रहा है। उसे क्या मालूम कि आज उसपर कोई गहरा षड्यंत्र रचकर प्रभा इस तरह प्रसन्न है। बोली,—अच्छा तो फिर चलती हूँ, आना जरूर जीजी।

"अभी आयी" कहकर रमाके जानेपर प्रभा मन-ही-मन कुछ सोचकर हँसी और बोली,—तेरा सर्वनाश किये बिना कभी न छोड़ूँगी।

रमा अपनी सासके साथ चली गयी। वहाँ जाकर देखा

कि गाँवकी सब स्त्रियाँ आ गयी हैं। अबतक कार्य प्रारम्भ हो-गया होता, किन्तु झानू बबुआ कुछ देर करके आये, इसीसे काम रुका है। रमाने अपने मनमें समझा कि मेरे ही कारण उन्हें आनेमें देर हुई।

इतनेमें व्यास-गद्दीके बाम पार्श्वमें एक विशाल नेत्रवाला सुन्दर युवक कुछ कहनेके लिए खड़ा हुआ। उस युवकके चेहरेसे सुन्दरता टपकी पड़ती थी। पक्का रंग, घुँघराले बाल, पतली नाक और ओठ तथा सुडौल मुखकी कान्तिपर एकबार सब-की दृष्टि अटक जाती थी। युवककी अवस्था भी कोई अधिक नहीं, केवल बीस-इक्कीस वर्षकी प्रतीत होती थी; रेखोंसे मुख-च्छवि और भी बढ़ गयी थी। युवकके उठते ही कथा-भवनमें शान्ति छा गयी। युवकने पहले शिव-स्तुति की, बाद अपना भाषण ठेठ बोलीमें प्रारम्भ किया। उसके गलेकी माधुरी लोगोंके चित्तको बरबस खींचे लिये जाती थी। युवकके भाषण-का सारांश यह है:—

माताओ, बहनो, तथा उपस्थित ग्रामीण बन्धुवरो,

आपलोगोंको मालूम है कि हमारे देशके अधःपतनका मूल कारण स्त्री-समाजकी अनभिज्ञता है; और यह अपराध पुरुष-जातिका है। क्योंकि पुरुषोंने ही स्त्रियोंकी शिक्षा रोक रक्खी है। स्त्रियोंकी मूर्खताके कारण ही गृह-कलह, पारस्परिक फूट और मूर्ख सन्तानोंकी उत्पत्ति हो रही है। इसलिए स्त्री-जातिके सुधारकी सबसे बड़ी आवश्यकता है, और इसी उद्देश्यसे यह

कार्य प्रारम्भ किया जा रहा है। अब आजसे यहाँपर हर रविवारको सन्ध्या समय रामपुर गाँवकी सब स्त्रियाँ जुटा करेंगी और हमारे पूज्य वयोवृद्ध कथावाचकजी एक घंटेतक उत्तमोत्तम उपदेश दिया करेंगे। सौभाग्यकी बात है कि हमलोगोंको एक ऐसे कथावाचक मिले हैं जो आजकलके कथक्कड़ोंसे सर्वथा भिन्न, देश-कालका ज्ञान रखनेवाले, पुराने देशसेवक, वृद्ध होनेपर भी परम उत्साही, सदाचारी, निर्लोभी तथा उत्तम उपदेशक हैं। कथा-वाचकजी सदा ऐसी कथाएँ सुनावेंगे, और ऐसे ही उपदेश दिया करेंगे, जिनसे हमारी माँ-बहनें देवी बनेंगी और उनके भीतरसे सारे कुसंस्कार दूर हो जायँगे। सती-साध्वी देवियोंके चरित्र, गृहस्थीके कार्य करनेकी रीति, समयके उपयोगकी विधि तथा और भी इसी तरहकी उपदेश-प्रद बातें ग्रन्थोंसे छाँट-छाँटकर सुनायी जायँगी। यहाँपर इन बातोंपर सबलोग हमेशा ध्यान रखें:—

१—इस भवनमें कथाके दिन स्त्रियोंके सिवा कोई भी पुरुष न आ सकेगा, और सब चीज़का प्रबन्ध स्त्रियाँ स्वयं करेंगी। जैसे, स्त्रियोंको बैठाना-उठाना, उन्हें जल पिलाना, पंखा झलना आदि।

२—पाँच आदमी इस भवनकी देख-रेख करनेके लिए नियुक्त किये जाते हैं। जब कभी किसी चीज़की आवश्यकता पड़े तो स्त्रियाँ अपने घरके किसी आदमीसे उन पाँचो आदमियोंमेंसे किसी एकके पास कहला भेजें,—किन्तु स्वयं पत्र

लिखकर न भेजा करें।

३—महीनेके अन्तमें सब स्त्रियाँ एक सेर चावल, सेरभर आटा, आध सेर दाल, और एक छटाँक घी कथा-वाचकजीको दिया करें।

४—यदि कथा-वाचकजी कोई रसिक कथा कहने लगें तो किसी नौकरानीसे तुरन्त कहलाकर कथा-वाचकजीको रोक देना चाहिए।

५—जहाँतक हो सके,सब स्त्रियाँ इसका प्रचार करें, ताकि अन्यान्य गाँवोंमें भी इसी तरहकी कथाएँ हुआ करें। किन्तु यह समझा देना चाहिए कि हर जगह कथा-वाचक बहुत समझ-बूझकर नियुक्त किये जायँ,—क्योंकि आजकल कथा-स्थानोंमें बहुत अधिक पाप किये जा रहे हैं।

६—यहाँ आकर सब स्त्रियाँ शान्तिसे रहा करें और जो कुछ उपदेश सुनें उसपर चलनेकी चेष्टा करें।

७—आपसमें बैठकर हमेशा अच्छी-अच्छी बातें सोचा करें और स्वयं उपदेश देनेके योग्य बननेकी चेष्टा करें—ताकि कुछ ही दिनोंमें आज जिस स्थानपर कथा-वाचकजी हैं, उस स्थानपर कोई स्त्री बैठे।

बस। संक्षेपमें मैंने सारी बातें कह दीं। यद्यपि आज मुझे इस विषयपर बहुत कुछ कहना चाहिए था तथापि मैं इतना ही कहकर अपना भाषण समाप्त करता हूँ कि यदि रामपुरनिवासी इस कार्यको सुचारु रूपसे करते जायँगे और इसमें किसी

प्रकारका भी दोष न घुसने देंगे तो एक वर्षके भीतर ही यह रामपुर स्वर्गपुर हो जायगा और यहाँके रहनेवाले स्त्री-पुरुष स्वर्ग-सुखका अनुभव करेंगे। ओ३म् शान्ति!

इसके बाद करतल-ध्वनिके साथ युवक अपने स्थानपर बैठ गया। पाठक समझ गये होंगे कि युवक महाशय पं० ज्ञान-दत्तजी हैं। इनके बैठनेके बाद कथा-वाचकजीने जगज्जननी जानकीजीका जीवन-वृत्तान्त मनोहर भाषामें कहना प्रारम्भ किया।

अभीतक तो रमा पर्देकी आड़में बैठी स्वामीका अभिभाषण सुननेमें तन्मय थी, रह-रहकर कनखियोंसे पासमें बैठी हुई स्त्रियोंकी नज़रें बचाकर स्वामीकी मुखच्छवि भी निहार लिया करती थी, किन्तु अब उसे अपनी जीजीका स्मरण हुआ। प्रभा अभीतक नहीं आयी, क्या कारण है? जान पड़ता है, जगदीश ऊधम कर रहा है, सोया नहीं।

कथा समाप्त होगयी। स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सब अपने-अपने घर जाने लगे। जहाँ देखो, वहीं ज्ञानदत्तके इस कार्यकी प्रशंसा हो रही थी। आज लोगोंको मालूम हुआ कि ज्ञानदत्तने अवश्य अपनी उन्नति की है। रमा भी पति-प्रशंसा सुन-सुनकर गद्गद हो, घर गयी। पहुँचते ही उसने प्रभाके कमरेमें जाकर कहा,—जीजी, तुम बड़ी झूठी हो। अब आजसे मैं भी तुम्हारी कोई बात न मानूँगी।

प्रभाने विषाक्त हँसी हँसकर कहा,—नहीं बहू, मुझे दोष

न दो। सच मानो, मैं तो तरसकर मर गयी। क्या करूँ, यह पाजी सोया ही नहीं। अच्छा हाँ, क्या-क्या हुआ, बतलाओ तो सही।

रमाने रूठकर कहा,—जाओ, मैं कुछ न बतलाऊँगी। मैं समझ गयी कि तुम्हारी जानेकी इच्छा ही नहीं थी; नहीं तो तुम्हारे कहनेकी देर थी, जगदीशको मैं ले लेती।

प्रभाने कहा,—उदास न हो बहू, मैंने इसीलिए नहीं कहा कि उसे ले चलनेमें व्यर्थ ही तुम्हें कष्ट होगा। अच्छा अभी रहने दो, खा-पीकर आज यहीं सोना, तब निश्चिन्ततासे सब हाल कहना। क्योंकि आज तो ज्ञानू बबुआ भी नहीं रहेंगे।

रमा तो सारा हाल कहनेके लिए उत्सुक थी, किन्तु प्रभा-की उक्त बात सुनकर न कह सकी। अपनेको भूलकर पूछ बैठी,—कहाँ जायँगे?

प्रभाने बनावटी चकित भाव दिखलाकर कहा,—तुम्हें नहीं मालूम? वह इलाकेपर किसी जरूरी कामसे जायँगे, शायद चले भी गये हों तो मैं नहीं कह सकती।

रमा कुछ न बोली और उदास होकर चली गयी। कल ही ज्ञानदत्त विदेश जायँगे, आज यह क्या? ऐसा कौनसा काम आ पड़ा, जिसकी चर्चा रमासे किये बिना ही वह इलाके-पर चले गये?

साढ़े दस बज गये थे। सबलोग नींदमें मस्त थे। किन्तु ज्ञानदत्तकी स्थितिके लोग अभी भी चारपाईपर पड़े करवटें

बदलते हुए किसी बातकी प्रतीक्षामें जागरण कर रहे थे। दर-वाजा खड़कनेपर ज्ञानदत्त चारपाईसे उठे और सीधे अपने कमरेमें चले गये। वहाँ जाकर देखा, रमा नहीं है और उसकी पलँगपर एक मनुष्य बिस्तरेको सिरहाने रखकर गहरी नींदमें अचेत पड़ा है। ज्ञानदत्त चौंक उठे, छाती धकधकाने लगी। नज़दीक जाकर देखा तो मालूम हुआ कि सोये हुए मनुष्यकी अवस्था अठारह वर्षसे अधिक नहीं है; गोरा रंग है, काकुलके बाल बिखरे हुए हैं, लम्बा मुख है, बिल्लीकीसी छोटी-छोटी आँखें हैं, चिकनका चुनावदार कुर्त्ता पसीनेसे तर हो रहा है। ज्ञानदत्त दो मिनटसे अधिक वहाँ नहीं रुक सके। सोया हुआ मनुष्य उनका अपरिचित नहीं था, फिर भी उन्होंने कई बार उसकी शकल बड़े गौरसे देखी। दिलमें आया, इसका काम तमाम कर देना चाहिए; फिर सोचा, ऐसा करनेसे षडयंत्रका पता न चलेगा। धीरताके साथ इस रहस्यको जानना चाहिए। यही स्थिर करके वह बिना कुछ बोले-चाले बाहर आकर सो रहे। रातभर उन्हें नींद नहीं आयी। बिछौनेपर करवटें बदलकर रात बितायी। सबेरे भी वह उद्भ्रान्तसे घूमते रहे।

चौदहवाँ परिच्छेद

प्रातःकालकी शीतल हवासे दीपकका प्रकाश कुछ मन्द हो चला। कोयल, पपीहा दधियलके स्वर भोर होनेकी सूचना देने लगे। उषा देवीकी अठखेलियाँ स्पष्ट दिखलायी पड़ने लगीं। ज्ञानदत्तकी नींद उचट गयी। आज ही साढ़े चार बजे उनकी यात्राका मुहूर्त्त है। झटसे उठकर बैठ गये। देखा, रमा उनका जूता साफ कर रही है। न जानें क्यों, रमासे बिना कुछ बोले ही, ज्ञानदत्त बाहर जानेके लिए उठ खड़े हुए। रातको सोते समय भी उन्होंने रमासे दो-चार रूखी बातोंके सिवा कोई बात नहीं की थी। किन्तु रमाने इसका कोई खयाल नहीं किया था। सबेरे फिर जब वह जानेको तैयार हुए, तब रमाने कहा,—अभी तो अधिक रात है, थोड़ा और सो लो न, रातको ट्रेनमें जागना पड़ेगा।

ज्ञानदत्तने अन्य-मनष्क होकर उत्तर दिया,—अब रात नहीं है।

रमा यह न समझ सकी कि स्वामी मुझपर नाराज हैं। उसने तो यही समझा कि जुदाईके समय मनुष्यकी तबीयत खिन्न हो ही जाया करती है। उसे क्या मालूम कि मामला क्या है। पूछनेपर भी तो नहीं बतलाया कि कल इलाकेपर कौनसा काम था। रमाके हृदयमें न जानें कैसा उद्गार उठा

कि वह व्याकुल होगयी। आँखोंसे आँसू गिर पड़े।

ज्ञानदत्त घड़ी ढूँढ रहे थे। यदि उस समय वह शुभ्र गौर-वदना, मृगनयनी, पके हुए बिम्बाफलके समान आरक्त अधरोष्ठी रमा सुन्दरीके मुख-कमलकी ओर दृष्टि फेरते तो अवश्य ही उनका मन भ्रमरकी भाँति मकरन्द पान करनेमें विभोर हो जाता। किन्तु हाय, रमाके दुर्भाग्यसे ऐसा न हुआ। रमा कुछ कहनेके लिए छटपटा रही थी, किन्तु थोड़ी ही देरमें स्वामी चले जायँगे, इसकी याद करके उसका गला खुलता ही न था। उसके परि-पुष्ट और सुविशाल नेत्रोंसे ग्रंथि-छिन्न मुक्ता-मालाकी भाँति शुभ्र और स्थूल अश्रु-विन्दुओंका झरना बन्द नहीं हुआ। ज्ञानदत्तने घड़ी देखकर अपने-आप ही कहा,—ओफ्! गाड़ीमें सिर्फ घंटे-भरकी ही देर है।

इसपर भी रमा कुछ न बोली। कुलमें घंटाभर! यह सोच-कर रमाका हृदय काँप उठा।

ज्ञानदत्त बाहर चले गये और शौचादिसे निवृत्त होकर आ गये। रमा ज्योंकी-त्यों बैठी थी। उसके हृदयमें वियोग-कविताकी आशा लहरा रही थी। ज्ञानदत्तने अपने कपड़े पहने और चलते समय रमाके विकसित पुष्प सदृश कपोलोंपर हाथ फेरकर कहा,—अच्छा, अब जाता हूँ, यदि तुम चाहोगी तो फिर आऊँगा।

रमाको अन्तिम वाक्य सुनायी नहीं पड़ा और यदि सुनायी भी पड़ा हो तो यह कहना चाहिए कि इस समय उसने उसपर

ध्यान ही नहीं दिया। यही कारण है कि उसने भर्रायी हुई आवाज-से बड़े कष्टके साथ केवल इतना ही पूछा,—कब आओगे ?

ज्ञानदत्तने रमाको आवाज सुनी। अर्थ-हीन दृष्टिसे उसकी ओर देखा। एकबार उनकी इच्छा हुई, इस प्रश्नकी उपेक्षा कर दें; इसपर ध्यान ही न दें; परन्तु दूसरे ही क्षण यह भाव न जानें कहाँ विलुप्त होगया। एक अज्ञात आकर्षणसे खिंचकर कमरेसे बाहर होते-होते ठमक गये। 'कब आओगे' इस छोटेसे वाक्यमें ज्ञानदत्तको विश्व-साहित्यका प्राण दिखायी पड़ा। वाह ! इसमें कैसी विरह-सूचक रस-भरी कविता है ! कैसा मर्मान्तक आर्त्तनाद है।

'मेरा आना तुम्हारी कृपापर निर्भर है' यह कहकर ज्ञान-दत्त कमरेसे बाहर होगये।

उनके जाते ही रमाको चक्करसा आ गया। तुरन्त ही वह बैठ गयी, इसलिए पछाड़ खाकर गिरनेसे बच गयी। उस समय उसे ऐसा जान पड़ता था कि मानो पूरी शक्ति लगाकर कोई उसके प्राणको बाहर खींच रहा है। हाय ! वह चले गये, मगर रमाको वियोगकी आगमें झोंककर ! रमा अपने स्वामीके बिना दीवानी बन गयी। अजीब हालत होगयी।

धर्मदत्त अपने भाईको गाड़ीपर बिठाकर वापस आ गये। सबलोग अपने-अपने काममें प्रवृत्त होगये। देवकी रमाके पास गयी। देखा, पूर्ण चन्द्रको राहुने ग्रस लिया है। रमाके प्रफुल्ल नेत्र जलपूर्ण हो रहे हैं। देवकीने उसका मुँह ऊपर उठाकर कहा,

—यह क्यारी ! क्या कोई परदेश नहीं जाता ? ज्ञानू पहले-पहल तो गया नहीं, वह तो हमेशा ही बाहर रहता है ।

सासने उसका रोना देख लिया और यह समझ लिया कि यह पतिके लिए रो रही है, यह सोचकर रमाको बड़ी लज्जा मालूम हुई । किन्तु क्या करती, उस समय रुदनको रोकना उसकी शक्तिसे बाहर था । चेष्टा करनेपर भी आँसू छलछला पड़े ।

उस दिन रमाने बहुत गोलमाल किया । सागकी कढ़ाई लुढ़का दी, भातमें नमक डाल दिया, दाल अलोनी रह गयी, कटोरेका घी नीचे गिरा दिया । दुलहिनने यह लीला देखते ही महाभारत मँचा दिया । कहा,—बाप-रे-बाप ! ऐसी औरत मैंने वसुधामें नहीं देखी । न किसीकी लाज न डर ! ज्ञानूके रहनेपर इसने एक दिन भी रसोई खराब नहीं की, उनके जाते ही फिर पुरानी चालसे चलने लगी ।

दुलहिनका कहना शम्भूदयालने सुन लिया । मालकिनसे जाकर कहा,—ज़रा दुलहिनको समझा दो, छोटी बहूको कुछ न कहें । भला ऐसे समयमें कुछ कहना होता है !

देवकीने झुँझलाकर कहा,—तुम्हीं जाकर समझाओ, मैं अपना सिर फोड़वाना नहीं चाहती ।

यह उत्तर पाकर शम्भूदयाल बाहर चले आये । बेचारी रमाका दुःख सुननेवाला इस घरमें कोई नहीं ! वाहरे संसार !

——::*::——

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

ज्ञानदत्त कलकत्ता पहुँचकर एक दैनिक पत्रका सम्पादन करने लगे। गौरी बाबूने इसी कामपर नियुक्त करनेके लिए तार भेजा था। दो ही महीनेमें ज्ञानदत्त अपने शिष्ट-स्वभाव तथा लेखन-कौशलसे हिन्दी-जनताके आराध्यदेव बन गये! शहरमें चारों ओर उनकी ख्याति होगयी। समाचार-पत्रकी बिक्री भी चन्द दिनोंमें ही दूनी होगयी। यह देखकर पत्रके मालिकने अपने-आप ही तीसरे महीनेसे ज्ञानदत्तका वेतन दो सौ रुपये मासिक कर दिया और उनके रहनेके लिए अपने हरीसन रोड-वाले मकानमें एक बढ़िया कमरा तथा रसोईं घर मुफ़्त दे दिया।

सब सिलसिला ठीक होगया, किन्तु ज्ञानदत्तका क्षुब्ध और प्रेमी हृदय शान्त न हुआ। कुशल यही थी कि कार्य्य-भार इतना विशेष था कि उन्हें फुरसत ही बहुत कम मिलती थी और जो कुछ समय मिलता भी था, उसमें मित्र-मण्डली घेरे रहती थी।

आफ़िससे आकर ज्ञानदत्त अपने कमरेमें बैठे पुस्तक पढ़ रहे थे। चंचल मन अपने स्वभावानुसार इस स्वाध्याय-निरत तपस्वीके ध्यानको भंग करनेमें लग गया। ज्ञानदत्तका दिल पुस्तकसे उचटा। घरसे बिदा होते समय रमाके उन

जल-भरे विशाल नेत्रों और हवाके झोंकेसे जलके ऊपर लहराते हुए विकसित लाल कमलके समान अधरोंका स्मरण हो आया। सोचने लगे,—वह शिशिर-मथिता पद्मिनी या मेघाच्छादित मलिन-कान्ति निशाकरके समान पति-विरहमें बैठी होगी।

किन्तु तुरन्त ही उन्हें उस मनुष्यकी याद आयी, जो रात्रिमें रमाके कमरेमें लेटा हुआ था। उनके शरीरका रक्त खौल उठा। सोचा, क्या सचमुच ही भाभीका कहना ठीक है? वह (रमा) दुराचारिणी है? यदि ऐसा न होता तो सोता पड़नेपर एक विराना पुरुष उसके कमरेमें क्यों जाता? स्त्रीकी रुचिके बिना कोई उसके घरमें कैसे जा सकता है? पर उसके चाल-व्यवहारसे तो ऐसा प्रतीत नहीं होता। भाभीने जो पत्र दिखलाया था, वह उसके हाथका लिखा हुआ भी नहीं मालूम होता था। हो सकता है कि उसने ही द्वेषके कारण कोई षड्यन्त्र रचा हो। परन्तु यह भी सम्भव नहीं। भला साधारण पढ़ी-लिखी और देहातकी रहनेवाली भाभीमें इतनी बुद्धि कहाँ? कौन जाने किसीके बतलानेसे भाभीने यह जाल रचा हो। अवश्य यही बात है, क्योंकि वह ऐसी नहीं है। वह मुझपर अगाध प्रेम रखती है। मैंने भूल की।

इतनेमें नौकरने आकर कहा,—पाखाना जानेके लिए पानी रख दिया है बाबू।

ज्ञानदत्तकी समाधि टूटी; झट उठे और शौचादिसे निवृत्त होकर कमरेमें आ गये। नौकर जरूरी चीजें टेबुलपर रखकर

बाजारकी चीजें लाने चला गया। ज्ञानदत्त दीवारपर टँगे हुए बड़े शीशेके सामने कुर्सीपर बैठकर कंघीसे बाल सँवारने लगे। अचानक उन्हें शीशेपर किसीका प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ा। ज्ञानदत्त भौंचक्केमें आकर इधर-उधर ताकने लगे, किन्तु कोई दिखलायी न पड़ा। फिर उन्होंने शीशेकी ओर देखा, पर वहाँ भी कुछ न पाया। विवश हो, कपड़ा पहनने लगे। रह-रहकर शीशेकी ओर ताक दिया करते थे। हठात् वही प्रतिबिम्ब फिर दिखायी पड़ा, किन्तु दृष्टि पड़ते ही फिर ग़ायब होगया।

ज्ञानदत्तका यह कमरा दोतल्लेपर था। सन्ध्याके समय बरामदेमें बैठनेसे हरीसन रोडकी निराली बहारका खासा आनन्द मिलता था। पहले मकानके मालिक इसी मकानमें रहते थे, और यही ज्ञानदत्त वाला कमरा ही उनके उठने-बैठने-का होनेके कारण आयल पेंटिग, मार्बिल आदिसे खूब सजा हुआ था। अब मकान-मालिक अपने नये मकानमें चले गये, किन्तु उन्होंने सजा-सजाया कमरा ज्ञानदत्त के लिए छोड़ दिया।

ज्ञानदत्त सड़ककी ओर बरामदेमें आकर चारों ओर देखने लगे। किन्तु फिर कुछ देखनेमें नहीं आया। प्रतिबिम्ब-दर्शनकी आशासे वह फिर भीतर जाकर आशा-भरी दृष्टिसे शीशेकी ओर टकटकी लगाकर निहारने लगे। थोड़ी देरके बाद ही छायाके पार्श्व भागका दर्शन हुआ। अबकी उस चित्रमें एक विशेषता दिखलायी पड़ी। जान पड़ता था, वह बिम्ब किसीसे बातें कर रहा था। इतनेमें प्रतिबिम्ब मुसकरा कर सीधा

होगया। अहा! उस मधुर और मन्द मुसकानमें कैसा जादू भरा था! जो ज्ञानदत्त कभी किसी परायी स्त्रीकी ओर देखते तक न थे, अचानक किसी स्त्रीपर या स्त्री-चित्रपर दृष्टि पड़ते ही मुँह फेर लेते थे, वही आज इस प्रतिविम्बपर मंत्रमुग्ध होगये। ऐसा क्यों हुआ, कहना कठिन है; शायद स्वयं ज्ञानदत्तके लिए भी इसका उत्तर देना असम्भव है। हाँ, यह अवश्य है कि उनमें जरा भी दुर्वासनाका अंश नहीं घुसा था। उनकी उत्सुकताके झुकावमें दुर्वासना छूतक नहीं गयी थी।

यदि यह कहा जाय कि ऐसा अपूर्व सौन्दर्य ज्ञानदत्तने कभी नहीं देखा था, तो बड़ा अनुचित होगा और रमाका अपमान होगा। रमा और इस प्रतिविम्बमें किसकी सुन्दरता अधिक है, इसका निर्णय करना साधारण काम नहीं है। हाँ, वेष-भूषासे अवश्य ही प्रतिविम्बकी सुन्दरता बढ़ी हुई मानी जा सकती है। किन्तु ज्ञानदत्तमें तो उसके अंग-प्रत्यंगको अलग-अलग देखनेका ज्ञान ही नहीं रह गया, उनकी आँखें तो केवल उस यौवन-पूर्ण मुखकी कोमलता-मंडित आभामें ही टिक गयीं। उसकी धनुषाकार भ्रू-भंगियोंके मृदुल हिल्लोल, स्वाभाविक सरलता, विकसित कपोल-लालिमाको देखकर यही अनुमान किया जा सकता है कि यह कोई देवबाला है।

प्रतीक्षा करते घंटों बीत गये, अन्धेरा होगया, किन्तु फिर वह मुख दिखलायी न पड़ा। हवाके झोंकेसे हिलती हुई मेचक रंगकी कामदार रेशमी साड़ी और सब्ज आस्तीन तथा उस

गौर-वदनाकी किंचित खुली हुई ग्रीवापर भी यदि ज्ञानदत्तकी दृष्टि गयी होती तो शायद उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती। नहीं, नहीं, तब तो उनकी व्याकुलता और भी बढ़ जाती। लाचार होकर वह बरामदेमें आराम कुर्सीपर बैठ गये। गौरी बाबू अपने घरपर बैठकर प्रतीक्षा करते होंगे, इसकी उन्हें बिलकुल सुध न रही।

थोड़ी ही देरके बाद गौरी बाबू आ गये। उन्हें देखते ही ज्ञानदत्त महान अपराधीकी भाँति काँप उठे। बोले,—क्षमा करना, एक काममें फँस जानेके कारण नहीं आ सका।

गौरी बाबूने पूछा—अब निश्चिन्त होगये या नहीं?

ज्ञान—हाँ, अब तो मैं आनेके लिए ही तैयार था।

यह कहकर उठ खड़े हुए। ईडन-गार्डन पहुँचकर दोनों मित्र टहलने लगे। इतनेमें काशीप्रसाद खंडेलवाल, बज्रधर शर्म्मा, जुहारमल मारवाड़ी और गांगुली बाबू भी आ गये। प्रेम-सम्मिलनके बाद सबलोग हरी घासकी कोमल और शीतल फ़र्शपर बैठ गये। गौरी बाबूने काशी बाबूकी ओर मुख करके कहा,—आपकी नयी स्कीम अभी तैयाम हुई या नहीं काशी बाबू?

ज्ञानदत्तने उत्सुकताके साथ पूछा,—कौनसी स्कीम?

काशी बाबूने कहा,—आपके पास तो पत्रमें प्रकाशनार्थ भेजी ही जायगी।

बज्रधर शर्म्माने कहा,—फिर भी सुना जाइये। शायद उसपर कुछ नये विचार पं० ज्ञानदत्तजी प्रकट करें।

काशी बाबूने कहा,—मेरा विचार ग्राम्य संगठन करनेका है। अभीतक तो नेतालोग शहरोंमें ही आन्दोलन करनेमें लगे थे, पर कुछ दिनोंसे उनलोगोंका झुकाव गाँवोंकी ओर भी हुआ है। मेरी समझसे नेताओंकी स्कीम उतनी लाभदायक नहीं है, जितनी होनी चाहिए। मैं यह चाहता हूँ कि ग्रामीणोंमें राजनीतिक ज्ञानकी वृद्धि भी होती जाय और साथ ही उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधरती जाय। बस, इसीके लिए मैं उद्योग कर रहा हूँ। बनारस जिलेमें विद्यापुर नामका एक गाँव है; वहाँ पं० सदायतनजी रहते हैं। वह धनाढ्य, विद्वान, देश-भक्त तथा प्रजापालक जमींदार हैं। मैं उनसे मिला भी था। वहींसे कार्यारम्भ करनेका इरादा है। वहाँके रहनेवाले पाँच योग्य और ईमानदार आदमियोंकी एक सभा कायम की जायगी। सबसे पहले द्रव्यकी आवश्यकता पड़ेगी, इसलिए यह विचार किया गया है कि उस गाँवमें कुल सोलह सौ वृक्ष हैं, जिनमें आठ सौ ऐसे हैं जो पुराने होगये हैं,—फलते-फूलते नहीं और कुछ ही दिनोंमें सड़ जायँगे। अतः वे आठ सौ वृक्ष बेंच डाले जायँगे। उनमें कुछ पेड़ तो ऐसे हैं जो सौ रुपयेसे भी अधिक दाममें बिकेंगे और कुछ ऐसे भी हैं जो तीस ही पतीस रुपयेमें बिक सकेंगे। इसलिए अटकल लगाया गया है कि आठ सौ पेड़ोंसे कमसे-कम पचास हजार रुपये मजेमें वसूल हो जायँगे। बस उन्हीं रुपयोंसे कार्यारम्भ किया जायगा।

ज्ञानदत्तने पूछा,—अच्छा जो पेड़ काटे जायँगे, उनकी जगहपर नये पेड़ लगाये जायँगे या नहीं? यदि लगाये जायँगे, तो उन्हें कौन लगावेगा,—सभा, या पुराने पेड़का मालिक?

काशी—पुराने पेड़ोंसे कहीं अधिक नये पेड़ लगाये जायँगे। पर अभी यह निश्चय नहीं हुआ है कि वह कार्य किसके जिम्मे रहेगा और किस प्रकार। इस विषयमें पं० सदायतन-से राय लेकर स्थिर करूँगा।

गौरी बाबूको यह नाम कुछ परिचितसा जँचा। पूछा,—सदायतनजी कौन हैं? (ज्ञानदत्तकी ओर देखकर) क्या आप-के ससुर तो नहीं?

ज्ञानदत्तने कहा,—मालूम होता है, वही हैं।

काशी बाबूने चकित होकर पूछा,—अच्छा, क्या पं०जी आपके ससुर हैं?

ज्ञानदत्तने कहा—जी हाँ।

काशी बाबूने हर्षित होकर कहा—यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अबकी बार मैं उनसे चर्चा करूँगा।

ज्ञानदत्तने कहा—मेरी रायमें वृक्षोंके लगानेका भार किसानोंपर ही छोड़ना उत्तम होगा; क्योंकि सभाकी ओरसे लगानेमें सम्भव है कोई किसान यह समझे कि अमुक आदमी-के पेड़की मरम्मत अधिक की गयी है और मेरे पेड़की कम।

काशी बाबूने जरा सोचकर कहा,—हाँ। आपका यह कहना ठीक है। ऐसा किया जाय कि सभा सब किसानोंको

खर्च दे दें और वे अपनी चीज अपने हाथसे लगावें और उपराजें।

"उसमें खर्चकी क्या जारूरत है," कहनेके बाद ज्ञानदत्त और कुछ कहना ही चाहते थे कि जुहारमलजी बोल उठे—हाँ और क्या; पेड़ लगानेमें न तो कोई चीज़ मोल लानेकी जरूरत है और न मजदूरोंकी ही।

गौरी बाबूने कहा,—अच्छा यह तो बतलाया ही नहीं कि उन पचास हजार रुपयोंसे कौन-कौनसे काम किये जायँगे और उनसे किसानोंको क्या लाभ होगा।

काशी बाबूने कहा,—उन रुपयोंसे उद्योग-धन्धेकी उन्नति की जायगी। किन्तु आजकलकी तरह कोरे उपदेशोंमें एक पैसा भी खर्च नहीं किया जायगा; बल्कि यह किया जायगा कि तरह-तरहके काम खोले जायँगे। जैसे साबुन बनाना, स्याही बनाना, पैंसिल बनाना आदि। ऐसे कामोंसे कई लाभ होंगे। एक तो यह कि कम लागतमें चीजें तैयार होनेके कारण देश-वासियोंको सस्ते दाममें सब चीजें मिलेंगी, देशका पैसा देशमें ही रह जायगा और दूसरे यह कि किसानोंको कभी बेकार नहीं रहना पड़ेगा। वे खेती-बारी भी करते जायँगे, साथ ही फालतू समयमें कुछ पैसे भी कमा लिया करेंगे। ऐसा करनेसे किसानों-की आर्थिक स्थिति भी ठीक होती जायगी और वे कुछ ही दिनोंमें तरह-तरहकी चीजें बनाना भी सीख जायँगे। इसके अलावा एक दूकान खोली जायगी, जिसमें प्रायः सभी आवश्य-

कोय चीजें रहेंगी। किन्तु उसमें अधिक रुपया नहीं फँसाया जायगा। किसानोंको उस दूकानसे केवल वे ही चीजें तत्क्षण मिल सकेंगी, जो प्रतिदिन काममें आनेवाली हैं; जैसे नमक, तेल, घी, मसाला आदि। ऐसी चीजें भी फौरन दी जायँगी जिनकी उन्हें उसी समय आवश्यकता रहेगी; जैसे अचानक किसी लड़कीकी बिदाईके समय कपड़ा वर्त्तन आदि। साल-भरमें एक या दो बार अथवा आवश्यकता पड़नेपर इससे भी अधिक बार समूचे गाँवके लोगोंसे पूछकर सब चीजोंकी लिस्ट बना ली जाया करेगी और वे चीजें थोक मँगाकर उन्हें दी जाया करेंगी। पहनने-ओढ़नेके कपड़े, घर-खर्चके वर्त्तन व्याहादि-की सामग्री आदि चीजें इसी प्रकार मँगाकर दी जायँगी। ऐसा करनेसे किसानोंको सस्ते दाममें सब चीजें मिलेंगी, नफा भी उनके घरमें रहेगा; और दूकानको यह लाभ होगा कि उसे बिना रुपया फँसाये लाभ हो जाया करेगा। इसी तरहके और भी बहुतसे ऐसे काम किये जायँगे, जिनसे किसानोंकी दशा बहुत जल्द सुधर जायगी। आफिसका प्रायः सब काम लिखने-पढ़ने तथा और जो कुछ वे कर सकेंगे, उन्हींसे लिये जायँगे,—ताकि उनका एक पैसा बाहरी आदमी न ले सके। हर तरहसे बचत-की ओर ध्यान रखा जायगा।

यदि कभी किसी किसानको अचानक रुपयेकी जरूरत पड़ जायगी तो संस्था कर्जके तौरपर दिया करेगी। जो आदमी निश्चित समयके भीतर रुपया वापस न करेगा, उसका उतना

हिस्सा कम कर दिया जायगा और वह उतने ही रुपयेपर नफा पा सकेगा, जितने उसके जमा होंगे। किन्तु यह काम तब प्रारम्भ होगा, जब संस्थाके पास रुपये काफी तादादमें हो जायँगे। दस वर्षतक संस्था रुपया बढ़ानेमें लगी रहेगी, बाद प्रतिवर्ष नफेके रुपये किसानोंमें बाँट दिया करेगी। किन्तु पहले दस वर्षोंमें भी तिमाही हिसाबकी जाँच हुआ करेगी।

ज्ञानदत्तने पूछा,—अच्छा, यह तो आर्थिक स्थिति सुधारनेका काम हुआ ; अब यह बतलाइये कि उनमें शिक्षा-प्रचार किस तरहसे करनेका विचार किया है ?

काशी बाबूने कहा,—संस्थाकी एक लाइब्रेरी होगी। उसमें समाचार-पत्र तथा पुस्तकोंका प्रबन्ध रहेगा। हफ्तेमें एक दिन सुन्दर व्याख्यानोंका प्रबन्ध किया जायगा। राज-नीति, धर्म-नीति, कृषि-उन्नति, वाणिज्य-व्यवसाय, विदेशियोंके कला-कौशल आदि विषयोंको स्पष्ट रीतिसे समझाया जायगा। और भी बातें जो सोची जायँगी, की जायँगी।

गौरी बाबूने कहा,—इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकारके कार्यसे देशकी अच्छी उन्नति हो सकती है। यदि एक गाँवमें यह काम सुचारु रूपसे चल निकला तो भारतके कोने-कोनेमें बिना किसीके प्रचार किये यह काम फैल जायगा। किन्तु है बड़ा कठिन काम। परमात्मा आपको सफल करें। देखिये काशी बाबू, जल्दीबाजी न करियेगा। पहले खूब सोच समझ लीजियेगा तब कार्यारम्भ करियेगा। इसमें आप

ज्ञानदत्तजीसे भी सहायता ले सकते हैं।

काशी बाबूने कहा,—और मैं कहता किसलिए हूँ। असल-में ऐसे ही लोगोंकी तो इस काममें आवश्यकता है।

ज्ञानदत्तने कहा,—मेरे योग्य जो कुछ कार्य होगा, मैं सदा करनेके लिए तैयार हूँ।

गांगुली बाबू चुप थे। जुहारमलने पूछा,—आप कुछ नहीं बोल रहे हैं।

गांगुली बाबूने कहा,—आम एइसा मापिक काम नेई कोरने साकता। आम तो जो कुत्ता हाय वोई कोरेगा। ईसा मापिक देशका उद्धार कोब्बी होने नेई सोकेगा, ये बात आम बोलता हाय।

सबलोग हँस पड़े। वास्तवमें गांगुली बाबू अनार्किष्ट पार्टी-के थे, उन्हें ऐसे कामोंमें मजा नहीं आता था। वज्रधरने पूछा,—अच्छा, क्यों काशी बाबू, स्त्रियोंके उद्धारके लिए भी आपने कुछ सोचा है या नहीं? मेरी समझसे शिक्षा-प्रचारके कार्यमें सर्व-प्रथम स्त्री-सुधारकी ही आवश्यकता है।

काशी बाबूने कहा,—पं० ज्ञानदत्तजीने जिस ढंगसे अपने गाँवमें कार्यारम्भ किया है, उसी ढंगसे मेरा भी करनेका विचार है। उससे अच्छा और सुविधा-जनक मार्ग इस समय और कोई नहीं है।

ज्ञानदत्त बातें तो करते जाते थे, किन्तु उनका मन उसी मुखके काल्पनिक चित्रमें लगा हुआ था। उन्होंने एक ठंढी

साँस ली। गौरी बाबूने इतना लक्ष्य कर लिया कि इनके दिलमें किसी चीज़की याद आयी है, उसीकी यह आह है। पूछा,—क्योंजी, क्या सोच रहे हो? लम्बी साँस लेनेका क्या कारण है?

ज्ञानदत्तने कहा,—योंही; कोई खास कारण नहीं है।

गौरी बाबूने काशी बाबूसे पूछा,—अच्छा, यह काम कबसे प्रारम्भ करियेगा?

काशी—सम्भवतः छः महीनेके भीतर ही शुरू कर दूँगा।

ज़ुहारमल—तब तो अभी बहुत दिनकी देर है।

गौरी—ठीक है, काम भी तो बड़ा गहन है न! अच्छी तरह समझ-बूझकर ही प्रारम्भ करना उत्तम है।

काशी बाबूने कहा,—जरा आप भी इस विषयमें सोचिये गौरी बाबू। जो कुछ त्रुटि हो, उसे बतलानेकी कृपा करें।

ज्ञानदत्तने कहा,—गौरी बाबूको विलायतकी चिट्ठी-पत्रीसे तो फ़ुरसत मिल ले। हजरतसे एक्सचेंजके ऊपर एक लेख माँगा, महीनों होगये, आप लिख ही रहे हैं।

गौरी बाबूने कहा,—क्या करूँ, काम इतना रहता है कि मरनेकी भी फ़ुरसत नहीं। यही बहुत समझिये कि घंटा-दो-घंटा आपलोगोंसे मिलने-भेंटनेके लिए समय मिल जाता है। फिर भी मैं सोचूँगा काशी बाबू।

इसके बाद थोड़ी देरतक टहलकर सबलोग लौट आये।

———*———

सोलहवाँ परिच्छेद

कई दिन बीत गये, वह मुख दिखायी न पड़ा। किन्तु ज्ञानदत्त एक मिनटके लिए भी उस मुखको भुला न सके। आफिसमें जाते थे, पत्रका सम्पादन करते थे, मित्रोंसे बातें करते थे, सब कुछ करते थे, पर उस मुखको सामने रखकर। चेष्टा करनेपर भी उन्हें वह मुख न भूला। उसे देखनेकी इच्छा हरवक्त बनी रहती थी।

दस बज चुके थे। भोजनादिसे निवृत्त होकर ज्ञानदत्त आफिस जानेके लिए तैयार खड़े थे। नौकर पान लगा रहा था, इसलिए उसकी इन्तिजारीमें वह बरामदेमें आकर टहलने लगे। सड़कके उस फुटपर सामनेके मकानकी ओर ताक रहे थे। दो तल्लेपर उनकी दृष्टि रुक गयी। देखा, एक युवती पर्देकी आड़में खड़ी होकर इन्हींकी ओर ताक रही है। किन्तु इनकी दृष्टि उसपर पड़ते ही वह छिप गयी। ज्ञानदत्त अचम्भेमें आ गये। सोचने लगे,—सम्भवतः यही युवती उस दिन शीशेमें दिखलायी पड़ी थी। सम्भवतः नहीं, अवश्यमेव यही थी।

ज्ञानदत्त कमरेमें चले आये। देखा, शीशेमें फूलदार कीमती कपड़ेके पर्दे दिख रहे थे। इतनेमें वह मुख फिर झाँकता हुआ शीशेमें दृष्टिगत हुआ। ज्ञानदत्तने पीछे फिरकर देखा। वह

युवती फिर छिप गयी। अपनी गलतीपर ज्ञानदत्त मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगे। यदि वह पीछे फिरकर न देखे होते तो हाथमें आयी हुई वस्तु कभी भी गायब न हो जाती। वह मुख तो शीशेमें स्पष्ट दीखता था, ज्ञानदत्त अच्छी तरहसे अपनी तृप्ति कर सकते थे। पर उतनेसे सन्तुष्ट न होकर उनसे पीछे देखे बिना नहीं रहा गया। यह क्या साधारण भूल है? जिस वस्तु-को इतने यत्नसे और कई दिनोंकी आशाके बाद वह पा सके थे, उसे अपनी गलतीसे खो बैठे।

यदि आफिस जानेका समय न होता तो वह दिनभर बैठ-कर उस मुखका दर्शन मिलनेके लिए प्रार्थना करते; किन्तु खेद है कि वह पन्द्रह-बीस मिनटसे अधिक न रुक सके और परा-धीनताके दुःखका कटु अनुभव करते हुए आफिस चले गये।

और दिनोंकी अपेक्षा आज ज्ञानदत्त आफिससे जल्द चले आये। कहीं घूमने-फिरने भी नहीं गये। कभी बरामदेमें और कभी कमरेमें टहलकर समय बिताते रहे। इसी उलझनमें पड़े रहनेके कारण वह भोजन भी नहीं बना सके। किन्तु वह निष्ठुर मुख दिखलायी न पड़ा। बेचारे मारे संकोचके टकटकी लगा-कर कुछ देरतक उस मकानकी ओर देख भी नहीं सकते थे। डरते थे कि कहीं किसीकी निगाहें मेरी आँखोंको गिरिफ्तार न कर लें। इसीसे वह सामनेके मकानपर दृष्टि डालते ही उसे समेट लेते थे। इससे पहले बरामदेमें बैठकर ज्ञानदत्त कभी-कभी घंटों उस मकानकी शोभा और बनावटको बड़े गौरसे देखा

करते थे, किन्तु अब उधर एक सेकेंडसे अधिक ताकना उनके लिए असम्भव होगया।

सामनेका मकान राजा मूर्तिनारायण सिंह के० सी० आई० ई० का था। राजा साहिब संयुक्त प्रान्तके रहनेवाले क्षत्रिय हैं। इधर लगभग सौ वर्षसे वह कलकत्तामें ही रहते हैं, इसलिए कलकत्ता-निवासी ही कहे जा सकते हैं। गदरके समय राजा साहिबके पितामह आये थे। तबसे उनके वंशज यहीं रहने लगे। अब तो राजा साहिबके घरका व्याहादि कार्य भी यहींसे होता है,—देशसे कोई नाता नहीं रह गया है। जिस समयका प्रसंग छिड़ा है, उस समय राजा साहिब, उनकी धर्मपत्नी, दो लड़के तथा एक लड़की कुल पाँच प्राणी उनके घरमें थे। दास-दासियोंकी संख्या न थी। यह प्रकांड-भवन उनके हाथका बनवाया हुआ था। कलकत्ता शहरमें इसकी शानीका दूसरा मकान खोजनेसे भी मिलना कठिन है। सम्पत्तिका कोई पारावार नहीं। दोनों लड़के पढ़ते थे और ज्येष्ठा पुत्री राजकुमारी जिसकी अवस्था उक्त घटनाके समय सत्रह वर्षकी थी, मैट्रिक पास करके घरपर ही संस्कृतका अध्ययन करती करती थी। उसके पढ़ने-लिखनेका कमरा दोतल्लेपर सड़ककी ओर था। कमरेकी सजावट सराहनीय थी।

उस दिन राजो अपने कमरेमें खड़ी थी। अचानक उसकी नजर ज्ञानदत्तपर पड़ी। न जाने क्यों, ज्ञानदत्तकी सूरतने उसके हृदय-मन्दिरमें अड्डा जमा लिया। वह अधिक देरतक

ज्ञानदत्तको देख भी न सकी थी कि पीछेसे किसी कामके लिए नौकरानीने पुकारा। राजो पीछे फिरकर उससे बातें करने लगी। उस समय दर्वाजेका पर्दा उठा हुआ था। राजो विशाल खम्भेकी आड़में थी। दर्वाजेके ठीक सामने एक बहुत बड़ा सुनहले फ्रेमका दर्पण टँगा हुआ था। जिस समय वह दाईसे बातें कर रही थी, उस समय हठात् किसी बातपर वह जरा फिरकर मुसकरा उठी थी। उसकी छाया शीशेपर पड़ रही थी, अतः पर्दा उठा रहनेके कारण शीशेकी वह छाया ज्ञानदत्त-के कमरेमें टँगे हुए शीशेमें जा पड़ी। यही कारण है कि इधर-उधर बहुत देरतक निहारनेपर भी ज्ञानदत्त उसे नहीं देख सके थे और न यही समझ सके थे कि यह छाया कहाँसे आकर इस प्रकार पड़ रही है। क्योंकि राजो खम्भेकी आड़में थी।

बस, यही दोनोंके एक दूसरेकी ओर आकर्षित होनेका प्रथम दिन था। इसके बाद अवसर पाकर राजो पर्देकी आड़से और कभी-कभी पर्देको हटाकर ज्ञानदत्तको देख-देखकर अपनी तृषित आँखोंकी दर्शन-पिपासा बुझाने लगी। जो राजो पहले कभी पर्देके पास खड़ीतक नहीं होती थी, जो इस तरहसे खड़ी होनेमें अपने पिताके गौरवका नाश समझती थी, वही अब यहाँ खड़ी रहनेके लिए अवसर ढूँढ़ती फिरने लगी। यद्यपि वह सबकुछ समझती थी, तथापि ज्ञानदत्तको देखे बिना उसे चैन ही न पड़ती।

ज्ञानदत्त तो उसे बहुत कम देख पाते थे, पर वह दिनभरमें

कई बार ज्ञानदत्तको अच्छी तरह देख लिया करती थी। धीरे-धीरे दोनों ओरकी दर्शन-तृष्णाकी यौवनावस्था आ गयी। दोनों एक दूसरेको देखनेके लिए लालायित रहने लगे। पहले तो दोनों ही एक दूसरेसे डरते थे कि कहीं यह ताकना बेमेल न हो। किन्तु कुछ ही दिनोंमें दोनोंको एक दूसरेकी भाव-अनुकूलता भलीभाँति मालूम होगयी। फिर भी दोनोंमें संकोचकी मात्रा इतनी अधिक थी कि निगाहें निगोड़ी जुटती ही न थीं। कभी ज्ञानदत्त उधर देखते रहते और उसकी नज़र उनपर आ पड़ती तो वह तुरन्त ही सहमकर दूसरी ओर ताकने लगते और कभी राजो इनकी ओर ताकती रहती और हठात् इनकी दृष्टि उधर जा पड़ती तो उसकी भी यही दशा होती थी,—बल्कि इनसे भी बढ़कर, क्योंकि यह तो मुख दिखलाते रहते थे, केवल आँखें ही फेर लेते थे, किन्तु वह अपना मुख भी छिपा लेती थी। राजो सोचती थी,—"अब उनकी ओर कभी न ताकूँगी, क्योंकि उन्होंने तो देख लिया है" किन्तु थोड़ी ही देरमें उसकी इच्छा फिर उमड़ पड़ती, उसे अपनी चौरावृत्ति-कुशलतापर यह सोचकर विश्वास हो जाता कि, "अबकी बार ऐसे यत्नसे देखूँगी कि वह किसी प्रकार भी मुझे न देख सकेंगे," अतः फिर वह उसी काममें प्रवृत्त होती और कभी तो अपने कौशलसे बच जाती, किन्तु बहुधा पकड़ी जाती थी। ज्ञानदत्तकी भी ठीक ऐसी ही दशा थी।

प्यारी राजो! तुम्हारा यह समझना तुम्हारी कमसमझी-

का द्योतक है कि 'मेरी आँखें बुद्धिमानीसे अपना काम कर लेंगी और पकड़ी न जायँगी।' याद रक्खो, दुश्मनकी आँखें सदा तुम्हारी आँखोंको पकड़नेके लिए तैयार रहती हैं। तुम चाहे जो समझो, पर उन आँखोंका इतना कड़ा पहरा है कि तुम्हारी आँखें कभी भी निकलकर भाग नहीं सकतीं। तुम्हारा धोखा करनेवाला साधारण मनुष्य नहीं! जब तुम पर्देकी आड़में खड़ी होकर अपने मुख-कमलके परिमलको समेटे रहती और उस युवकके छबि-मकरन्दका पान करती रहती हो, तब वह युवक पर्देके भीतर तुम्हें खड़ी समझकर अपने अतृप्त हृदय-की प्यास बुझाता रहता है। यह न समझो कि वह बिना आ-दानके ही तुम्हें कुछ प्रदान कर रहा है, या उसकी असाव-धानीसे तुम कोई लाभ उठा रही हो।

इस आकर्षणमें सब तरहसे दोनों ओरकी समानता थी। उधर यदि राजोके हृदयमें किसी प्रकारकी दुर्वासना नहीं है, तो इधर ज्ञानदत्तका हृदय भी स्फटिक मणिके समान बिलकुल स्वच्छ है। राजो कोटयाधीशकी राजकन्या है और राजसी सुख भोगनेवाली है तथा भविष्यमें राज-रानी होनेवाली है, तो इधर ज्ञानदत्त भी देश-सम्मानित पत्रके सम्पादक हैं, साहि-त्यानन्दमें राज्य-सुखको तुच्छ समझनेवाले हैं तथा भविष्यमें अमर होनेवाले हैं। राजो अनुपम सुन्दरी है तो ज्ञानदत्त भी पुरुष-श्रेणीमें असाधारण सौन्दर्य धारण करनेवाले हैं। राजो सप्तदश-वर्षीया गौर-वदना है, ज्ञानदत्त चतुर्विंशद्वर्षीय युवक

हैं। राजो सम्पत्ति और ब्रिटिश-सम्मान गर्विता कन्या है, ज्ञान-दत्त विद्या-गर्वित हैं। सब कुछ समान है, केवल एक बात राजोमें बढ़कर है, सो भी सार्थक है। यदि राजोमें एक भी विशेषता न होती, तो नारी-महिमाका मूल्य ही क्या रह जाता ? सत्य है! नारी अनन्तकी महिमा है, विश्वकी गरिमा और सृष्टिकी निपुणता है! रमणी विलासकी विलास, साधक-की साधना, योगीका ध्यान और तपस्याकी आत्मा है। नारी, माधुर्यमें अपराजिता, स्नेहमें मन्दाकिनी, पवित्रतामें गोमुखी, दया-दाक्षिण्यमें भागीरथी और प्रेममें फल्गु है। नारी ही सहि-ष्णुता और पवित्रतामें सीता, पातिव्रतमें सावित्री तेजस्विता-में द्रौपदी और उच्चतामें—घोषा-सूर्या-यमी-गोध्रा-श्रद्धा-माद्री-वपुता-धारिणी-गार्गी-मैत्रेयी है। नारी गृह-कार्यमें गृहिणी, सन्तान-पालनमें जननी है। परमात्माने नारीकी उच्चता और महत्तापर ही संसारको स्थित रखा है। भला इस जाति-धर्म या उच्चताको राजोके समान सर्व-गुण-सम्पन्ना भाग्यशालिनी कन्या कैसे छोड़ सकती है ? अच्छा तो वह बात कौनसी है, जो राजोमें नारी-महिमाकी वस्तु है और ज्ञानदत्तसे अधिक है ? यह बात आगे चलकर पाठकोंको स्वयं ही मालूम हो जायगी। जो लोग उपन्यास समाप्त करनेपर भी वह बात न जान सकें, उनका उपन्यास पढ़ना ही व्यर्थ है, उन्हें बतलानेसे कोई लाभ भी नहीं है।

दोनोंके इस आकर्षणका उद्देश्य क्या है, यह समझनेकी

न तो दोमेंसे किसीने चेष्टा ही की और न उसका समझना साध्य था! हाँ, यह अवश्य है कि दोनोंके हृदयोंमें किसी प्रकारका स्वार्थ नहीं है। और न किसी प्रकारकी बुरी आकांक्षा ही है। यदि कुछ आकांक्षा है भी तो केवल निष्कलंक दृष्टिसे प्रति-क्षण एकान्त दर्शन करते रहनेकी। किन्तु दर्शन-विनिमय किसीको स्वीकार नहीं। ज्ञानदत्त स्वयं उसका दर्शन करना चाहते हैं, पर साथ ही यह भी चाहते हैं कि दर्शन करना वह न देख सके। उधर राजो होड़ लगाये बैठी है; ज्ञानदत्तकी हरकत देखकर ही मानो वह और आगे बढ़ गयी है। इसीसे स्वयं तो देखना चाहती है, किन्तु अपनेको बिलकुल ही देखने देना नहीं चाहती। वह तो यह चाहती है कि तुम मुझे देखो ही मत, केवल मैं तुम्हें देखा करूँगी।

ठठेरे-ठठेरेमें अदला-बदला कैसा? होड़में शक्ति रहते झुकाव कैसा? जब वह ऐसा चाहती है तो फिर भला ज्ञान-दत्त काहेको पिछड़ने लगे? उन्होंने 'देखो ही मत' यह शर्त्त उड़ा दी। वह यह चाहते हैं कि,—तुम मुझे देखो या न देखो, मैं तुम्हें अवश्य देखूँगा। हाँ, इतनी दया करो कि मेरे देखनेको देखनेकी चेष्टा न करो, नहीं तो मुझे दुःख होगा।

ज्ञानदत्त और राजोके बीच किसी तरहका संकेत नहीं होता था। दोनों हृदयोंमें केवल दर्शनके सिवा और किसी तरहकी आकांक्षा भी नहीं थी। यदि होती तो उसकी पूर्तिके लिए तीसरे कानमें बात चली जाती और फिर बहुतसे लोगों-

को यह रहस्य मालूम हो जाता। किसीको इस बातका पता न लगना भी दोनोंके हृदयकी शुद्धताका पुष्ट प्रमाण है। वास्तवमें प्रेम स्वर्गीय पदार्थ है। प्रेम, निस्वार्थ है, आकांक्षा-हीन है, सीमा-रहित है। किसी कारण-विशेषसे, या किसी वस्तुके लोभसे उत्पन्न होनेवाला प्रेम, शुद्ध प्रेम नहीं। मलिन हृदयमें तो यह स्वर्गीय प्रेम पैर ही नहीं रखता। उसके निवास-के लिए तो बिलकुल एकान्त, शान्त और पवित्र स्थान चाहिए। राजो और ज्ञानदत्तका प्रेम वही अलभ्य प्रेम है। दृष्टिपात होते ही दोनोंने एक दूसरेको हृदय-स्थित किया। दोनोंके भीतर वह प्रेम प्रातःकालीन सूर्यके तापकी भाँति क्षण-प्रति-क्षण प्रचंड होता गया, अपवित्रता छूतक नहीं गयी।

परमात्माकी लीला अपार है। वह सबको एक-न-एक अवलम्ब देते हैं। घरसे आनेके बाद ज्ञानदत्त हरवक्त चिन्तित रहते थे। रमाके कमरेकी वही रातवाली बात सोचा करते थे। यदि वही दशा रहती तो ज्ञानदत्तकी दशा बड़ी ही शोचनीय हो जाती। किन्तु उन्हें राजोका आधार मिल गया। वृत्तिका रुख पलट गया। अब तो रमा उन्हें भूलसी गयी। नित्यकी भाँति आज भी ज्ञानदत्त बरामदेमें बैठे आनन्द लूट रहे थे, इतनेमें नौकरने एक लिफाफा लाकर दिया। उसे देखते ही उनका ध्यान भंग हुआ। लिफाफेपर लिखे हुए अक्षर उनके किसी परिचितके थे। उन्होंने अन्यमनष्क किन्तु उद्विग्न हृदयसे उसे खोलकर पढ़ना शुरू किया:—

प्राणाधार,

जानेके बाद एक बार भी इस अभागिनीको याद नहीं किया, यह क्यों ? यदि मुझसे कोई अपराध ही हुआ हो तो तुम्हीं बतलाओ कि तुम्हारे सिवा और किससे मैं क्षमा-प्राथिनी होऊँगी ? बिना अपराध बतलाये ही तुम्हारे न्यायी हाथोंसे यह दंड मिलना, मेरे लिए डूब मरनेकी बात है । तुम्हीं सोचो कि मैं कैसे बोध करूँ ? जी उचटनेपर समाचार-पत्रों और पुस्तकोंका सहारा लेनेका विचार करती हूँ, पर उस समय तो उद्विग्नता और भी बढ़ जाती है ।

कहते थे, सत्य सदा सत्य रहता है । पर यहाँ तो मैं उसके विपरीत ही देख रही हूँ । किन्तु इसकी मुझे विशेष चिन्ता नहीं है । क्योंकि मुझे तुम्हारी बातोंपर पूर्ण विश्वास है । बिन्दा-पुर आकर मैं दो पत्र तुम्हारे पास भेज चुकी हूँ, किन्तु उत्तर-से वंचित रही । भावजें आपसमें हँसती हैं, यह सहा नहीं जाता । यदि मुझे रुलानेमें ही तुम्हें कुछ आनन्द मिलता हो तो स्पष्ट सूचित करो मैं उसमें भी प्रसन्न हूँ ।

जी चाहता है कि यह पत्र कभी समाप्त ही न होने दूँ । फिर सोचती हूँ, तुम्हें पढ़नेमें कष्ट होगा । आजकल यहाँपर बाबूजी कोई नया काम करनेकी तैयारी कर रहे हैं । रामपुर-की भाँति यहाँ भी कथाकी योजना की जा रही है । बाबूजी कथा कहनेका भार मेरे सिर लादना चाहते हैं । पर मुझे तो लज्जा आती है । तुम्हारी क्या राय है ? समाचार-पत्रके इतने

बड़े पन्ने प्रतिदिन भरते हो, चार अक्षर मेरे लिए लिखनेकी दया न करोगे ? बस, और न लिखूँगी।

चरण-सेविका—

रमा

पत्र समाप्त करके थोड़ी देरतक कुछ सोचते रहे। बाद पत्रोत्तर देनेका विचार स्थिर करके उठे। कमरेमें जाकर बैठना ही चाहते थे कि गौरी बाबूका भेजा हुआ नौकर आ पहुँचा। उसने कहा,—बाबूजीने कहा है कि काशी बाबूके साथ आपको भी विदापुर चलना होगा। दस बजे आप दफ्तर-में रहियेगा, बाबू आपसे भेंट करके तब गुदामपर जायँगे।

'अच्छा' कहकर ज्ञानदत्तने घड़ीकी ओर देखा। साढ़े नौ बज चुके थे। पत्रोत्तर न दे सके और तुरन्त ही आफिस चले गये। वहाँ गौरी बाबू तथा काशी बाबू आकर बैठे हुए थे। बातचीत करते समय काशी बाबूने कहा,—विदापुरमें आपका एक व्याख्यान भी होगा।

ज्ञानदत्तने कहा,—खैर वह तो पीछे देखा जायगा, पहले यह देखना है कि यहाँका काम कैसे चलेगा। अभी सहायकों-के भरोसे हमने कभी पत्रको नहीं छोड़ा। डर लगता है कि कहीं अंटसंट न लिख मारें।

गौरी बाबूने कहा,—ऐसा ही होगा तो दो दिनके लिए अग्रलेख लिखकर छोड़ जाना, और एक-दो लेख वहाँसे भेज देना। बाकी समाचार ये लोग भर लेंगे।

ज्ञानदत्तने सहायक सम्पादकसे पूछा,—क्यों साहब ऐसा करनेसे ठीक होगा ?

सहायक—जी हाँ, कोई आपत्ति नहीं। आप जा सकते हैं।

इसके बाद गौरी बाबू और काशी बाबू उठकर चले गये। ज्ञानदत्त भी अपने काममें लग गये, रमाको पत्रोत्तर नहीं दिया जा सका।

—:*:—

कार्यमें सफलता होनेके कारण प्रभा फूली नहीं समाती थी। कुशल हुई कि ज्ञानदत्तके जानेके बाद ही रमा अपने पिताके घर चली गयी। यदि कुछ दिनोंतक वह और रह गयी होती तो जान पड़ता है कि प्रभा बोली बोलते-बोलते किसी दिन रमासे आत्महत्या कराके ही छोड़ती।

मादकता और मोहकताकी खान, ईर्ष्या-द्वेषकी साक्षात् मूर्ति मायाविनी प्रभा उस दिन जगदीशका झूठा बहाना करके कथामें नहीं गयी थी, यह पाठकोंको स्मरण होगा। रमासे खूब हँस-हँसकर बातें की थीं, इसे भी पाठकगण न भूले होंगे। बात यह है कि उसी दिन उसके समूचे कामोंकी कृत-

कार्यता थी। यदि वह कथामें चली जाती अथवा रमाको प्रसन्न न रखती तो सब काम चौपट हो जाता। बिदापुरके रहनेवाले दिवाकरको प्रभाने बुलाया था और वह आज ही आनेवाला था। यह दिवाकर रमाका दूरका भाई लगता था। अवस्था, रमासे साल-दो-साल अधिक थी। चेहरेसे आचरण-भ्रष्टता टपकी पड़ती थी। यह कभी-कभी रमाके यहाँ आया करता था, यद्यपि उसका आना रमाको अच्छा नहीं लगता था। प्रभा अपना काम साधनेके लिए दिवाकरसे बातचीत करके आत्मीयत्व सम्बन्धमें नथ गयी थी, और बातें करके उसके दिलका भाव जानकर बहुत कुछ गुप्त बातें भी करने लग गयी थी। दोनोंमें प्रेम-पूर्ण पत्र-व्यवहार भी होने लग गया था। प्रभाके कपट-व्यवहारको दिवाकर सच्चा स्नेह समझ एक शिकारका लोभ किये बैठा था, इसीसे वह बेदामका गुलाम भी होगया।

प्रभाने दिवाकरको पत्र लिखा था कि तुम यह पत्र देखते चले आओ। यहाँ रमा तुम्हारे लिए हरवक्त रोया करती है, पर लाजकी बात किससे कहे? बड़ी कठिनाईसे उसके दिलकी बात जानकर मैं यह पत्र लिख रही हूँ। कब आओगे, यह लिखकर इसी आदमीके हाथ भेज देना। मेरा यह पत्र फाड़कर फेंक देना और रमासे इसकी चर्चा मत करना।

छैलचिकनिया दिवाकर यह पत्र पाकर विह्वल हो उठा और पत्रका जवाब लिखकर भेज दिया। उस पत्रमें कथावाले

दिन ही दिवाकरने आनेको लिखा था, इसीसे झूठा बहाना करके कथामें प्रभा नहीं गयी।

दिवाकर निश्चित समयपर आ गया। उस समय दरवाजेपर कोई नहीं था। प्रभा खिड़कीपर बैठी राह देख रही थी। दिवाकरको देखते ही बोली,—सीधे भीतर चले आओ।

आवाज सुनकर दिवाकर चकपका उठा, किन्तु ऊपर दृष्टि पड़ते ही प्रमुदित होकर भीतर चला गया। प्रभाने बड़े आदर-भावसे उसे जलपान कराया और कहा,—बड़े मौकेसे आये।

दिवाकरने पूछा,—कैसा ?

प्रभा—वह तो अपने आप ही मालूम हो जायगा। राम राम, बेचारी रोते-रोते आधी होगयी।

दिवाकरने उत्सुक होकर पूछा,—उसने तुमसे क्या कहा जीजी ? मुझे तो इसकी जरा भी आशा न थी।

नराधम दिवाकरको 'जीजी' कहनेमें तनिक भी हया न आयी। खैर, यह कहनेकी जरूरत नहीं कि प्रभाके साथ उसका कैसा सम्बन्ध था। यहाँ तो यह देखना है कि रमाके प्रति उसका क्या भाव था। वह बहुत दिनोंसे इस बातका अभिलाषी था, पर रमाकी सच्चरित्रता और मित-व्यवहारसे कभी अपना आन्तरिक भाव प्रकट करनेका साहस नहीं कर सका था। यदि प्रभा इतनी नीचता न करती तो सम्भवतः आमरण-पर्यन्त वह रमाके स्वाभाविक आतंकके नीचे दबा पड़ा रहता

और यहाँतक नौबत ही न आती। प्रभाने हँसकर कहा,—सच बतलाओ दिवाकर, क्या तुम यह नहीं जानते थे कि वह तुम्हारे लिए इतना दुखी रहा करती है ?

दिवाकरने कहा,—जानता क्यों नहीं था।

अब तो प्रभाको और भी विश्वास होगया। बोली,—अभी सबलोग कथामें गये हैं, वह भी वहीं गयी है। तुम ऊपर चलो वहीं एक कोठरीमें रहो। अवसर आनेपर मैं भेंट करा दूँगी।

दिवाकरका कलेजा काँप उठा। प्रभा कोई छल तो नहीं कर रही है? जब उसने बुलाया ही है तो इतने छिपावकी क्या जरूरत? बाहर बैठनेमें क्या हर्ज है? कहा,—क्या ऊपर छिपकर बैठना होगा?

प्रभा ताड़ गयी। बुद्धिमानीसे बोली,—डरो मत दिवाकर, मैं तुम्हारी दुश्मन नहीं हूँ। इतने दिन आते होगये, तुम अभीतक मुझे पहचान नहीं सके? क्या करूँ, तुम्हारे स्नेहके कारण मैं यह सब कर रही हूँ। मैं तो तुम्हें अपना परम स्नेही समझती हूँ। रमा बेचारी सासको डरती है, इसीसे ऐसा करना पड़ रहा है। चलो ऊपर। मैं तैयार हूँ, तुम्हें किसका भय है? आओ।

यह कहकर प्रभा आगे-आगे चल पड़ी। दिवाकर डरता हुआ उसके पीछे हो लिया, ऊपर एक कोठरीमें बैठाकर उसका दरवाजा बाहरसे बन्द करके प्रभा नीचे चली आयी।

दिवाकर बेतरह फँस गया। जिस प्रकार इच्छाके न रहते

हुए भी किसी समय कोई काम मनुष्य हठात् कर बैठता है और पीछे पछताता है, ठीक वही दशा दिवाकरकी हुई। यद्यपि वह इस तरह छिपकर बैठना नहीं चाहता था, तथापि जाकर बैठ गया। अब निकल भागनेका भी कोई मार्ग नहीं।

कथासे वापस आनेपर सोनेके समय प्रभाने रमाको अपने कमरेमें सुला लिया। रमाको इसमें कोई आपत्ति नहीं हुई। यदि ज्ञानदत्त होते तो वह ऐसा कदापि न करती। किन्तु वह इलाकेपर चले गये थे। वह तो इसपर विश्वास किये बैठो थी।

इधर ज्ञानदत्तको एकान्तमें बुलाकर प्रभाने पहले ही पटा लिया था। कहा,—एक बात कहना चाहती हूँ, मानोगे बबुआ?

ज्ञानदत्तने कहा,—हाँ हाँ, मानूँगा क्यों नहीं? कहो।

प्रभाने मुँह लटकाकर उसी भावसे कहा,—क्या कहूँ, कहनेमें लज्जा मालूम होती है। पर बिना कहे भी भला नहीं देखती हूँ। जब सब काम ही चौपट हो जायगा, तब लज्जा करके ही क्या होगा।

ज्ञानदत्तने स्वाभाविक भावसे पूछा,—ऐसी कौनसी बात है, सुनूँ तो ज़रा।

प्रभाने एक नकली पत्र दिया और कहा,—इसे पढ़ लो तो सारा हाल बतलाऊँ। कभी-कभी बनावटमें भो असलीयतका भ्रम हो जाता है।

ज्ञानदत्त पत्र लेकर पढ़ने लगे, और प्रभा नीचा सिर करके उदास खड़ी रही। यह पत्र रमाका लिखा थाः—

प्यारे दिवाकर,

पत्र देखते आओ, तुम्हारे देखे बिना मेरा हृदय न जानें कैसा हो रहा है। मेरी कसम है, आओ अवश्य। जवाब दो कि कब आओगे।

दर्शनाभिलाषिनी—

रमा

ज्ञानदत्तने पत्र पढ़कर कहा,—यह पत्र तुम्हें कैसे मिला ?

प्रभाने यह नहीं सोचा था कि पत्र दिखलानेपर कुछ प्रश्नों-के उत्तर भी देने पड़ेंगे; नहीं तो वह पहलेहीसे तैयार रहती। पहले तो वह हिचकिचा गयी, किन्तु तुरन्त ही सँभलकर बोली,—इसे दिवाकरकी स्त्रीने भेजा है। जान पड़ता है कि दिवाकरने अपने कोट या कमीजके जेबमें रख दिया था, किसी तरह उसके हाथ लग गया।

वह पत्र रमाके नामपर ही लिखा था; किन्तु रमाके हाथका लिखा हुआ नहीं है, यह बात अक्षर देखकर ज्ञानदत्त समझ गये। अतः स्वाभाविक रीतिसे बोले,—अच्छी बात है, मैं इस-पर विचार करूँगा और देखूँगा कि क्या बात है।

यह कहकर ज्ञानदत्त पत्रको जेबमें रखनेका उपक्रम करने लगे। इतनेमें प्रभाने एक दूसरा पत्र देते हुए कहा,—ठहरो, जरा इसे भी पढ़ लो। यह बात इस तरहसे उपेक्षा करनेके योग्य नहीं है।

ज्ञानदत्त ठिठक गये। दूसरे पत्रको हाथमें लेकर खोलते हुए बोले,—यह पत्र किसका है।

प्रभाने कहा,—पढ़ लो, आप ही मालूम हो जायगा।

ज्ञानदत्तने पढ़ लिया। यह पत्र दिवाकरका था जो कि उसने ऊपरके पत्रके उत्तरमें लिखा था और जिसमें उसने आनेके लिए भी लिखा था। ज्ञानदत्तने पूछा,—और यह पत्र तुम्हें कैसे मिला?

प्रभाने कहा,—यह पत्र उसकी चारपाईपर पड़ा हुआ था।

ज्ञानदत्तको पूरा विश्वास नहीं हुआ। पढ़ी-लिखी रमा ऐसे गुप्त पत्रको इतनी लापरवाहीसे रक्खेगी, यह बिलकुल असम्भव है। कहा,—अच्छा मैं पता लगाऊँगा।

प्रभाने कहा,—पता किस बातका लगाओगे?

ज्ञान०—इसी बातका।

प्रभा—इसका पता आज ही लग जायगा।

ज्ञानदत्तने चकित होकर पूछा,—सो कैसे?

प्रभाने कहा,—मुझे पता लगा है कि दिवाकर आज ही रातको आनेवाला है। इसलिए आज तुम इलाकेपर जानेका बहाना करके द्वारसे कहीं हट जाओ।

ज्ञानदत्तने कहा,—हटनेकी क्या जरूरत है! आखिरकार भेंट करनेके लिए उसने तो कुछ सोचा ही होगा। मैं रहकर ही पकड़ूँ तो क्या बेजा है।

प्रभाने कहा,—मेरी बात मानो, तुम्हारे हटनेका बहाना करनेमें ही अच्छा है। नहीं तो सब काम गड़बड़ हो जायगा।

ज्ञानदत्त कुछ सोचकर बोले,—अच्छा, ऐसा ही करूँगा।

यह कहकर वह बाहर चले आये। सोचने लगे,—भाभीको इस बातका कैसे पता लगा कि, दिवाकर आज ही आवेगा ? उसके पत्रमें आनेके लिए तो कोई निश्चित समय नहीं लिखा था। अवश्य ही इसमें कुछ-न-कुछ भाभीका भी हाथ है।

इधर प्रभाने रमाको अपने कमरेमें सुलाकर कथाका हाल पूछना प्रारम्भ किया। थोड़ी देरतक तो सुनती रही, बाद नींद-का बहाना करके बोली,—अच्छा अब कल सुनूँगी, आज नींद आ रही है। तुम भी थकी हो, सो जाओ।

नयी अवस्थामें और बातोंके अतिरिक्त नींद भी अधिक आती है। रमा कुछ ही देरमें सो गयी। प्रभाने कई तरहसे अन्दाज़ा लगाकर जब यह निश्चयकर लिया कि अब रमा सो गयी है, तब उठी और रमाके कमरेमें जाकर पहले बत्ती जलाया, बाद दिवाकरको सोया हुआ देखा। झटपट वहाँसे लौट आयी।

पाठकगण चकित होंगे कि दिवाकर तो ऊपर था, यहाँ कैसे आ गया। बात यह है कि जब रमा प्रभाके कमरेमें चली गयी, तभी प्रभा किसी बहानेसे जाकर दिवाकरको बुला लायी थी और सहेज आयी थी कि यदि रमा यहाँ आवे भी तो तुम छिप जाना और बिना उसके बोले पहले न बोलना। क्योंकि वह तो खुद ही बोलेगी, यदि न बोले तो समझ लेना कि अभी घरमें कोई जाग रहा है। मेरी बातोंका पूरा ध्यान रखना, नहीं तो तुमलोगोंके साथ मैं भी बदनाम हो जाऊँगी।

अधिक ढीठ होजानेपर मनुष्य उतना नहीं डरता, जितना नया आदमी डरता है। दिवाकर इस फनमें चड्ढा होगया था, इसलिए प्रभाके जाते ही वह मजेमें पलँगपर बैठ गया। थका तो था ही, थोड़ी देरतक प्रतीक्षा करता रहा, बाद गहरी नींद आ जानेके कारण सो गया। यदि कोई नया आदमी होता तो ऐसी अवस्थामें भला उसे नींद कैसे आती? किन्तु दिवाकर-को क्या! वह तो इतनी ही अवस्थामें न-जानें कितने घरोंको चौपट कर चुका है, अपमान सह चुका है। बदनाम मनुष्यकी बदनामी ही क्या होगी? काले रंगपर कोई कालिमा पोतकर ही क्या कर लेगा?

पश्चात् प्रभाने जाकर बाहरका दरवाजा पाँच बार खट-खटाया। ज्ञानदत्त उठ बैठे। क्योंकि उसने पहले ही कह दिया था कि मैं पाँच बार आवाज़ करूँगी, इसलिए ज्ञानदत्तको कोई सन्देह नहीं हुआ। भीतर आनेपर प्रभाने कहा,—जाकर देख लो, अब सब पता अपने-आप ही लग जायगा।

इसके बाद ज्ञानदत्तने जो कुछ देखा, उसका वर्णन पहले किया ही जा चुका है। प्रभाको आशा थी कि दिवाकरको सोया देखते ही ज्ञानदत्त उथल-पुथल मचा देंगे। किन्तु उसकी वह आशा सफल न हुई। ज्ञानदत्त इतने जल्द भरमें आनेवाले आदमी नहीं थे। उन्होंने तो जाते समय रमाके साथ जो थोड़ासा शुष्क बर्त्ताव किया, वही आश्चर्य्यकी बात है। क्या रमा-जैसी साध्वी स्त्रीपर ज्ञानदत्त-सरीखे समझदार युवकका

इतने जल्द विश्वास करना और उससे उसकी चर्चा भी न करना योग्य था ? किन्तु इसमें ज्ञानदत्तका कोई दोष नहीं। इतने पुष्ट प्रमाणोंको पाकर भी वह जानेकी रातको रमाके कमरेमें रहे, यही बहुत है। यदि उन प्रमाणोंको ज्ञानदत्तने पुष्ट समझा और फिर भी कुछ नहीं बोले तो यह उनकी अकर्मण्यता है। परन्तु ज्ञानदत्त अकर्मण्य नहीं ! जान पड़ता है कि उन्होंने उन प्रमाणोंपर विश्वास ही नहीं किया। अच्छा, जब विश्वास नहीं किया, तब रमापर रुष्ट क्यों हुए ? अभीतक कोई पत्र उसे क्यों नहीं भेजा ? इससे तो यही साबित होता है कि उन्हें कुछ तो विश्वास हुआ और कुछ अविश्वास। इसीसे उन्होंने दोनों तरहका काम किया।

भले आदमी, यह तुमने क्या किया ? रमासे चर्चातक नहीं की ! उससे कहते ही तो सारा भ्रम दूर हो जाता। वह तो तुमसे कोई भी भली-बुरी बात नहीं छिपाती, फिर तुम उस देवीसे इतना कपट क्यों रखते हो ? वह तो पहले ही कहती थी कि कभी-कभी झूठी बातें भी सच प्रतीत हो जाती हैं। किन्तु तुमने औरका और ही कहकर उसे समझा दिया। उस गरीबिनने तुम्हारी उस बातको भी अवहेलनाकी दृष्टिसे नहीं देखा।

कभी-कभी बड़े-बड़े मेधावी और व्यवहार-प्रवीण लोगोंको भी चक्करमें आ जाना पड़ता है, यह बात ज्ञानदत्तका व्यवहार देखकर दृढ़ता-पूर्वक कही जा सकती है। यदि ऐसा न होता

तो क्या प्रभाके जाली पत्र इतने काम कर जाते?

ज्ञानदत्तके चले जानेपर ही दिवाकरकी नींद खुली। बत्ती जलती देखकर उसे हर्ष और विषाद हुआ। वह आयी और बत्ती जलाकर चली गयी, यह सोचकर हर्ष हुआ। मैं सो गया था नहीं तो उससे बातें करता, यह सोचकर विषाद हुआ। इसी उलझनमें पड़ा रहनेके कारण फिर उसे नींद नहीं आयी।

प्रभाका काम पूरा होगया। ज्ञानदत्तके दिलमें सन्देह उत्पन्न कर देना ही उसका मुख्य उद्देश्य था। वह दो बजे रातके करीब हाँफती हुई दिवाकरके पास आयी और घबड़ाकर बोली,—तुम जल्दी मेरे साथ आओ, ज्ञानू बबुआ आ रहे हैं।

इतना सुनते ही दिवाकर गिरते-पड़ते उठकर भाग चला। प्रभाने मकानके चोर दरवाजेसे उसे बाहर कर दिया और कहा,—अब तुम अपने घर चले जाओ; और देखो इसकी चर्चा किसीसे न करना, नहीं तो रमाकी बदनामी होगी। जाओ, जल्दीसे निकल जाओ, नहीं तो कोई आ जायगा।

यह कहकर प्रभाने दरवाजा बन्द कर लिया। 'जान बची लाखों पाया' यही सोचता हुआ दिवाकर बिना कुछ कहे-सुने दस छलाँगमें रामपुर गाँवसे बाहर होगया।

अब तो प्रभाकी बन आयी। ज्ञानदत्तके उधर जाते ही उसने रमाको वाग्-बाणोंसे बेधना शुरू कर दिया। पहले तो रमा कुछ समझ ही न सकी, किन्तु दो-चार दिनके बाद बातों-

ही-बातोंमें वह बहुत कुछ मर्म जान गयी। घरके और लोग भी उससे खिंचसे गये। धर्मदत्तने तो एक दिन बात-ही-बातमें यहाँतक कह डाला कि ऐसी औरतके हाथका बनाया हुआ भोजन करना बेधर्म होना है। इन्हीं बातोंसे रमा रातदिन चिन्तित रहने लगी। ज्ञानदत्तने भी कोई पत्र नहीं भेजा। स्वामीके आदेशानुसार वह ग्रंथावलोकनसे दिल बहलानेकी चेष्टा किया करती थी, पर अब तो पढ़नेमें उसका दिल ही न लगता था।

तबतक रमा अपने पिताके घर चली गयी। जाते समय उसने यह सोचा कि चलो कुछ दिनके लिए जान तो बची, किन्तु प्रारब्धकी गतिको कौन मेट सकता है? वह यहाँ आने-पर भी सुखी न हुई। सोचने लगी, बल्कि इससे अच्छा तो वहीं था। स्वामीके पास कई पत्र भेजे, पर उनका एक भी पत्र न आया। इससे भावजें तरह-तरकी बातें कहने लगीं; अपढ़ आदमियोंकी ये ही आदतें तो बुरी मालूम होती हैं। रामजी करें यह दुःख किसीको न हो। क्वाँरी रहना अच्छा है, परन्तु ऐसे आदमीके साथ रहना अच्छा नहीं। यदि उनके दिलमें ज़रा भी प्रेम-भाव होता तो क्या वह पत्रका उत्तरतक न देते?

रमा इन बातोंको सुनकर यही सोचती थी कि, मैंने व्यर्थ ही उनके पास पत्र भेजा। यदि मेरी भूल न होती तो इनलोगों-को आज यह सब कहनेका अवसर न मिलता। किन्तु फिर

उससे न रहा गया,—सबकी चोरीसे एक पत्र लिख ही भेजा। उसकी इच्छा यह भी लिखनेकी थी कि, यदि तुम्हारे मनमें मेरे प्रति किसी तरहका सन्देह हो तो स्पष्ट लिखो और उचित समझो तो उस सन्देहकी निवृत्तिके लिए यथेष्ट जाँच करो। पश्चात् कुछ सोचकर उसने ऐसा नहीं लिखा।

बड़ी आशा थी कि इस पत्रका उत्तर अवश्य आवेगा। पूरा एक पखवारा बीत गया, ज्ञानदत्तका कोई पत्र नहीं आया। इधर रमापर एक संकट और आ पड़ा। दिवाकर ढिठाईके साथ उसके पीछे पड़ गया। कुछ दिनोंतक तो वह अवसर न मिलनेके कारण इशारेबाजीसे ही काम लेता रहा, किन्तु एक दिन उसका मुँह भी खुल गया।

रमा कई लड़कियोंके साथ एक पड़ोसीके घर गयी थी। दिवाकरकी उसपर नजर पड़ गयी। उस समय दरवाजेपर कोई नहीं था। बैठकमें जाकर देखा तो वहाँ भी सन्नाटा छाया हुआ था। झट बाहर आया और एक पाँच वर्षके लड़केसे कहा,—रमा भीतर है, उससे जाकर कहो कि तुम्हारे भैया बाहर खड़े बुला रहे हैं, बहुत जरूरी काम है। सुनकर चली आओ। जल्दी जाओ। मैं तुम्हें बढ़ियासा खिलौना दूँगा।

यह कहकर दिवाकर बैठकमें चला गया। वह लड़का वैसे चाहे भूल भी जाता, किन्तु जिस बातपर उसे खिलौना मिलनेवाला है, भला उसे कैसे भूल सकता था। बाल-स्वभावानुसार वह चिग्घाड़ मारता हुआ सरपट लगाकर झटसे आँगनमें

गया और रमाको खोद कहा,—बुआ, तुम्हें चाचाजी बुला रहे हैं। जल्दी जाओ बाहर खड़े हैं।

रमा कुछ पूछना ही चाहती थी कि तबतक वह लड़का खिलौना लेनेके लिए दिवाकरकी खोजमें भाग गया। बाहर आकर जब उसने खिलौना देनेवालेको नहीं पाया, तब उसके घर चला गया।

मायाधर अपना कागज-पत्र रमाको ही रखनेके लिए देते थे। यह रमाके बड़े भाई थे। उक्त सन्देशा सुनकर पहले तो रमाने यह समझा कि यदि उन्हें आवश्यकता होती तो किसी-को भेजकर बुलाये होते, स्वयं कभी न आते; किन्तु फिर सोचा, शायद खुद ही आये हों, चलकर देख लेना चाहिए, कहीं दूर तो जाना नहीं है।

यही सोचकर रमा अपनी सहेलियोंसे यह कहती हुई बाहर आयी कि,—अभी आती हूँ। बाहर आनेपर उसने किसीको न पाया। फिर घरमें लौटना ही चाहती थी कि बैठकके भीतरसे आवाज़ आयी,—यहाँ आ रमा।

पक्की और ऊँची इमारतमें आवाज बुलन्द हो जाती है, उसका पहचानना कठिन हो जाता है। इसीसे रमा भी धोखे-में आ गयी और उस आवाजको पहचान न सकी। सीधे बैठकमें चली गयी। वहाँ केवल दिवाकरको देखकर उससे बिना कुछ पूछे वापस लौटनेहीको थी, तबतक दिवाकरने कहा,—यदि तुम्हें इस तरहसे दूर रहना था तो पत्र लिखवाकर

बुलानेकी क्या जरूरत थी? मैंने तो पहले तुमसे कुछ कहा भी न था। बोलो, सच है या नहीं?

रमा चौखटसे बाहर हो चुकी थी। यदि और समय होता तो वह इतनीसी बातको मठेसकर चली आती। किन्तु इस समय वह ऐसा न कर सकी। उसने द्विवाकरसे बात करनेमें अपना कुछ लाभ देखा। यद्यपि उसका हृदय लोहारकी भाथी-की भाँति धुक्-धुक् करने लगा तथापि वह रुक गयी और क्रुद्धा भुजंगिनीकी भाँति मुड़कर बोली,—किसने पत्र लिखा था?

दिवाकरने कहा,—वाह! ऐसा पूछ रही हो यार मानो तुम्हें कुछ मालूम ही नहीं है।

'यार' शब्द रमाको तीरकी तरह लगा। त्योरियाँ चढ़ाकर बोली,—साफ साफ क्यों नहीं बतलाते कि किसने पत्र लिखा था। पहेलियाँ क्या बुझाते हो।

दिवाकरने कहा,—रामपुरसे तुमने पत्र लिखवाकर मुझे नहीं बुलवाया था, और आनेके लिए अनुरोध नहीं कराया था? छिः! मैं तो उस दिन तुम्हारे लिए चोरकी तरह तुम्हारे कमरे-में बैठा रहा, और तुमने बात भी नहीं की।

रमाने चकपकाकर इधर-उधर देखा कि कोई आता तो नहीं है। बाद पूछा,—किस दिन?

दिवाकरने कहा,—कथावाले दिन और किस दिन। अब आओ भीतर बातोंमें ही समय न बिताओ।

रमा और कुछ भी न पूछ सकी। आवेशमें रहनेके कारण

वह गिरनेसे बच गयी। झट तेजीसे चल पड़ी। दिवाकर पीछेसे "सुनो-सुनो" पुकारने लगा। अन्तमें पकड़नेके लिए दौड़ पड़ा, किन्तु विफल हुआ। रमा घरमें चली गयी। ओफ! बड़ी गलती हुई। यदि दिवाकर यह जानता कि रमा उसे इस प्रकार छटा देकर निकल जायगी तो वह अपने बूकमें आये हुए शिकारको यों ही न निकल जाने देता। इतनी बातें करनेकी जरूरत ही क्या थी? मगर अब यह सोचनेमें क्या धरा है। अब आज तो रमा आँखोंमें धूल झोंककर निकल गयी। साथ ही यह भी कहती गयी कि,—पाजी यदि तू अब मुझसे बातें करनेकी धृष्टता करेगा तो तेरे लिए अच्छा न होगा। जा, आज मैं क्षमा करती हूँ।

यदि उस समय कोई आदमी कुछ फासलेपर भी होता तो रमाकी ऊपरकी बातको अच्छी तरहसे सुन लेता। क्योंकि ऊपरकी बात कहते समय रमा अपनेको भूल गयी थी, और इसीसे ऊँचे स्वरमें कह बैठी थी।

भीतर आकर रमा बैठ तो गयी, पर उसके हृदयकी धड़कन बन्द न हुई। रह-रहकर उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वह नीच पीछेसे आकर उसे खींचना चाहता है। इसी धोखेमें वह जबतब चौंककर पीछे ताक भी दिया करती थी। उसने बहुतेरी चेष्टाएँ कीं कि इस भावको कोई लक्ष्य न कर सके, फिर भी उसका तमतमाया हुआ चेहरा देखकर स्त्रियोंने लक्ष्य कर लिया। एकने कहा भी,—तू क्रोधमें क्यों है रमा?

इसके उत्तरमें रमाने इतना ही कहा,—कुछ तो नहीं।

फिर किसी स्त्रीने कुछ नहीं पूछा। सोचा, भाईने कुछ कहा होगा।

अपने घर आनेपर रमा गहरी चिन्तामें डूब गयी। सोचने लगी,—यह मैंने क्या सुना? क्या कथावाले दिन मेरे साथ कोई षड्यंत्र रचा गया था? अवश्य ही यही बात है। हाय भगवान, अब क्या होगा? उस षड्यंत्रका पता कैसे लगेगा? पापी दिवाकरसे पूछना भी तो ठीक नहीं। मैंने तो किसीसे नहीं बुलवाया था, फिर यह ऐसा क्यों कहता था? उस दिन बहन (प्रभा) भी तो मुझसे प्रसन्न थीं। क्या उन्होंने ही तो मिलकर कोई काम नहीं किया? नीतिकारोंने कहा भी है कि हँसकर मिलनेवाले शत्रुसे और भी सतर्क हो जाना चाहिए। तो क्या वह मेरे साथ शत्रुता रखती हैं? कदापि नहीं। मैंने उनका कौनसा अहित किया है? वह तो मुझे बहुत कुछ बुरा-भला कह जाती थीं किन्तु मैंने तो आजतक कभी उनकी बातोंको उलटा भी नहीं। प्राणनाथ! तुम्हारे रहते मेरा यह अपमान? क्या तुम भी इसपर विश्वासकर बैठे हो? तब तुम स्पष्ट क्यों नहीं कहते? तुम तो पत्रोंका जवाब देना भी बन्द कर बैठे हो। पातकी कीचकके भयसे सैरन्ध्रीकी जो दशा हुई थी, वह तुमसे छिपी नहीं है नाथ! यदि तुम मेरे हृदयको टटोलकर देखते तो समझ सकते कि मेरे हृदयमें कितनी वेदना है। सैरन्ध्रीने तो विराट-महिषीके पैरों पड़कर अभय-

दान माँगा था। मुझे तो वह भी सहारा नहीं! तुम्हीं बतलाओ कि तुम्हारे सिवा और मैं किससे अभयदान माँगूँ? मुझे कौन अभय करेगा? स्वामिन्! कह तो नहीं सकती, लेकिन तुम्हीं सोचो कि यदि सैरन्ध्रीकी उस स्थितिमें उसके पति उसपर अविश्वास करते तो उसकी क्या दशा होती? कीचक-का संहार कौन करता?

इन्हीं बातोंको सोचकर रमा चिन्तित रहने लगी। उसके शरीरकी कान्ति क्रमशः अस्त होने लगी। किन्तु इस बातकी चर्चा उसने किसीसे नहीं की। यदि वह दिवाकी नीचताको अपने पिताके कानोंतक किसी तरह पहुँचा देती तो अवश्य ही उसका छुटकारा हो जाता। क्योंकि सदायतनजी बड़े प्रभावशाली मनुष्य थे। वह आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी थे। दिवाको वह तुरन्त ही पकड़वा मँगाते, और ऐसा पिटवाते कि उसे ज़िन्दगीभरके लिए याद हो जाता। सम्भव था, कोई इससे भी कड़ा दंड देते। वह जितने दयालु थे, अपराधियोंके लिए कहीं उससे भी अधिक कठोर थे। रमाको पिताका स्वभाव मालूम था। पहले तो उसने यह समाचार पिताके पास पहुँचानेका विचार किया, पश्चात् दिवाकी स्त्रीका स्मरण करके रुक गयी। सोचा बाबूजी न जानें कौनसा दण्ड देंगे। उसकी स्त्रीको दुःख होगा। यही सोचकर कोमल-स्वभावा नारी हृदय सिहर गया। किन्तु इसका परिणाम उसके लिए अच्छा न हुआ।

ऊपरकी घटनाके बाद कई दिनोंतक तो दिवा जोंककी तरह काँपता रहा। बाद जब उसने निश्चय कर लिया कि रमाने यह हाल अपने पितासे नहीं कहा, तब उसका साहस बढ़ गया। सोचने लगा,—उस दिनकी बात रमाको बुरी नहीं लगी। यदि उसे मेरा कहना अनुचित जँचा होता तो अवश्य ही अपने पितासे कह देती। अच्छा, तब वह बुलानेसे आयी क्यों नहीं? ऊँः! यह तो स्त्रियोंके नखरे हैं। युवतियां क्या सहजहीमें हाथ आती हैं? भोलाकी लड़कीके पीछे क्या कम दाँव-पेंच खेलने पड़े थे? युवती स्त्रियोंको,—खासकर ऐसी स्त्रियोंको जिनके पति बाहर रहते हैं, ऐसी बातें कभी भी बुरी नहीं लगतीं—चाहे वे कितनी ही साध्वी क्यों न हों। आँखोंसे सैकड़ों बार संकेत करनेपर वह नहीं बोली, इतनी बातें हो जानेपर भी उसने किसीसे चर्चा नहीं की, अब क्या चाहिए! यदि वह राजी न होती तो रामपुरमें मेरे लिये रोती क्यों? और फिर मेरी सुन्दरतापर ऐसी कौनसी स्त्री है जो मुग्ध न हो जाय! (कुछ ठहरकर) समझमें आ गया। जान पड़ता है, उसने पत्र नहीं लिखवाया था। इसीसे जीजीने भी पत्रकी चर्चा करनेके लिए मना कर दिया था। किन्तु इससे क्या? रमा मुझे चाहती है, यह निश्चय है। विश्वास है कि बहुत शीघ्र वह मेरी हो जायगी।

नराधम! त्याग दे अपनी इस आशाको। उस देवीकी दया ही तेरे लिए शाप होगी। मत कर अपनी सुन्दरताका

घमण्ड। तू तो ज्ञानदत्तके पैरोंके तलवेकी समानता करने-वाला भी नहीं है,—यदि तू ठीक इसके विपरीत होता, तब भी तेरे विश्व-विमोहन सौन्दर्य्यको देवी रमा तुच्छसे भी तुच्छ समझती। वह तो उस दिन तुझसे बोलती भी न; पर क्या करे तेरी हरकतोंने हो उसे साहसी बना दिया था; दूसरा कारण यह भी था कि तेरे साथ बातें करके वह देवी अपना कुछ मतलब निकालना चाहती थी। तू नहीं समझ सका, उसने अपना काम निकाल लिया—रे अन्धा!

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

रविवारके दिन कोई काम-काज न रहनेके कारण ज्ञान-दत्तने गौरी बाबूके घर टेलीफोन किया। उस समय ग्यारह बज चुके थे। उत्तर मिला गौरी बाबू नीचेकी बैठकमें काशी बाबूके साथ बातें कर रहे हैं। पूछा,—कहीं जानेवाले तो नहीं हैं? उत्तर मिला,—नहीं।

कपड़े पहनकर ज्ञानदत्त अपने मित्रके घर पहुँचे। दरवाजे-पर पहुँचते ही, काशी बाबूने कहा,—आइये पण्डितजी आइये, अभी आपहीके लिए गाड़ी भेजनेकी बात हो रही थी।

"तभी तो मैं आ गया" यह कहते हुए ज्ञानदत्त एक

तकियाके सहारे पड़ रहे। गौरी बाबूने पानकी तश्तरी खिसकाते हुए कहा,—लो पान खाओ।

ज्ञानदत्तने नौकरसे एक ग्लास ठंढा जल माँगकर पिया, पश्चात् जर्देके साथ पानके बीड़े भी खाये। पूछा,—आज कहाँ चलोगे?

गौरी बाबूने कहा,—नया प्ले (खेल) देखने। एक बाक्स रिजर्व करा लिया है। यही त्रिमूर्त्ति चलेगी।

ज्ञानदत्तने कहा,—तुम व्यर्थ रुपया फूँकते हो गौरी बाबू, यह बात अच्छी नहीं। कल थियेटरके मैनेजरने टिकट भेजनेके लिए फोन किया था, किन्तु मैंने मनाकर दिया। यदि चलना था तो कहते, मैं मँगवा लेता।

गौरी बाबूने कहा,—खैर इसके लिए कोई बात नहीं है जी। यह अप-व्यय नहीं कहलाता।

ज्ञानदत्तने कहा,—क्यों, यह अप-व्यय नहीं है? भई वाह, तुम्हारी शब्द-परिभाषा ही भिन्न रहती है।

काशी बाबूने कहा,—क्यों जनाब, आप तो सम्पादक बनकर चलते, और हमलोग क्या बनते?

गौरी बाबूने कहा,—अच्छा बकवाद छोड़ो, कोई कामकी बातें करो।

ज्ञानदत्तने कहा,—हाँ और क्या, जल्दी बनाओ मुहर्रमी सूरत। राम, राम!

सबलोग ठहाका लगाकर हँस पड़े। बाद काशी बाबूने

कहा,—हाँ, कहिये गौरी बाबू, कौनसी बात करना चाहते थे? मुझे आपकी और परिडतजीकी बातोंमें बड़ा आनन्द आता है।

"अच्छा ये बनानेकी बातें अपने पेटमें रहने दीजिये," यह कह गौरी बाबूने गम्भीरताके साथ कहा,—आजकल हिन्दी-साहित्यमें नये-नये छोकरोंने इतनी तेजीसे सरपट लगाना शुरू कर दिया है कि देखकर आश्चर्य्य होता है।

ज्ञानदत्तने कहा,—हमलोग भी तो नये छोकरोंमें ही हैं।

गौरी बाबूने कहा,—किन्तु उनकी अपेक्षा पुराने हैं।

ज्ञानदत्तने कहा,—मौलिक पुस्तकें नहीं निकल रही हैं, दुःखकी बात है।

गौरी बाबूने कहा,—निकलती क्यों नहीं हैं, यह कहो कि कम निकल रही हैं। कुछ लोगोंने ऐसे विचित्र-विचित्र नामकी पुस्तकें लिख मारीं कि उनकी धूम मच गयी।

ज्ञानदत्तने कहा,—अवश्य ही कुछ छोटे २ सामाजिक उपन्यास ऐसे निकले हैं और निकल रहे हैं। किन्तु इन उपन्यासों-से समाजका बहुत बड़ा अहित होगा।

काशी—सो कैसे?

ज्ञान—बात यह है कि आजकलके नवयुवक गन्दे उपन्यासोंकी ओर मुँहके बल टूट पड़े हैं। उनकी इस रुचिको देखकर लोभके वशीभूत हो कुछ मौलिक उपन्यास-लेखक घटना-वैचित्र्य-पूर्ण सामाजिक उपन्यास लिखनेमें लग गये हैं। ऐसे उपन्यासोंकी बिक्री भी खूब धड़ल्लेसे हो रही है। किन्तु

मेरी समझसे घटना-वैचित्र्य ही उपन्यासका सर्वस्व नहीं है। उसमें नैतिक शिक्षाका सन्निवेष होना विशेष प्रयोजनीय है। इसके अलावा एक बात और है। वह यह कि, उपन्यास लेखकको चरित्र-चित्रण करनेमें स्वाभाविकताकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। आजकल लोगोंने उसका अर्थ ही बदल दिया है। समझते हैं कि समाजका नग्न चित्र चित्रित करना ही लेखन-कौशल है। मैं यह नहीं कहता कि नग्न चित्र खींचना ही नहीं चाहिए। मेरा तो यह कहना है कि समाजका नग्न चित्र खींचा जाय, किन्तु मर्यादाके भीतर, अधिक अश्लीलताका दोष आ जानेसे तो साहित्यका गौरव ही नष्ट हो जाता है। इसमें.........

गौरी बाबूने बात काटकर कहा,—मान लीजिये कि समाजका कोई चित्र अधिक अश्लील है। अब यदि उपन्यास लेखक उसे ज्योंका-त्यों चित्रित न करे तो वह अस्वाभाविक हो जायगा। ऐसी दशामें लेखक उसको चित्रित करनेके लिए वाध्य है।

ज्ञानदत्तने कहा,—मेरे कहनेका मतलब यह है कि साहित्यमें ऐसी अश्लील बातें नहीं आने देनी चाहिए, जिन्हें देखकर संसारके लोग अभी या भविष्यमें हमारे समाजकी दिल्लगी उड़ावें और उन्हें हेय दृष्टिसे देखें। समाजके गौरवकी-रक्षा करनेकी ओर ध्यान रखना तथा यह देखना कि भविष्य में अमुक बातका अमुक प्रभाव पड़ेगा—नितान्त आवश्यक है।

अधिक अश्लील चित्रोंसे समाजका गौरव नष्ट होता है और लाभके-बदले हानि ही अधिक होती है। मानव-हृदयका स्वाभाविक झुकाव पतनकी ओर होता है। इसलिए ऐसे चित्रोंसे जनता कोई लाभ नहीं उठाती और अनायास ही उसमें कुरुचि आ घुसती है। देखिये न, विदेशियोंने हमारे भारतको नीचा दिखानेके लिए कितना प्रयत्न किया; हमारे इतिहास और साहित्यको कुचलनेमें उन्होंने कुछ भी उठा नहीं रक्खा; किन्तु हमारा प्राचीन साहित्य इतना गौरवान्वित है कि उनको दाल न गल सकी। यदि हमारे प्राचीन साहित्यमें समाजके अधिक अश्लीलता-पूर्ण नग्न चित्र खींचे गये होते, तो आज विदेशियोंको बहुत कुछ कहनेका अवसर मिलता और हमलोग कभी भी उनके सामने अँकड़कर न रह सकते। इस समय भी हमारा पीछा करनेसे विदेशी बाज नहीं आ रहे हैं। मिस मेयोकी मदर इंडिया अभी ही तो प्रकाशित हुई है। इसीसे मैं ऐसे चित्रोंका चित्रित करना पसन्द नहीं करता, जिनसे लोग यह कहें कि बीसवीं सदीमें तुम्हारा भारत ऐसा था। तात्पर्य यह कि लेखकको जनतामें सुरुचि-पूर्ण भाव फैलानेका ही प्रयत्न करना चाहिए। यदि समाजके किसी नग्न चित्रसे जनतामें कुरुचि उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो तो उस चित्रको न व्यक्त करना ही अच्छा है और यदि व्यक्त किये बिना काम न चले तो ऐसे ढंगसे करना उचित है जिससे जनतामें शिक्षाके साथ सुरुचि उत्पन्न हो; इसीमें लेखककी तारीफ भी है।

केवल नग्न चित्र खींचकर ही क्या हुआ यदि पाठकोंका हित न होकर अहित ही अधिक हुआ ? इसमें बुद्धिसे काम लेनेकी जरूरत है। कुशल-लेखकको ही इसमें कलम उठानी चाहिए।

गौरी—तो क्या तुम्हारे कहनेका यह मतलब है कि समाज-का नग्न चित्र बिलकुल खींचा ही न जाय ?

ज्ञान—नहीं, मैं यह कदापि नहीं कहता। क्योंकि ऐसा कहनेसे तो चरित्र-चित्रणका अस्तित्व ही मिट जायगा। मेरी बातको जरा ध्यानसे समझो। बात यह है कि समाजके नग्न-चित्रका अर्थ यह नहीं है कि उसकी कुत्सित बातोंका दिग्द-र्शन करा दिया जाय। लेखकको यह समझना चाहिए कि समाजके किस चरित्रका चित्रण करनेसे जनताका लाभ होगा। जिस प्रकार इतिहास लेखकका यह जानना आवश्यक है कि, अमुक बादशाह अमुक सनमें पैदा हुआ, फलाँ सनमें गद्दीपर बैठा और अमुक-अमुक कार्य करके स्वर्गवासी हुआ, आदि बातोंका मार्मिक भाषामें उल्लेख करना कोई चीज नहीं है,—बल्कि किस कार्यका भविष्यपर क्या प्रभाव पड़ेगा, किस कार्यसे इतिहास-पाठकोंको लाभ होगा आदि बातोंपर दृष्टि रखकर इतिहास लिखना ही उच्चकोटिके इतिहासज्ञ लेखकों-का काम है। उन्हें यह भी अटकल लगानी चाहिए कि यदि इतिहासकी अमुक घटना अमुक रूपमें घटती तो उसका क्या परिणाम हुआ होता। इस बातको इंगलैंडके सुप्रसिद्ध इति-हास लेखक सरजान सोलीने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "एक्स-

पैन्शन आफ इंगलैंड" में बड़ी विद्वताके साथ दिखलाया है। ठीक ऐसे ही सामाजिक उपन्यास-लेखकका भी कर्त्तव्य है। यदि कोई उपन्यासकार यह लिखनेमें कागज-स्याही बर्बाद करे कि अमुक पात्र इतने बजे पाखाने जाता था, स्नान करता था, तो यद्यपि इसमें कोई अस्वाभाविकता न होगी तथापि इसे पढ़नेमें जनताका समय नष्ट होनेके सिवा और कोई फल न होगा; किन्तु यही बात यदि इस तरह दर्शायी जाय कि उसके इस नियम-पूर्वक स्नान और शौचका अमुक फल हुआ, तो जनताका अवश्य ही उपकार होगा। कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि केवल स्वाभाविक-स्वाभाविककी दुहाई देना उचित नहीं है,—आवश्यकता है, लेखकोंको अपना कर्त्तव्य समझने और तदनुसार कार्य करनेकी। शब्दोंका फेरफार बड़ा बेढब होता है। यदि कोई मनुष्य अपनी माँको 'ऐ बापकी मेहरी' कहकर पुकारे तो क्या यह पुकारना उचित होते हुए भी अनुचित नहीं है? अवश्य है, क्योंकि जो माधुर्य माँ शब्दमें है, वह बापकी मेहरीमें कहाँ? ठीक इसी प्रकार चरित्रका चित्रण करना भी समझिये। उच्चकोटिका लेखक वही है, जो समाजके भद्दे से-भद्दे चरित्रका चित्रण कर दे, पर ऐसे शब्दों-में, जिससे वह नग्न चित्र पाठकोंको शिक्षा दे। किन्तु जो लेखक ऐसा न करके कुरुचिका प्रचार करता है—गम्भीरतासे काम नहीं लेता, वह तो सरेआम व्यभिचार बेचता है।

इतनेमें कमरेमें टँगी हुई घड़ीसे 'टन-टन' की आवाज आयी।

गौरी बाबूने वक्त देखकर कहा,—तीन बज गये, अब शौचादि-से निवृत्त होना चाहिए, क्योंकि चार ही बजे अभिनय शुरू हो जायगा।

गौरी बाबूके कथनानुसार तीनों आदमी शौचादिसे छुट्टी पा जलपान करने बैठे। उधर तबेलेसे गाड़ी आकर दरवाजेपर खड़ी थी। साईसने आकर कहा,—गाड़ी तैयार है हुजूर।

सबलोग गाड़ीपर सवार हो थियेटर देखने गये। वहाँ बड़ी भीड़ थी। शोर-गुल इतना हो रहा था कि कानके पर्दे फटे जाते थे। दर्शक-मात्रके दिलमें आगे बैठनेकी चाह इस कोलाहलका मूल कारण थी। इन तीनों मित्रोंको इस झगड़ेमें पड़नेकी कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि इन लोगोंकी तीन सीटों-के बदले पाँच सीटका पूरा बाक्स रिजर्व था। पहली घंटी होने-पर तीनों मित्र जाकर अपने स्थानपर बैठ गये। नया अभिनय होनेके कारण रंगमंच खूब सजा हुआ था। दर्शकशाला खचा-खच भरी थी। इतनेमें दूसरी घंटी बजी, फिर तीसरी घंटी बजकर ठीक समयपर पर्दा उठ गया। दर्शक-मंडलीमें सन्नाटा छा गया। ज्ञानदत्त और गौरी बाबू सीनके बनावटकी प्रशंसा करने लगे। तबतक बगलके बाक्समें खटखुटकी आवाज हुई। मित्र-त्रयकी दृष्टि उधर जा पड़ी। देखा, चार व्यक्ति आकर सहूलियतके साथ बैठनेका उपक्रम कर रहे हैं। उनमें दो पुरुष थे और दो स्त्रियाँ थीं। तीनका मुख तो दिखलायी पड़ा और चौथा मुख दिखलायी नहीं पड़ा, क्योंकि उसका

पृष्ठ-भाग इनलोगोंकी नजरोंके सामने था।

फिर किसीने उधर नहीं देखा। धीरे-धीरे नाटकका पहला अंक समाप्त होगया। धक्काधुक्की शुरू होगयी। ये तीनों आदमी अपने स्थानपर बैठे बातें करने लगे। अबकी दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्यकी चर्चा छिड़ी।

गौरीने कहा—तुम यार नाटकोंको हेय दृष्टिसे क्यों देखते हो, समझमें नहीं आता।

ज्ञान—यार हो तुम सचमुचमें बड़े विचित्र! भला यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि दृश्य-काव्यको मैं हेय दृष्टिसे देखता हूँ? नाटक, साहित्यका एक महत्वपूर्ण प्रधान अङ्ग है, इसे कौन नहीं मानता? जिस नाट्यकलाका प्रचार स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने किया, उसे मैं हेय दृष्टिसे कैसे देख सकता हूँ? मेरा कहना तो सिर्फ इतना ही है कि हिन्दीमें अभी नाटकोंका अभाव है; बल्कि यों कहना चाहिए कि नाटक नामसे परिचित होने योग्य हिन्दीमें कोई नाटककी पुस्तक है ही नहीं।

गौरी बाबूने कहा,—तो क्या भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रकी रचानायें भी ऐसी ही हैं? यदि हाँ, तो फिर कहीं सर्वगुण-सम्पन्न नाट्यकला है भी या नहीं?

ज्ञान—फ्रांस, जर्मन आदि देशोंमें नाट्य-कला उत्कर्षको पहुँच गयी है। हमारे जातीय साहित्यमें भी नाट्य-कलाका स्थान सर्वोच्च है। हमारे यहाँके प्राचीन साहित्य संस्कृतमें मुद्राराक्षस, विक्रमोर्वशी, मृच्छकटिक, शकुन्तला आदि नाटकों-

की रचना तथा उनका अभिनय सौन्दर्य-कलाकी अपूर्व सृष्टि है। मैं तो ऐसे ही नाटकोंको पसन्द करता हूँ।

गौरी—किन्तु अब वैसे नाटक आदरकी दृष्टिसे नहीं देखे जा सकते। कारण यह कि जनताकी रुचि बदल गयी है।

ज्ञान—इसे मैं भी मानता हूँ; किन्तु जनताकी रुचि बदल जानेसे उक्त नाटकोंकी श्रेष्ठता लुप्त नहीं हो सकती। उन नाटकोंके टक्करके नाटक संसारमें नयी रुचिके अनुकूल रचे जायँगे या नहीं, मुझे सन्देह है।

गौरी—क्या तुम यह कहना चाहते हो कि हिन्दीमें नाटक हैं ही नहीं?

ज्ञान—वास्तवमें जहाँतक मैंने देखा है, नाटकोंके यथार्थ गुणोंसे सम्पन्न हिन्दीमें कोई भी नाटक नहीं है। मैं तो यह भी कहनेमें संकोच न करूँगा कि चाहे भारतेन्दुजीके गद्य लेखों और कविताओंकी उत्कृष्टताके विषयमें मत-द्वैध न हो, किन्तु अन्यान्य नाटककारोंसे बहुत बढ़े-चढ़े रहनेपर भी उनके नाटक प्रथम श्रेणीके नहीं कहे जा सकते।

काशी—अच्छा आप नाटकमें किन किन बातोंका रहना आवश्यक समझते हैं?

गौरी बाबूने कहा,—नहीं नहीं, (फिर कुछ सोचकर) अच्छा हाँ, ठीक है काशी बाबूका प्रश्न। पर यह समझमें नहीं आता कि पहलेकी सब रचनायें पद्यात्मक ही क्यों हैं।

ज्ञान—मेरे विचारसे नाटकमें तीन बातें प्रधान हैं जिनके

बिना नाटक सौन्दर्योत्पादक नहीं हो सकता। सबसे पहली बात है भाषा। स्वभाविकताकी रक्षा करनेके लिए गद्यको ही प्रधानता देनी चाहिए, क्योंकि मनुष्य साधारणतया गद्यमें ही बातें करता है। किन्तु जहाँतक नाटक देखनेमें आये हैं, वे सब अधिकांश छन्दोबद्ध भाषामें लिखे गये हैं। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि, सभी जातियोंके साहित्यका प्रारम्भ काव्यसे ही हुआ है। प्राचीनकालमें ग्रन्थकारोंकी प्रवृत्ति कविताकी ओर विशेष प्रतीत होती है। भारतमें तो निश्चय ही यही बात है। कारण यह है कि भाव-प्राचुर्य के कारण बोलीमें तात्कालिक परिवर्त्तन लक्षित होता है। राग, द्वेष, क्रोध, अत्यधिक हर्ष तथा शोककी अवस्थामें मनुष्यकी भाषा स्वाभाविक भाषासे भिन्न प्रकारकी हो जाया करती है। मनुष्य जब क्रोध, हर्ष, शोकमें बेधड़क अपना वक्तव्य व्यक्त करता है, तब उसकी भाषामें एक प्रकारका ओज, चढ़ाव-उतार देखनेमें आता है—जो कवितासे कुछ कुछ मिलता-जुलता-सा प्रतीत होता है। प्राचीन कविता-प्रिय लेखकोंने इनके पार्थक्यका परित्याग करके सादृश्यको ही ग्रहण किया है। जान पड़ता है, उन्हें यह विभिन्नता नहीं जँची।

काशी बाबूने गौरी बाबूकी ओर देखकर कहा,—पं० ज्ञानदत्तजीके इस विचारसे मैं भी सहमत हूँ। मेरा भी यही अनुमान है कि इस प्रकार कुछ दिनोंतक रहनेके बाद नाटकीय भाषामें अमित्राक्षर छन्दोंके आविष्कारसे परिवर्त्तन हुआ।

हम मित्राक्षर छन्दों तथा गद्यकी मध्यवर्त्तिनी भाषाको अमित्राक्षर-छन्दोंकी भाषा मान सकते हैं; जिसमें एक ओर तो हमें कविताका ओज इत्यादि और दूसरी ओर गद्यकी स्वाधीनता तथा निरंकुशता भी देखनेमें आती है।

गौरी—मेरा तो यह अनुमान है कि प्राचीन समयमें लोग श्रुति-मधुरताका अधिक आदर करते थे; चूँकि पद्यमें माधुर्य-गुण विशेष आ जाता है, अतः प्राचीन नाटकोंकी रचना पद्यमें होना स्वाभाविक है।

ज्ञानदत्त—आपका कहना भी मैं मानता हूँ। एक कारण यह भी हो सकता है।

गौरी—अच्छा हाँ, एक बात तो हुई भाषा-सम्बन्धी; अब बाकी दो प्रधान बातें कौन कौनसी हैं।

ज्ञानदत्त—दूसरी बात है—कथानक; जिसे घटनाकी पूर्त्ति तथा अविच्छिन्नता भी कह सकते हैं। उत्तम नाटककारको चाहिए कि वह नाटकभरमें एक भी दृश्य व्यर्थ न लिखे। इसके लिए सभी दृश्योंका सहायक होना आवश्यक होता है। दुःखकी बात है कि आजकलके नाटकोंमें इस बातकी बहुत ही न्यूनता है।

गौरी—सो तो ठीक है। इसे........

इतना कहते ही किसीने पुकारा,—गौरी बाबू!

आवाज सुनकर गौरी बाबू चुप होगये; पीछेके बाक्सकी ओर ताका। तबतक फिर आवाज हुई,—आपतो बहुत पहले

आ गये थे।

गौरी बाबू उठ खड़े हुए और झुककर प्रणाम किया। राजा साहिबने आशीर्वाद देते हुए कुशल-क्षेम पूछी और कहा,—आप तो कभी दिखलायी ही नहीं पड़ते। कार्यका भार अधिक आ गया न?

गौरी बाबूने संकोचके साथ सिर झुका लिया। तबतक पं० ज्ञानदत्त और काशी बाबू उठकर बाहर जाने लगे। बाक्सके सामने खड़े होकर ज्ञानदत्तने गौरी बाबूसे कहा,—अच्छा, आप बातें कीजिये, हमलोग अभी आते हैं।

यह कहकर ज्ञानदत्त उत्तरकी प्रतीक्षामें खड़े न रहते। किन्तु एक स्त्रीपर दृष्टि पड़ जानेसे उत्तर लेनेके बहाने जरा रुक गये। देखा, वह युवती स्त्री, चकित हरिनीकी भाँति उनकी ओर ताक रही थी; किन्तु टकटकी लगाकर नहीं, कनखियोंसे—सो भी जबतब।

गौरी बाबू कुछ कहना ही चाहते थे कि राजा साहिब पूछ बैठे,—आपलोगोंकी प्रशंसा?

गौरी बाबूने कहा,—आपका शुभ नाम पंडित ज्ञानदत्तजी है। इस समय हिन्दी संसारमें आपकी.........

राजा साहिबने बात काटकर उठते हुए कहा,—अच्छा! पं० ज्ञानदत्तजी आप ही हैं? बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपका दर्शन मिला। आपकी कृतियोंसे तो मैं भलीभाँति परिचित था, परन्तु वैयक्तिक साक्षात्कार नहीं हुआ था। हर्षकी

बात है कि आज वह भी होगया ।

यह कहते हुए राजा साहिबने ज्ञानदत्तजीसे हाथ मिलाया। ज्ञानदत्तजीने कृतज्ञताका भाव दिखलाकर कहा,—गौरी बाबूको धन्यवाद है कि इन्होंने आज परिचय कराया।

इतनेमें घंटी बजी। ये लोग बाहर नहीं जा सके, फिर अपनी जगहपर जाकर बैठ गये। आते समय उस युवतीने फिर बड़े संकोचके साथ ज्ञानदत्तकी ओर दृष्टि-निक्षेप किया। ज्ञानदत्त भी उत्तर देनेसे नहीं चूके। राजा साहिबने यह कहकर इनलोगोंको बिदा करनेमें देर नहीं की कि,—बैठिये, फिर बातें होंगी।

पाठकगण समझ गये होंगे कि यह युवती कौन है। इनलोगोंके आ बैठनेपर उसने अपने पिता राजा साहिबसे पूछा,—यह कौन हैं बाबूजी ?

राजा साहिबने कहा—यह वही हैं जिनके लेखोंकी तुम बहुत प्रशंसा किया करती हो बेटी।

वैभव और उच्चतासे भी स्नेहकी वृद्धि होती है। युवती राजकुमारीकी श्रद्धा ज्ञानदत्तके प्रति और भी बढ़ गयी। उसके प्रश्नोंकी लड़ी इस समय न टूटती, किन्तु न जाने क्यों वह और कुछ न पूछ सकी। जान पड़ता है कि उसने यही समझकर विशेष कुछ न पूछा कि यह भी तो नव-परिचित हैं। अथवा नाटक शुरू हो गया था, इसलिए भी हो सकता है कि वह न पूछ सकी हो। किन्तु यह बात सम्भव नहीं। क्योंकि

ज्ञानदत्तके सम्बन्धमें अधिक जानकारी प्राप्त करनेमें उसे जो आनन्द आता, उसका शतांश आनन्द नाटक देखनेमें नहीं आ सकता। सबसे बढ़कर बात यह जँचती है कि यदि वह ज्ञानदत्तसे परिचित न होती तो उनके सम्बन्धमें अवश्य पूछती। यद्यपि वह उनके स्थूल शरीरसे परिचित नहीं है, किन्तु हृदयसे बहुत कुछ परिचित है। इसलिए राजो ज्ञानदत्त-की अपरिचिता होते हुए भी परिचिता है। और फिर, राजोमें क्या इतनी भी बुद्धि नहीं है? वह एक पराये युवकके सम्बन्ध-में अपने पितासे अधिक पूछती ही कैसे? वह अपने मनमें क्या सोचते? ऊपरकी बात पूछना क्या राजोके लिए साधा-रण लज्जाकी बात है? वह तो ज्ञानदत्तके सामने मुँह ढँक लेती, किन्तु क्या करे उसके पिताको इतना पर्दा करना पसन्द ही नहीं था। यद्यपि राजा साहिबको यह बात भी पसन्द नहीं थी कि स्त्रियाँ स्वतन्त्रता-पूर्वक सड़कोंपर फिरें। किन्तु वह अपने घरकी स्त्रियोंको स्वाभाविक रीतिसे बनावटी पर्दा न रखनेका उपदेश देते थे। बहुओंके लिए तो कम, पर राजोके लिए खासकर उनकी ऐसी ही शिक्षा थी।

रातके साढ़े आठ बजे नाटक समाप्त होगया। सबलोग उठ खड़े हुए। राजा साहिबने पूछा,—क्या आप गौरी बाबूके मकानके पास ही रहते हैं या और कहीं?

ज्ञानदत्तके बोलनेके पहले ही गौरी बाबू बोल उठे,—यह तो आपके मकानके ठीक सामने रहते हैं।

राजो जरा बगल हटकर खड़ी थी; किन्तु उसके कान इधर ही लगे हुए थे। उसकी इच्छा थी कि यदि इनको भी बाबूजी अपनी मोटरपर ले चलते तो बड़ा अच्छा होता। लेकिन कहे कैसे? मन-ही-मन अपने आराध्यदेवसे प्रार्थना करने लगी।

राजा साहिबने कहा,—तब तो बड़ा अच्छा सुयोग है। मैं आशा करता हूँ कि अब आपसे कभी-कभी भेंट होती रहेगी।

ज्ञानदत्तने कहा,—अवश्य।

राजा साहिबने गौरी बाबूसे फिर पूछा,—और (काशी बाबूकी ओर संकेत करके) आपका परिचय नहीं मिला।

गौरी बाबूने कहा,—आप मेरठके जिला-जज थे। असहयोगमें आपने उस पदका त्याग कर दिया। आपका शुभ नाम बाबू काशी प्रसाद खंडेलवाल है। देश-सेवाकी धुनमें हर समय मस्त रहा करते हैं।

राजा साहिबने उनसे भी हाथ मिलाया। बाद सबलोग सड़कपर पहुँच गये। बिदाईके समय राजा साहिबने गौरी बाबूसे कहा,—न हो, पंडितजी मेरी मोटरपर बैठ जायँ। क्योंकि हमलोगोंको तो एक ही जगह जाना है।

गौरी बाबूने कहा,—जी नहीं; आप चार आदमी हैं, कष्ट होगा। मुझे उसी तरफसे जाना है, जरूरी काम है। पंडितजीको वैसे ही छोड़ता जाऊँगा।

राजा साहिबने 'अच्छा' के सिवा कुछ नहीं कहा। सबलोग रवाना होगये। दुःख है कि राजोकी इच्छा पूर्ण न हुई।

ज्ञानदत्तने कुछ नहीं कहा। क्या उनकी इच्छा राजा साहिबकी मोटरपर बैठनेकी नहीं थी? यदि थी, तो उन्होंने कुछ कहा क्यों नहीं? भला राजो तो स्त्री थी, स्त्रियोंका लज्जा-संकोच ही भूषण है। परन्तु ज्ञानदत्त तो पुरुष थे, उन्हें कहनेमें क्या लज्जा थी?

आज ज्ञानदत्तको मालूम हुआ कि गौरी बाबू, राजा साहिबके परिचित हैं। गाड़ीमें बैठ जानेके बाद पूछा,—क्यों गौरी बाबू, राजा साहिबसे तुम्हारा कितने दिनोंका परिचय है।

गौरी बाबूने कहा,—बाबूजीके समयका ही।

ज्ञानदत्त—मगर मैंने तुम्हें इनके यहाँ कभी आते-जाते नहीं देखा।

गौरी—निष्प्रयोजन ऐसे लोगोंके यहाँ जाना ठीक नहीं होता। बाबूजीकी मृत्युके बाद तो राजा साहिब मेरे यहाँ आये थे। उस दिन एक कामसे मैं भी उनके साथ ही उनके मकानपर पहुँचा था। (जरा सोचकर) ओः ठीक है; उस समय तुम इस मकानमें नहीं रहते थे।

ज्ञानदत्त—साथके लोग क्या उनके घरके थे?

गौरी—हाँ। एक उनका छोटा लड़का था और जो स्त्री उनके सामने बैठी थी वह उनकी कन्या राजो थी। दूसरी स्त्रीको मैं नहीं पहचान सका। जहाँतक मैं समझता हूँ, वह स्त्री राजा साहिबके घरकी नहीं थी।

ज्ञानदत्त—सम्भव है, वह भी राजा साहिबकी कन्या ही हो।

गौरी—राजा साहिबके एक लड़की वही राजेश्वर है। इस साल वह मैट्रिक पास हुई है।

ज्ञानदत्त—स्त्रियोंको पढ़ाने-लिखानेका शौक राजा साहिब को है क्या ?

गौरी—बहुत। राजा साहिबके खयालात बड़े अच्छे हैं। यही है कि सब काम परोक्ष रूपसे करना चाहते हैं। सार्वजनिक संस्थाओंकी पूरी सहायता किया करते हैं, किन्तु गुप्त रीतिसे। राजोके विवाहके उपलक्ष्यमें एक लाख रुपया सार्वजनिक कामोंमें देंगे, यह बात हमलोगोंसे हार चुके हैं।

ज्ञानदत्त—क्या अभीतक लड़कीका विवाह नहीं किया है ?

गौरी—नहीं। बीस वर्षसे पहले लड़कीका विवाह करना उन्हें पसंद नहीं है। किन्तु इसका विवाह तो बीससे पहले ही—इसी साल करेंगे। बातचीत हो रही है। हो क्या रही है, एक तरहसे ठीक ही समझिये। अच्छा हाँ, अब इसकी चर्चा छोड़े, जो बात अधूरी रह गयी है, उसे कहो।

ज्ञानदत्त—कौनसी बात ? क्या वही नाटक-सम्बन्धी ? अब तो समय बहुत कम है, फिर कभी बातें होंगी।

काशी—अभी तो ८-९ ही बजे हैं, चलिये बातें करते हुए मैदानकी तरफसे घूम आया जाय।

काशी बाबूकी बातसे सबलोग सहमत होगये। जब गाड़ी मैदानकी ओर चल पड़ी, तब ज्ञानदत्तने कहना शुरू किया,—हाँ, जो मैं कथानकके सम्बन्धमें कह रहा था, सो

बात यह है कि हिन्दीके अधिकांश नाटकोंमें यह देखनेमें आता है कि एक दृश्यका दूसरे दृश्यके साथ इतना कम सम्बन्ध होता है कि यह समझमें ही नहीं आता कि ग्रन्थकारने इसे क्यों लिखा।

गौरी—हाँ यार यह बात तो जरूर है। इसके अलावा आजकलके नाटकोंमें कोई कोई दृश्य व्यर्थ ही इतने लम्बे और कोई कोई चरित्र-चित्रण व्यर्थ ही इतने बढ़ा दिये जाते हैं कि धैर्य-च्युति हो जाती है।

ज्ञानदत्तने कहा,—यही तो; चतुर नाटककारका काम तो यह है कि वह प्रत्येक भावको अत्यन्त संक्षेपमें भर दे—परिस्फुट कर दे और वह पाठकों, श्रोताओं या दर्शकोंका चित्त आदिसे अन्ततक समान भावसे खींच सके; साथ ही नाटकके बीच-बीचमें आपेक्षिक विश्रामके लिए ऐसे दृश्योंकी अवतारणा करनी चाहिए जिनके द्वारा भाव-ग्राहिका शक्तिपर उचितसे अधिक दबाव न पड़े। किस भावका विश्लेषण कहाँतक ठीक है, यह नाटककारको जानना चाहिए। तीसरी बात है—चरित्रांकण। नाटक संसारका सच्चा चित्र है। अतः जिस प्रकार संसारमें अनेक तरहके मनुष्य होते हैं, उसी तरह नाटकोंमें भी सब पात्रोंका चरित्र भिन्न-भिन्न तरहका होना जरूरी है। चरित्र-चित्रणमें स्वाभाविकताकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। देखिये, अभी जो नाटक देखा गया है, उसमें राजा अपने दरबारियोंसे बातें करता-

करता कविता कहने लगा। यह कितनी अस्वाभाविक बात है ! राजा तो पुत्र-शोकसे व्याकुल हो रहा था और रानी छाती पीट-पीटकर गजल गाती हुई शोक-प्रदर्शित कर रही थी; इतनेहीमें विदूषक आया और कपड़ेकी गठरी उठाकर राजाके मस्तकपर रखकर नाचने लगा। दर्शक-मण्डलीने जोरोंका ठहाका लगाया, खूब तालियाँ बजीं, "खूब," "एक्सलेंट," "कैपिटेल" आदि हर्ष-सूचक ध्वनियाँ हुईं। आप ही बतलाइये कि उस समय कितना दुःख हुआ ?

गौरी—आपका कहना तो बहुत यथार्थ है, पर भाई असल बात तो यह है कि जनताको रुचि बदल गयी है। हमारे यहाँ-को दर्शक-मंडली हास्य-रसकी भूखी है। जहाँ किसी गम्भीर विषयकी अवतारणा हुई कि उसे नींद आने लग जाती है। इसलिए यदि थियेट्रिकल कम्पनियाँ ऐसा न करें तो भूखों मर जायँ।

ज्ञानदत्त—मैं पेशेवाली कम्पनियोंके विषयमें कुछ भी नहीं कहना चाहता और न कही रहा हूँ। मैं ऐसे अभिनेताओंके अभिनयोंके सम्बन्धमें अपनी राय जाहिर कर रहा हूँ, जो इसकी बदौलत रोटी नहीं खाते, बल्कि समाज-संस्कारके लिए सुरुचि-पूर्ण नाट्य-कलाका प्रचार करना चाहते हैं या यों कहिये कि जो लोग शिक्षोन्नतिके लिए अपना समय तथा धन इस काममें लगाते हैं।

गौरी—यह भी कैसे हो सकता है ? सोचनेकी बात है,

नाट्य-संस्थायें चन्देपर चला करती हैं। यदि सदस्योंको रुचिके अनुकूल नाटक न खेले जायँ तो संस्था ही टूट जाय।

ज्ञान—किन्तु समाजका सुधार करनेवाले लोग अपनेको 'हाँमें हाँ भरनेवाला' नहीं बनाते। उन्हें उद्दण्डता-पूर्वक पवित्र और निस्वार्थ हृदयसे जनताकी परवाह न करके सुधारका बीड़ा उठाना पड़ता है। जो वैद्य रोगीके नाराज़ होनेके भयसे उसे कड़वी दवा नहीं देगा, वह क्या चिकित्सा करेगा? इस समयकी जनतामें मानसिक दुर्बलता बहुत है। कुरुचि-पूर्ण घटनावली-परिपूर्ण और आदि रसात्मक अभिनयों-के देखते-देखते दर्शकोंकी रुचि विकृत होगयी है अवश्य; पर शिक्षित समाजको इसका सुधार करना चाहिए। बस, ये ही कारण हैं कि आजकलके अभिनय मुझे पसन्द नहीं आते। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि मैं नाटकोंको हेय दृष्टिसे देखता हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि नाटकोंमें श्रेष्ठत्व रहे, क्योंकि ऐसे नाटकोंका जन्म होनेसे कुछ ही दिनोंमें जनताकी रुचि स्वयं ही परिमार्जित हो जायगी और अभिनेताओंको यश प्राप्त होगा।

काशी—आपके विचार बड़े ही अच्छे हैं। वास्तवमें नाटकमें बे-मौकेका मजाक बेतरह खटकता है। मजाकको नाटकका एक सामान्य अंश होने देनेमें कोई आपत्ति नहीं, पर यह क्या कि बात-बातपर मजाक? मेरी तो यह राय है कि नाटकमें उचित स्थानपर थोड़ा मज़ाक अवश्य रहे, पर वह

भी शिक्षासे पूर्ण और जनताको हँसानेके साथ-साथ लज्जित करनेवाला हो।

इतनेमें गाड़ी मैदानका चक्कर लगाती हुई पं० ज्ञानदत्तके मकानके सामने आकर खड़ी होगयी। ज्ञानदत्त उतर पड़े। गौरी बाबूने सबेरे बिदापुर चलनेके लिए तैयार रहनेको कहा और बिना कुछ उत्तर पाये ही चल दिये।

—:*:—

उन्नीसवाँ परिच्छेद
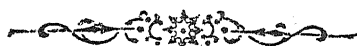
"अभीतक तुम चुप बैठे हो? यार हो तुम बड़े अकर्मण्य।" यह बात गौरी बाबूने कमरेमें प्रवेश करते ही कही।

ज्ञानदत्तने कहा,—तुम व्यर्थ हठ करते हो, मुझे वहाँ न ले चलो।

गौरी—तुम बहुत ही भूल कर रहे हो। सांसारिक कुचक्रों-से घबड़ाकर दूर हटते जाना, अपनेको पतित करना है।

ज्ञान—क्या तुम यह कहना चाहते हो कि नर्कका कीड़ा नर्कमें ही पड़ा रहे?

गौरी—नहीं। मैं यह चाहता हूँ कि नर्कमें रहकर कीड़ेको अधीर नहीं होना चाहिए, बल्कि वीरता-पूर्वक अपने कष्टोंके-

निवारणका यत्न करना चाहिए। परमात्मा जो कुछ दिखावें और करें, सबमें शान्त होकर आनन्दित रहना चाहिए।

ज्ञान—किन्तु मैं इस प्रकार आनन्दित होना नहीं चाहता। 'बधसे भला त्याग।'

गौरी—किन्तु त्यागसे पहले इसका विचार कर लेना आवश्यक होता है कि वह वस्तु वध्य अथवा त्याज्य है या नहीं।

ज्ञान—जो बात आँखों देखी जाय, उसपर बिचार करनेकी कोई जरूरत नहीं। खून करनेवाले को प्रत्यक्ष देखकर भी उस खूनीपर यह बिचार करने बैठना कि उसने खून किया या नहीं, सर्वथा अनुचित है।

गौरी—खून करनेवालेको देखनेपर भी इसका विचार करना ही पड़ता है कि हत्यारेका उद्देश्य क्या था और यहाँ तो वह बात ही नहीं। मैं आपसे पहले भी कई बार कह चुका हूँ कि बुद्धिकी सहायता बिना केवल मानसिक वृत्तियाँ अन्धी हैं। मन और इन्द्रियोंको बुद्धिके अधीन रखनेमें ही कल्याण है। बुद्धिद्वारा प्रत्येक कार्यके भले-बुरेका विचार करके किसी कार्यका करना या न करना ही जीवनका प्रशस्त मार्ग है। किसी कामको बिना सोचे-बिचारे करना ठीक नहीं।

ज्ञान—मैंने अच्छी तरह सोच-समझ लिया है गौरी बाबू, उसका त्याग करनेमें ही हित है।

गौरी—तुम बड़े कठोर हृदयके मनुष्य हो।

ज्ञान—ऐसा न कहो। उसका त्याग करनेमें मुझे कितनी यंत्रणा हो रही है, यह मैं ही जानता हूँ।

गौरी—अच्छा, जो तुम्हारे जीमें आवे, वही करो; किन्तु चलना पड़ेगा।

ज्ञान—चलनेसे मेरा कष्ट और भी बढ़ जायगा।

गौरी—बढ़ने दो। आज मुझे यह बात अच्छी तरह मालूम होगयी कि तुम्हारे हृदयने किसी दूसरी वस्तुका आश्रय ले लिया है, इसीसे तुम इतने विमुख हो रहे हो।

ज्ञान—सो क्या?

गौरी बाबूने ज्ञानदत्तका हाथ पकड़कर तैयार होनेका संकेत करते हुए कहा,—अब उठो, 'सो क्या' का उत्तर मैं न दूँगा।

ज्ञान—तो फिर कौन देगा?

गौरी—इसका उत्तर समय देगा।

ज्ञान—क्या मेरे हृदयकी गति तुम्हें पसन्द नहीं है?

गौरी—है, पर उसके प्रति इतने शीघ्र सशंकित प्रमाणके आधारपर तुम्हारे हृदयका कुछ निश्चय कर लेना, मुझे खल रहा है। खासकर ऐसी अवस्थामें जब कि स्वयं कह चुके हो कि उसके हाथका लिखा हुआ वह पत्र नहीं था!

ज्ञानदत्त थोड़ी देरतक चुप रहे। बाद उठे। कपड़ा-लत्ता ठीक करने लगे। जान पड़ता है कि गौरी बाबूकी अन्तिम बात काम कर गयी। सम्भव है कि उनके हृदयने रमाकी अन्तिम-

परीक्षा लेना स्थिर कर लिया हो।

गौरी बाबू यह कहकर चले गये कि 'तुम तैयार रहो, मैं घर जाता हूँ। भोजन करके अभी आता हूँ। काशी बाबू आते होंगे, बिठा रखना।'

ज्ञानदत्त अपना सामान ठीक करनेमें लगे थे। राजा साहिब-के नौकरने आकर कहा,—राजा साहिब आपसे भेंट करना चाहते हैं। आपको कब फुरसत मिलेगी?

ज्ञानदत्तने कहा,—बोलो, अभी आते हैं।

'बहुत अच्छा' कहकर नौकर चला गया। पन्द्रह-बीस मिनटके बाद ही पं० ज्ञानदत्तजी भी स्लीपर पहनकर राजा साहिबके मकानपर पहुँचे। इन्हें देखते ही राजा साहिब अभ्यर्थना करनेके लिए उठकर खड़े होगये और बड़े आदरके साथ एक कुर्सीपर बिठाया। कहा,—आपको बड़ा कष्ट हुआ, क्षमा कीजियेगा।

ज्ञानदत्तने कहा,—व्यर्थके शब्दोंसे मुझे लज्जित न करें। इसमें कष्टकी कौनसी बात है? कहिये क्या आज्ञा है?

राजा—बात यह है कि राजोने हिन्दू-संगठन और शुद्धि-पर एक लेख लिखा है। पत्रमें प्रकाशित करानेकी उसकी अभि-लाषा है। कई बार कह चुकी, मैं यही सोचकर हीलाहवाली करता रहा कि कहीं ऐसा न हो कि आप उसे प्रकाशित न करें। इसीसे मैंने अबतक नहीं भेजा। क्योंकि यदि वह लेख भेजा जाता और पत्रमें स्थान न पाता तो उसका उत्साह भङ्ग

हो जाता। कल आपके जाते ही उसने मोटरपर चर्चा की। आज फिर तड़के आकर कह गयी। इसीसे……

ज्ञानदत्त बीचहीमें बोल उठे,—बड़े हर्षकी बात है, कौनसा लेख है,—देखूँ।

राजा साहिबने नौकरसे लेख मँगवाकर पं० ज्ञानदत्तको दिया। उन्होंने उसे आद्योपान्त पढ़ा। यद्यपि उसमें न तो कोई गाम्भीर्य था और न कोई नवीनता थी, तथापि ज्ञानदत्त-को वह लेख बहुत पसन्द आया। शायद यही सोचकर कि, स्त्री-जातिका इतना उत्साह सराहनीय है। जो भी हो, उस लेखके गुण-दोषको जानते हुए भी ज्ञानदत्तने कहा,—अच्छा मैं आर्डर किये देता हूँ, परसोंके अंकमें यह लेख प्रकाशित हो जायगा। लेख अच्छा है।

राजो दीवारके सहारे आड़में खड़ी सुन रही थी। 'लेख अच्छा है' सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। राजोके हृदयके हर्षका अनुमान वे ही लगा सकते हैं जो पहले-पहल कोई लेख लिखकर सफल हुए होंगे। परसोंके समाचार-पत्रमें राजोका नाम छपा रहेगा, भला और क्या चाहिए? किन्तु वह ज्ञान-दत्तकी कृपासे छपेगा, इस कृतज्ञताको राजो कभी न भूलेगी। इतनेसे उपकारके लिए वह ज्ञानदत्तके हाथ बिक गयी। यदि ज्ञानदत्तको वह हृदय-स्थित न कर चुकी होती तो तुरन्त ही कमरेमें चली जाती। किन्तु न जानें क्यों वह ज्ञानदत्तके सामने न जा सकी। जानेके लिए पैर आगे बढ़ाकर फिर उसने पीछे

खींच लिया। श्रद्धेयके साम भी श्रद्धालुको जानेमें संकोच होता है, यह बात राजोने प्रमाणित कर दी।

राजा साहिब कुछ कहना ही चाहते थे कि उनकी दृष्टि राजोके बढ़े हुए पैरपर पड़ी। उन्होंने तुरन्त ही पहचान लिया। समझ गये कि वह आना चाहती है, किन्तु उससे आया नहीं जाता। बोले,—आ बेटी।

ज्ञानदत्तकी दृष्टि दरवाजेपर पड़ी। राजो शर्मीली चालसे किंचित् सिर झुकाये चली आ रही थी। ज्ञानदत्तने दृष्टि समेट ली। राजो आकर एक किनारे कुर्सीपर बैठ गयी। राजा साहिबने कहा,—पंडितजी तेरे लेखकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। ले, परसों तेरी इच्छा पूरी हो जायगी।

राजोने सिर झुकाये हुए ही हाथ जोड़कर एक बार दृष्टि ऊँची करके ज्ञानदत्तकी ओर देखकर पितासे कहा,—यह आपकी कृपा है।

ज्ञानदत्त कुछ कहना चाहते थे, किन्तु न तो उनका साहस ही हुआ और न उन्हें कोई उपयुक्त शब्द ही मिला। हृत्तंत्रियाँ मानस-कोषमें इतनी उद्विग्नतासे शब्दान्वेषण करने लगीं कि उनका कलेजा धकधकाने लग गया।

इतनेमें राजा साहिबने कहा,—अच्छा हिन्दू-संगठन और शुद्धिके सम्बन्धमें आपके क्या विचार हैं?

राजा साहिबने उक्त बात कहकर वह पन्ना ही उलट दिया, जहाँ ज्ञानदत्तको राजोकी बातके प्रत्युत्तरमें कहनेके लिए शब्द

मिलता। अब तो उस पेजका मिलना ही असम्भव है। स्त्री-जातिकी विजय होगयी; उसने अपनी महत्ता दिखला दी, पं० ज्ञानदत्त टपते रह गये। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो राजा साहिबने अपने रूपसी तरुणी कन्याका पक्ष किया। कुचले हुए सर्पकी भाँति झल्लाकर उनका हृदय दूसरी ओर मुड़ा। किन्तु उस झल्लाहटमें विषकी ज्वाला न थी, वरं पश्चात्तापका आकर्षण था; दूसरेके डँसे जानेकी सम्भावना न थी, बल्कि उसकी फुंकार अपनेको ही पीड़ा पहुँचानेवाली थी।

पिताने प्रश्न किया। शान्त-स्वभावा राजो उत्तर सुननेके लिए आशाभरी दृष्टिसे पंडित ज्ञानदत्तकी ओर निहारने लगी। उसे यह देखना है कि इस विषयमें ज्ञानदत्तके और उसके बिचार एक ही हैं या विभिन्न। ज्ञानदत्तने गम्भीर भावसे कहा,—हिन्दू-संगठनका होना बहुत जरूरी है; इससे हमारा भविष्य समुज्वल होगा। इसमें मेरा यही बिचार है, जो नेता-लोग समाचार-पत्रोंमें तथा व्याख्यानोंमें समय-समयपर प्रकट कर चुके हैं और कर रहे हैं। किन्तु शुद्धिके सम्बन्धमें मेरे बिचार कुछ भिन्न हैं। जबतक हिन्दुओंमें पूर्ण संगठन न हो जाय, उनमें जातीयताका भाव पैदा न हो जाय, वे अपना दायित्व न समझने लग जायँ, तबतक शुद्धि करना ठीक नहीं। इस समय शुद्धिसे लाभकी अपेक्षा हानि अधिक हो रही है। शुद्धिका काम तो ज़ोरोंपर चल रहा है, किन्तु शुद्ध किये हुए लोगोंके लिए समाजमें उचित व्यवस्था नहीं। उन्हें उचित

सम्मान देनेमें हिन्दू समाज हिचक रहा है। सोचनेकी बात है कि, जो मनुष्य कुछ दिनोंतक दूसरे समाजमें बराबरीका दर्जा ग्रहण कर चुका है और उसे उस समाजमें कोई अपमानित करनेवाला या हेय दृष्टिसे देखनेवाला नहीं है, वह शुद्ध होकर हिन्दू-समाजमें आनेपर निरादृत होकर क्यों रहेगा? वह तो हिन्दू-समाज और हिन्दू-धर्मकी उच्चताको भलीभाँति समझते हुए भी फिर पर-धर्मानुयायियोंमें जा मिलेगा। क्योंकि कोई मनुष्य जातीय अपमान नहीं सहन कर सकता। आजकल बहुधा यही बात हो रही है। इस समय कितने ही लोग शुद्ध होकर हिन्दू हो रहे हैं, किन्तु हिन्दुओंमें उचित स्थान न पानेपर उसे त्यागकर दूसरे धर्ममें चले जा रहे हैं। इससे बहुत बड़ी हानि हो रही है। ऐसे लोग हिन्दू धर्मके कट्टर शत्रु बन जाते हैं। इसलिए मेरा विचार है कि शुद्धिका आन्दोलन बड़ी गम्भीरताके साथ चलानेमें लाभ है। पहले हमें अपने समाजमें दृढ़ता और उदारता लानेकी आवश्यकता है; बच्चे-बच्चेको धर्मका सच्चा रूप समझाना चाहिए। अभी हमारा समाज धर्मका अर्थ ही नहीं जानता। इससे अधिकांश मनुष्य धर्मको अपनी बपौती समझते हैं। ऐसे लोगोंको यह मालूम ही नहीं कि धर्म बिलकुल स्वतंत्र वस्तु है। धर्म किसी व्यक्ति-विशेष या समाज-विशेषकी पैतृक सम्पत्ति नहीं; जिस धर्मको जो मनुष्य मानता है, वही उसका धर्म है—चाहे उसका जन्म संसारके किसी भी पर-धर्मानुयायीके रज-वीर्यसे

क्यों न हुआ हो धर्म वही उच्च है, जो उदारता-पूर्वक संसारके प्रत्येक श्रद्धालु मनुष्यको अपने गुणोंसे मोहित कर ले।

इसलिए शुद्धि भी ऐसे ही लोगोंकी होनी चाहिए, जो हिन्दू धर्मकी उच्चताको भलीभाँति समझ लें। इसमें शीघ्रता करनेकी आवश्यकता नहीं। क्योंकि हिन्दू धर्मको इसकी आवश्यकता नहीं। कारण यह कि इस धर्ममें किसी तरह-की पोल नहीं है। किन्तु अन्य धर्मोंमें बहुत कुछ पोल है—संकीर्णता है; अतः वे यदि ऐसा करें तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। हिन्दूधर्मका दरवाजा प्रत्येक श्रद्धालुके लिए सम-भावसे खुला हुआ है। इसका भीतरी और बाहरी रूप एकसा है। इसकी व्यापकता, गम्भीरता और उच्चतापर ऐसा कौन समझदार मनुष्य है जो मुग्ध नहीं हो सकता? इसके सिद्धान्त अकाट्य हैं।

इतना कहते ही घड़ीकी ओर दृष्ट गयी। पं० ज्ञानदत्त चौंककर बोले,—ओफ्, समय बहुत होगया। मुझे इसी ट्रेन-से बनारस जाना है। गौरी बाबू प्रतीक्षा करते होंगे। अच्छा अब आज्ञा दीजिये, इस विषयमें तो मेरे विचार जो कुछ हैं वे समाचार-पत्रसे आपको मालूम ही होते रहेंगे।

यह कहकर ज्ञानदत्त उठनेका उपक्रम करने लगे। राजा-साहिबने पूछा,—क्या बनारस किसी जरूरी कामसे जा रहे हैं? संगठन और शुद्धिकी बात अधूरी रह गयी; आपके विचार तो प्रकट होगये, किन्तु मैं एक भी सन्देह न कर

सका। खैर, फिर कभी बातें होंगी।

एक ही सिलसिलेमें इतनी बातें कह गये कि ज्ञानदत्त उत्तर देते-देते रुक गये। राजा साहिब भी अपनी भूल समझ गये। बोले,—हाँ, वहाँ कोई अपना काम है?

ज्ञान—जी नहीं, वहाँ एक सभा होनेवाली है।

राजोसे न रहा गया। झट पूछ बैठी, कबतक आइयेगा?

आवेशमें उसके मुखसे ऊपरका प्रश्न निकलते ही वह मन ही-मन सहम गयी। सच है, दिलका भाव छिपाये नहीं छिपता।

उसके प्रश्नमें संतोष-जनक उत्तर पानेकी कितनी उत्कण्ठा-पूर्ण उत्सुकता थी, कितनी दीनता थी, यह बात मानव-हृदय-पारखी ज्ञानदत्तसे छिपी न रही। कहा,—चार-पाँच दिनके भीतर ही लौट आऊँगा।

राजो और कुछ न पूछ सकी। सोचने लगी,—चार-पाँच दिनतक दर्शन नहीं मिलेंगे। पुरुष-जातिका विश्वास ही क्या? सम्भव है, महीनों रह जायँ।

राजा साहिब कुछ पूछनेहीवाले थे कि ज्ञानदत्त उठकर खड़े होगये और नम्रता-पूर्वक बोल उठे,—अब आज्ञा दीजिये, नहीं तो गाड़ी न मिलेगी।

राजो भी नीचा सिर किये उठकर खड़ी होगयी। 'अच्छी बात है, आनेपर दर्शन दीजियेगा', कहते हुए राजा साहिब भी उठकर खड़े हुए और प्रणाम किया। राजोने भी दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। ज्ञानदत्त आशीर्वाद देनेके बहाने-

से एक बार आँख भरकर उसको देखते हुए चल दिये।

वह चले गये। अब कई दिनोंतक उनकी सूरत दिखायी न पड़ेगी, यह सोचकर राजोका चेहरा फीका पड़ गया। यदि ज्ञानदत्त उसके कोई लगते होते, तो अवश्य ही वह अपने दिलका भाव घरवालोंसे प्रकट करती। किन्तु ऐसा न होने-के कारण लाचार हो उठकर ऊपर चली गयी।

दिनभर राजोको कोई काम नीक नहीं लगा। भोजन तो उसे विषसे भी अधिक विषाक्त प्रतीत हुआ। न तो पुस्तक पढ़नेमें ही उसका जी लगा और न किसी दूसरे काममें ही। उसकी इस अस्थिरतामें ही रजनीके अभिसार करनेका पथ छोड़कर सन्ध्या धूसर दिगन्तकी ओर चली गयी। आसमान-में तारे चमक उठे। रातमें उसे नींद भी अच्छी तरह नहीं आयी। वह कई बार सोयेमें चिहुक उठी, झपकी लगते ही ज्ञानदत्त की याद उसे सताने लगती थी।

——:*:——

बीसवाँ परिच्छेद

जिस प्रकार क्रोधका अन्तिम परिणाम सर्वनाश है, उसी प्रकार चिन्ताका फल मृत्यु या निर्भीकता है। चिन्तिता रमा अब बहुत कुछ निडर हो चली। दिवाकर इस कदर उसके पीछे पड़ गया कि एक दिन तो वह आत्म-हत्या करनेसे बच गयी।

रातका समय था। मूसलधार वृष्टि हो रही थी। रमाकी माँ अपने मैके गयी थी, इसलिए वह कमरेमें अकेली सोयी थी। आधी रातके समय पति-विरहाकुला रमा नाना प्रकारकी चिन्ताओंमें निमग्न जाग रही थी। आज यदि उसके सिरपर कोई होता तो, दिवाकरकी ऐसी हिम्मत कभी न पड़ती। वह अपनी व्यथा किससे कहे ? संसारमें कौन सुनेगा ? स्वामी तो पत्रका उत्तरतक नहीं देते। बड़ी देरके बाद उसने बत्ती बुझायी और निद्रा देवीका आवाहन करने लगी। लगभग एक बजे रातको उसकी प्रार्थना स्वीकार हुई,—सो गयी।

इधर दिवाकर रमाके नींदकी बाट जोह रहा था। आज कई दिनोंसे रमाको न देख पानेके कारण वह अपनी नीच वासनाकी पूर्त्तिके लिए एक दाईसे मिला और उसे दो रुपये देकर कहा,—आज तू मुझे किसी हिकमतसे घरमें पहुँचा दे, मैं तुझे पाँच रुपये इनाम दूँगा।

दाईने पहले तो मंजूर नहीं किया, बाद लालचमें आकर कहा,—'दस रुपये दो तो मैं भीतर पहुँचा दूँ।'

दिवाकरने स्वीकार कर लिया। दाईने दस बजे रातको घुड़सालके पास मिलनेके लिए कहा।

ठीक समयपर दिवाकर वहाँ पहुँच गया। आधे घंटेके बाद दाई आ गयी। दिवाकरने कहा,—मैं बहुत देरसे खड़ा हूँ।

दाईने कहा,—हाँ। किन्तु वह अभी जाग रही हैं। पहले तो कोई पोथी पढ़ रही थीं, पर अब शान्त लेटी हैं। मैं समझती हूँ, अब बहुत जल्द सो जायँगी।

दिवाकर—वह चिट्ठी दे दी? उसने कुछ कहा भी?

दिवाकरने ज्ञानदत्तके नामसे एक पत्र लिखकर दिया था, जिसमें आज रातको गुप्त रीतिसे मिलनेकी बात लिखी थी। रमाको कई कारणोंसे पत्रपर विश्वास नहीं हुआ। चाहे उसने दिवाकरपर सन्देह न भी किया हो, पर इतना तो वह अवश्य समझ गयी कि ये उनके अक्षर नहीं हैं। दाईके सम्बन्धमें उसने यही सोचा कि यह बेचारी क्या जाने, किसीने दिया होगा, इसने लेकर मुझे दे दिया। फिर भी पूछा,—यह पत्र तुझे किसने दिया? दाईने कहा,—मैं उस आदमीको नहीं पहचानती रानी।

दिवाकरने पूछा,—अच्छा, तू जाकर देख आ, वह सो गयी या नहीं।

दाईने कहा,—आप साथ ही चलें। क्योंकि मुमकिन है कि

वह उठकर दरवाजा बन्द कर लें। आज सोते समय कहती थी थीं, कि माँ नहीं है, देखना किवाड़ बन्द करके ताला लगा देना और उसकी चाभी मुझे दे देना। इसलिए यदि वह ताला बन्द कर लेंगी तो मेरा कोई वश न चलेगा। इसीसे कहती हूँ कि, तुम भी चलो। मैं एक कोठरीमें तुम्हें छिपा दूँगी, यदि वह अपने हाथसे भी ताला बन्द करने आवेंगी तो तुम्हें देख न सकेंगी।

दिवाकरने ऐसा ही किया। भीतर जाते ही दाईकी बात सच हुई। दरवाजेका आवाज़ होते ही रमा बोल बैठी,—कौन?

दाईने धकधकाते हुए हृदयसे कहा,—मैं हूँ। दरवाजा बन्द कर रही हूँ।

यदि कोई पत्र न मिला होता तो रमा इतनी चौकन्नी न रहती। झट उठी और बत्ती लेकर आँगनमें पहुँची। प्रकाश देखते ही दाईका प्राण सूख गया। यदि रमा चार क़दम और बढ़ी होती तो सारा भेद खुल जाता।

तबतक दाई चाभी लेकर आ गयी। रमा उसे लेकर अपने कमरेमें चली गयी। दाई दिवाकरको कोठरीमें करके दरवाजा लगाकर अपने सोनेकी जगहपर पहुँची ही थी कि रमा बत्ती हाथमें लिए फिर निकली और जाकर ताला खटखटाकर देख आयी।

दिवाकरकी कार्य-सिद्धि रमाकी निद्रितावस्थामें होनेवाली थी, इसलिए वह कोठरीसे निकलकर रमाका कमरा झाँक

लिया करता था। यह घर उसका अपरिचित नहीं था। ज़रा भी खटका होनेपर इधर-उधर छिप जाता था और भ्रम सिद्ध होनेपर फिर कोठरीमें जा बैठता था।

रमाके सो जानेपर दिवाकर चुपकेसे उसके कमरेमें घुस गया। थोड़ी देरतक शान्त खड़ा रमाके सोनेकी आहट लेता रहा। जब उसे यह निश्चय होगया कि वह बेखबर सो गयी है, तब उसने भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिया।

उस समय दिवाकर फूला नहीं समाता था। कुछ ही मिनटकी देर है, जब उसकी अभिलाषा पूरी हो जायगी। फिर तो सदाके लिए कण्टक दूर हो जायगा। धीरेसे रमाका शरीर-स्पर्श किया। रमा हिलीतक नहीं। उसने आँचर पकड़-कर आहिस्तेसे थोड़ा हटा दिया। फिर भी रमाको खबर न हुई। उसने एक दियासलाई घिसकर प्रकाश किया। देखा कमल-नेत्र सम्पुट मारे हुए हैं। वस्त्र हट जानेके कारण कलश-वत् स्तनका कुछ भाग अपनी अनुपम छटा दिखाकर मनको बरियाईं चुराये लेता था। दिवाकरकी काम-वासना चरम सीमापर पहुँच गयी। वह मदान्ध होगया, अतः प्रकाशदेव भी मुख छिपाकर भाग गये। अब अधिक देरतक वह अपनेको न रोक सका। रमापर बलात्कार करनेके लिए—उसका सती-त्व नष्ट करनेके लिए अधम—नारकी और निर्लज्ज दिवाकर चारपाईपर बैठ गया।

मँचमँचाहटसे रमाकी नींद कुछ खुलसी गयी। फिर

भी यह नहीं कहा जा सकता वह जाग गयी। दिवाकर सन्नाटा खींचकर सोचने लगा,—अब जागनेसे ही क्या होगा। छातीसे लगा लेना चाहिए। फिर सोचा,—यदि इतने-पर भी इसने पहलेकी भाँति मेरी बात न मानी तो सारा किया-कराया काम चौपट हो जायगा। इसलिए इसे सो जाने देना ही ठीक है। किसी तरह सतीत्व नष्ट करनेके बाद ही इसे मालूम होने देना उचित है। तब तो अधिकसे अधिक यही न होगा कि झुँझलायेगी। मैं उस झुँझलाहटका आनन्द लूटूँगा। हमेशाके लिए रास्ता साफ हो जायगा। जिन्दगीभर यह सुन्दरी मेरी चेरी बनकर रहेगी। जो कहूँगा, वही करेगी। किसी भी कामके लिए नाहीं न कर सकेगी। यदि करेगी भी तो आजकी रातका स्मरण कराके मना लूँगा।

यही स्थिर करके कुछ देरतक सन्न रहा। रमा फिर सो गयी। राक्षसने देवीके पैर छुये। शायद देवीने समझा कोई भक्त होगा, चरणामृत लेना चाहता होगा। राक्षसने कठोरता दिखलायी, देवीके सतीत्व धर्मने उसे सतर्क कर दिया। राक्षसने बल-पूर्वक काम लेना चाहा; देवीके तेजने धक्का देकर उस पातकीको नीचे गिरा दिया। राक्षसकी नीचतापूर्ण कृतिने उसके मुखपर अन्धकारकी कालिमा पोत दी थी। देवी पहचान न सकी। उसे प्रकाशकी शरण लेनी पड़ी। राक्षसने फिर झपटकर देवीको पकड़ना चाहा; देवीने ऐसा कसके झटका दिया कि वह धड़ामसे दूर जा गिरा।

सच है ! मानसिक वृत्तियोंके पतनसे मनुष्यका बल-पौरुष धूलमें मिल जाता है, और इनके उन्नतोन्मुखी होनेसे संसारकी सारी शक्तियाँ स्वयं ही आ जाती हैं। यदि ऐसा न होता तो दिवाकरको एक सुकुमारी अबला इस प्रकार न पछाड़ सकती तेजके सामने तम क्योंकर टिक सकता है ?

चोरकी शक्ति आधी होती है। दिवाकर अधिक साहस न कर सका। सँभलकर उठा और झटसे दरवाजा खोलकर भागा। बाहर जाकर ताला बन्द पाया। कोठरीमें जा छिपा। यदि उसमें तनिक भी बुद्धि होती तो आजकी घटनासे वह शिक्षा ग्रहण कर लेता कि किसी साध्वी रमणीका सर्वस्व अपहरण करना साधारण काम नहीं।

इधर रमाका शरीर थरथर काँप रहा था। उसे अपना कर्त्तव्य-पथ दिखायी ही न पड़ता था। कभी तो वह अपनी भूल स्वीकार करती थी कि ऐसे समयमें हल्ला मचाना चाहिए था, वह नीच पकड़ा गया होता तो अच्छा था और कभी यह सोचती थी कि उसका भाग जाना अच्छा ही हुआ ; सम्भव था, पकड़ जानेपर वह कोई झूठा कलंक मुझपर भी लगाता। उसे इस बातकी सुध ही न थी कि बाहरके दरवाजेमें ताला बन्द है, दुष्टात्मा घरमें छिपा बैठा है। बहुत कुछ सोचनेके बाद उसने अपने जीवनका अन्त कर डालना निश्चय किया। यत्न सोचने लगी। सामने लटकती हुई तलवारपर दृष्टि पड़ी। उठी, और तलवारको खींचना ही चाहती थी कि किसीके

आनेकी आहट मिली। तुरन्त ही रुक गयी। विचार-दिशाने पलटा खाया। सोचा,—आत्महत्यासे बढ़कर संसारमें कोई पाप नहीं। वही महान पाप मैं करने जा रही थी। किस लिए? एक अधमके भयसे। कितनी लज्जा-जनक बात है! क्या मैं अपने धर्मकी रक्षा भी नहीं कर सकती? प्राचीन देवियोंके गौरवका तनिक भी प्रभाव मेरे हृदयपर नहीं पड़ा? संसारमें मैं क्या नहीं कर सकती। ऐसा कभी न करूँगी। नीच दिवा-करसे ईश्वर मेरी रक्षा करेंगे। आज भी तो परमात्माने ही मुझे जगाकर बचाया है।

इतनेमें उसका छोटा भाई विजय आँखें मलता हुआ आया और उद्विग्न स्वरमें बोला,—बहन जल्दीसे चाभी दो, सबलोग आ गये। मैंने इतना सहेजा था, पर किसीने मुझे नहीं जगाया।

रमाने कुछ नहीं कहा। तकियेके नीचेसे चाभी उठाकर भाईको दे दी। विजय दौड़ता हुआ गया और दरवाजा खुला छोड़कर ही चला गया।

दिवाकरके लिए अचानक ही सुयोग प्राप्त हुआ। अबतक वह गहरी चिन्तामें पड़ा हुआ था। यदि सबेरे लोग देखेंगे तो क्या गति होगी? आज रमा जरूर सबसे कह देगी। अब कुशल नहीं। ऊँः, कह दिया जायगा कि रमाके बुलानेसे आया था। यदि वह न चाहती तो मैं भीतर कैसे आता? किन्तु जब देखा कि विजय दरवाजा खुला छोड़कर ही चला गया, तब धीरेसे उठा और छिपकर अपने घर चला गया। उसके सिर-

का भार बहुत कुछ हलका होगया—अचानक ।

जयजयकारकी ध्वनिसे रमाका ध्यान भंग हुआ । पहले तो वह चौंक पड़ी कि यह आवाज कहाँसे आ रही है । बाद उसे स्मरण हुआ कि आज ही साढ़े तीन बजेकी गाड़ीसे नेता-लोग आनेवाले थे । जान पड़ता है कि वे आ गये । घड़ीमें देखा तो साढ़े चार बज गये थे । 'जय-ध्वनि' उत्तरोत्तर तीव्र होती गयी । घरकी सब स्त्रियाँ उठ गयीं । भावजोंने रमाको भी जगा दिया । अब वह ध्वनि दरवाजेपर सुनायी पड़ने लगी । मालूम हुआ कि गाँवके बहुतसे लोग साथमें हैं ।

सब स्त्रियाँ देखनेके लिए ऊपर खिड़कीके पास जाने लगीं । रमाको भी जबर्दस्ती साथ लेती गयीं । देखा, हजारों आदमी साथमें हैं । गैसकी बत्ती जल रही है । तीन युवक हाथीपर बैठे हैं । पीलवान हाथीको बिठानेका उपक्रम कर रहा है । पं० सदायतनजी नीचे खड़े हैं । नौकर कुर्सियाँ निकालनेमें लगे हैं । आकाश बिलकुल स्वच्छ होगया है ।

तीनों युवक हाथीसे उतर पड़े । सदायतनजीने बड़े सम्मानसे सबलोगोंको यथायोग्य स्थानपर बिठाया । रमाकी दृष्टि भी उधर जा पड़ी । न जाने क्यों उसका सारा दुःख दूर होगया, फिर भी आँखोंसे आँसू गिरने लगा ।

थोड़ी ही देरमें बिलकुल उजाला होगया । सबलोग नित्य-कर्ममें लग गये । स्त्रियाँ भी नीचे चली आयीं । किन्तु रमा वहीं बैठी रह गयी । एक बार फिर अच्छी तरहसे देख लेनेकी

उसकी इच्छा थी। साध पूरी करके वह भी नीचे उतर आयी। यदि जलपानकी चीजें तैयार करनेका भार उसपर न होता, घरमें माँ मौजूद होती तो कदाचित वह नीचे उतरती ही न। किन्तु दायित्वने उसे वहाँ नहीं रहने दिया। फिर भी वह यह सोचकर गयी कि अवसर मिलनेपर आकर देख जाऊँगी।

मकानसे आधी मीलकी दूरीपर सभा-भवन बनाया गया था। आठ बजे सभाका कार्य प्रारम्भ हो जायगा, अतः सब-लोग जल्दीमें पड़े थे। झटपट स्नान-सन्ध्यासे निवृत्त होकर सबलोग जलपान करने बैठे। रमा सब चीजें भाइयोंको देकर एक बार फिर ऊपर जाकर देख आयी। इस बार भी वह अधिक न ठहर सकी। भय था, कोई बुलावे न। संकोच था, लोग क्या कहेंगे।

जलपान कर चुकनेके बाद पं० सदायतन तथा और भी कई प्रमुख व्यक्तियोंके साथ तीनो महाशय सभामें गये। निश्चित समयपर सभाका कार्य प्रारम्भ होगया। प्रस्ताव तथा अनुमोदन-समर्थनके बाद पं० सदायतनजीने सभापतिका आसन ग्रहण किया। मंगलाचरण हुआ, दो-तीन छोटे-मोटे व्याख्यान हुए। बाद पं० ज्ञानदत्तजीका भाषण हुआ। इनको वक्तृता सुनकर जनता मुग्ध होगयी।

यह देखकर बनारस, मिर्जापुर तथा इलाहाबादसे आये हुए कुछ बंगाली तथा मद्रासी सज्जन जो कि अच्छी तरहसे हिन्दी नहीं जानते थे, कह उठे कि,—खास-खास बातें अंग्रेजी-

में कह दी जायँ—ताकि हमलोग भी समझ सकें।

पंडित ज्ञानदत्तने अपने पढ़े-लिखे भाइयोंकी प्रार्थना विशेष रूपसे स्वीकार की और एक घंटेतक हिन्दीमें व्याख्यान दे चुकनेके बाद भी आधे घंटेतक अंग्रेजीमें बोले। उनकी लच्छेदार अंग्रेजी भाषा सुनकर पंडित सदायतनजी पुलकित हो उठे। क्यों न हो ! जिसके व्याख्यानकी प्रशंसा जनता कर रही है, विद्वानलोग कह रहे हैं—जैसा रूप है, वैसा ही गुण भी है, वह मनुष्य उनका जामाता है; इससे बढ़कर सौभाग्यकी बात और क्या हो सकती है ? अभीतक तो उन्होंने पहचाना भी न था। क्योंकि एक तो आज तीन-चार वर्षके बाद देख पाये हैं, दूसरे उनकी दृष्टिमें तो ज्ञानदत्त एक अत्यन्त साधारण तथा अल्प शिक्षित लड़का है, उन्हें क्या मालूम कि ज्ञानदत्तने इतनी उन्नति कर ली; किन्तु जब उन्हें खड़ा होकर यह कहना पड़ा कि "इसके बाद पं० ज्ञानदत्तजीका ओजस्वी भाषण होगा, आपलोग ध्यानसे सुनें" तब उन्हें यह नाम कुछ परिचितसा जान पड़ा। कुछ क्या, पूर्ण परिचित। रूप भी परिचित प्रतीत हुआ। काशी बाबूसे पूछनेपर सन्देह निवृत्त हो गया। इसके लिए उन्हें काशी बाबूके सामने बड़ा ही लज्जित होना पड़ा। फिर तो वह इतने व्यग्र हो उठे कि कब ज्ञानूका अभिभाषण समाप्त हो और बातें करनेकी लालसा पूर्ण हो। मारे हर्षके अपने बड़े लड़केको बुलाकर तुरन्त ही सुसम्वाद सुनाया। उसने कहा,—मैं तो अच्छी तरह पहचान रहा था

बाबूजी। किन्तु जब आपने कुछ नहीं कहा, तब मुझे भी सन्देह होगया कि सम्भव है कोई दूसरे हों—क्या एक शकलके दो आदमी नहीं होते?

मनुष्य-स्वभाव बड़ा ही विचित्र है। नालायक लड़केको लोग अपना पुत्र कहनेमें अपमान समझते हैं और किसी योग्य तथा प्रतिष्ठित पुरुषको ठूँस-ठाँसकर अपना ताऊ बना लेनेमें गौरव। जिस ज्ञानदत्तकी चर्चा करनेमें भी इस परिवारके लोग अपनी अप्रतिष्ठा समझते थे, उसीकी चर्चा आज बड़े हर्षसे करने लगे। यहाँतक चर्चा बढ़ायी गयी कि दस-पाँच मिनटके भीतर ही श्रोता-मंडलीके बच्चे-बच्चेको यह बात मालूम होगयी कि व्याख्याता महाशय पं० सदायतनजीके दामाद हैं। यदि कोई समीपस्थ मनुष्य झुककर कानमें पूछता तो पं० सदायतन बड़े गर्वसे सिर हिलाकर सूचित करते कि, हाँ, यह मेरे दामाद ही हैं।

सभामें काशी बाबूकी स्कीम कही गयी। पं० ज्ञानदत्तके व्याख्यानसे प्रभावान्वित किसानों तथा जमींदारोंने बड़े उत्साहसे उसे स्वीकार किया। पाँच आदमियोंकी एक कमेटी बना दी गयी। उसके स्थायी सभापतिका पद पं० सदायतनजीको शिरोधार्य करना पड़ा। लगभग बारह बजेके अध्यक्ष तथा आगत सज्जनोंको धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई। पं० ज्ञानदत्त, गौरी बाबू तथा काशी बाबूको साथ लेकर सदायतनजी अपने घर आये। साथमें बहुतसे गण्यमान्य सज्जनों-

की भीड़ थी। आज सबके हृदयमें नया उछाह है।

भोजनके समय पं० ज्ञानदत्तको साथ लेकर सदायतनजी स्वयं चौकेमें बैठे। यह बात बिलकुल नयी थी। सदायतनजी किसी रिश्तेदारके साथ भोजन करने नहीं जाते थे। ज्ञानदत्त-को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। अब रमाका आदर बहुत बढ़ गया। जो भावजें पहले रमाके सामने गुमान करती थीं, वे लज्जित होगयीं। पास-पड़ोसकी स्त्रियाँ भी रमाके भाग्यकी सराहना करने लगीं। किन्तु इतना सम्मान प्राप्त करनेपर भी रमाने किसी बातका घमंड नहीं किया बल्कि अपनी नम्रता और विनय-शीलतासे सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। स्वामीकी इतनी प्रशंसा सुनकर अब उसका हृदय पति-सम्मि-लनके लिए इतना क्षुभित हो उठा कि रातकी घटनाका दुःख ही दूर होगया। पहले खिड़कीसे देखनेपर उसके दिलमें जो उत्कंठा उत्पन्न हुई थी, उससे अब भिन्न होगयी। पहले मिलन-क्षोभमें ग्लानिका उद्गार था, अब कौतूहलका उमड़ता हुआ प्रवाह; पहले वह पत्रोत्तर न देनेके लिए स्वामीको उला-हना देती, रोती, अपने ऊपर बीती हुई बातोंको बिलख-बिलख-कर सुनाती, अब वह पत्रोत्तर देनेके लिए समय न मिलनेपर समवेदना प्रकट करेगी, हास्य-युक्त केलि-कलह करेगी, और करेगी बीती हुई बातोंकी मार्मिक भाषामें गम्भीरतापूर्ण स्पष्ट समालोचना।

इधर ज्ञानदत्त भी रमासे मिलकर सारा भेद सुननेके

लिए उत्सुक थे। यदि घरपर होते तो सम्भवतः रमाकी याद भी न करते; किन्तु यह तो उनका घर नहीं। रमा क्या साधारण पिताकी पुत्री है ? उनका इतना आदर रमाके ही कारण तो हो रहा है। यदि रमा उनसे न ब्याही होती तो इस घरमें ऐसा सरस-सम्मान क्योंकर होता ? अतः रमाके इस उपकारका भार ज्ञानदत्तको दबा बैठा। सोचा,—मिलकर भाभीद्वारा प्राप्त हुए समाचारोंके तथ्यातथ्यका अनुसन्धान लगाना चाहिए। देखना है, रमा क्या उत्तर देती है।

इस प्रकार प्रतीक्षामें पूरे दो दिन बीत गये। स्त्रियाँ ज्ञानदत्तको घरमें बुलानेके लिए अवसर ही ढूँढती रह गयीं, सफल न हुईं। ज्ञानदत्तको एक मिनटके लिए भी अवकाश न मिला। नये कार्यकी व्यवस्था करनेमें ही रातके एक-दो बज जाते। उसके बाद भी उनके पास बाहरी आदमियोंका समूह डटा रहता। बीसों आदमी वहीं सो जाते थे। इतने आदमियोंमें एक-न-एक आदमी रातभर जागता ही रहता था। तीसरे दिन ज्ञानदत्तजी अपने साथियोंके साथ कलकत्ता जानेको तैयार हुए। घरकी स्त्रियोंने पं० सदायतनजीके पास सन्देशा कहला भेजा कि आज वे किसी प्रकार भी न जाने पावें।

ऐसा ही हुआ भी। बहुत अनुरोध और अनुनय-विनय करनेपर भी ज्ञानदत्तको छुट्टी नहीं मिली। गौरी बाबू और काशी बाबूको भी रह जाना पड़ा। सन्ध्याके समय घूम-फिरकर आनेके बाद भोजन करके सबलोग सो गये। पं० ज्ञानदत्त

एकान्तमें जाकर समाचार-पत्रके लिए लेख लिखने लगे। कई दिनों-की झंझटके कारण तथा नींद पूरी न होनेके सबबसे आज सबलोग बहुत जल्द गहरी नींदमें चूर होगये। पं० ज्ञानदत्तने ऊँघ-ऊँघकर किसी प्रकार अग्रलेख समाप्त किया। अब और लिखना उनकी शक्तिसे बाहर था। निद्रादेवीने आक्रमण कर दिया। आक्रमण ही नहीं किया—अधिकार भी जमा लिया। वह सोनेके लिए उठकर जाना ही चाहते थे कि एक नौकरने आकर बड़े अदबके साथ कहा,—घरमें बलावथई आपके भइया।

इतना सुनते ही ज्ञानदत्तकी नींद उचट गयी। सोचने लगे,—क्या करना चाहिए। उससे भेंट करना ठीक नहीं। आँखों-देखी बातकी परीक्षा क्या ली जायगी? फिर न जाने क्या सोचकर वह उठे और सुनहली रिष्टवाच कलाईमें बाँधते हुए बोले,—ठहरो चलता हूँ।

यह कहकर वह कमीज गलेमें डालकर बटन लगाते हुए स्लीपर चटकाते चल पड़े। आँगनमें पहुँचनेपर नौकर सीढ़ी-की ओर संकेत करके बोला,—ऊपर चला जा भइया।

यह कहकर नौकर गायब होगया। ज्ञानदत्त ऊपर गये। उस समय उनकी ठीक वही दशा थी जो किसी बड़ी सभामें पहले-पहल व्याख्यान देनेके लिए प्लेटफार्मपर जाते समय नये व्याख्याताकी होती है। ऊपर पहुँचते ही सरहजोंने आव-भगत की और एक कमरेमें ले जाकर बिठाया। एकने कहा,—जीजाजी तो ऐसे बदल गये कि मैं पहचान ही न सकी।

ज्ञानदत्तने सहमते हुए नीचा सिर किये कहा,—यह मेरा दुर्भाग्य है कि आपलोग मुझे इतना भूल गयीं।

बड़ी सरहज—क्यों न! यह तो नहीं कहते कि बिना दर्शन दिये ही भागे जाते थे।

ज्ञान—क्या करता; दो दिनतक ड्योढ़ीपर पड़े रहनेपर भी तो पुकार नहीं हुई।

मझली सरहज बोलनेमें बड़ी प्रवीण थी। उसने घूँघटके भीतर मुसकराकर कहा,—तो क्या हमलोग भी 'सरला' हैं कि बाहर पुकारती फिरें ?

ज्ञान—नहीं जी, आपलोग तो नौकरोंसे बुला भेजती हैं, जिसमें किसीको मालूम भी न हो।

बड़ी—क्यों जीजाजी, क्या वह सचमुच ही लोगोंको पुकारती फिरती हैं।

ज्ञान—भाई और भतीजेको पुकारनेमें लज्जा ही क्या है ?

इसी प्रकार थोड़ी देरतक ज्ञानदत्त "श्वशुरपुर-निवासं स्वर्ग-तुल्यं नराणाम्" का अनुभव करते रहे। पश्चात् बड़ी सरहजने ज्ञानदत्तके हाथमें अँगूठी पहनायी और एक गिन्नी देकर प्रणाम किया। शेष पाँच सरहजोंने भी एक-एक अशर्फी देकर प्रणाम किये।

यह रसम पूरी हो जानेके बाद ज्ञानदत्तको बैठनेके लिए कहकर सब स्त्रियाँ वहाँसे खिसक गयीं। जाकर रमाके साथ खींचातानी करने लगीं। वह संकोचके कारण ज्ञानदत्तके

पास जानेके लिए राजी ही न होती थी । अन्ततः रमाकी विजय हुई । सब स्त्रियोंको हार माननी पड़ी ।

पड़ोसकी एक युवती जो कि पदमें ज्ञानदत्तकी साली लगती थी, बोली,—इस तरहसे काम न चलेगा। तुमलोग यहाँसे हट जाओ, मैं सब काम अभी ठीक किये देती हूँ ।

सब स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ होगयीं। वह ज्ञानदत्तके पास जाकर बोली,—चलिये, उस कमरेमें बैठिये, यहाँ आपको कष्ट है । राम-राम, बातोंकी धुनमें इसकी सुध ही नहीं रही ।

ज्ञानदत्तने कहा,—कष्ट कुछ नहीं है, अच्छा तो है ।

वह मुसकराकर तिरछी निगाहोंसे प्रेमकी सूचना देती हुई बोली,—मैं यहाँ रहने ही न दूँगी ।

ज्ञानदत्तने हँसकर कहा,—यदि इतनी बड़ी दृढ़ प्रतिज्ञा है, तो चलिये वहीं चलता हूँ ।

तदनन्तर ज्ञानदत्तको ले जाकर वह स्त्री उसी कमरेमें कर आयी, जहाँ रमा थी । जब वह भीतर चले गये, तब उसने बाहरसे किवाड़ लगा दिये ।

यह कमरा धनी गृहकी सूचना दे रहा था । ज्ञानदत्त पलँग-पर बैठ गये । रमा उनके पैरों पड़ी । संकोच भावसे बोली,—धन्य भाग्य कि आपके दर्शन मिले । कहिये, कुशलसे तो थे ?

ज्ञानदत्तने कहा—हूँ ।

उदासीनतापूर्ण 'हूँ' सुनकर रमाके हृदयपर गहरी चोट लगी । उसकी सारी आशाएँ हवा होगयीं । आगे वह कुछ

भी न बोल सकी। बड़ी कठिनाईसे केवल पानका डब्बा दे सकी, सो भी अपने चेतमें रहकर नहीं। बड़ी देरतक निस्तब्धता छायी रही। उसे आशा थी कि स्वामी कुछ पूछेंगे, हृदयसे लगावेंगे, प्यार करेंगे, पर वह सब कुछ भी न हुआ। वह तो 'हूँ' के अतिरिक्त एक शब्द भी नहीं बोले। रमा भी मान किये बैठी रही। सोचने लगी,—जब यह कुछ बोलते ही नहीं हैं तो मैं क्यों बोलूँ ? यह भी तो नहीं पूछा कि तुझपर क्या-क्या बीती। एक बार आँख उठाकर मेरी ओर देखते भी तो नहीं हैं। तने बैठे हैं। देखती हूँ, इस प्रकार कबतक बैठे रहते हैं। बातें होनेपर इन्हें अपनी भूल स्वयं ही मालूम हो जायगी।

रमा अपने विचारकी तरंगोंमें ही हिलोरें ले रही थी, ज्ञानदत्त उठकर बाहर चले आये। उसने उन्हें कमरेसे बाहर निकलते समय देखा भी; किन्तु वह यह निश्चय न कर सकी कि रुष्ट होकर यह जा रहे हैं। सोचा,—पीकदान तो यहीं है, यदि बाहर जाकर ही थूकना चाहते हैं, तो जाने दो मैं न बोलूँगी। किन्तु जब वह नहीं आये, तब उसे अपनी त्रुटि मालूम होगयी। उठी, और बाहर निकलकर देख आयी; कहीं दिखायी न पड़े। बाद पलँगपर आकर लेट गयी,— व्याकुल हो उठी। हाय, कुछ पूछ भी न सकी, वह चले गये। अब उनका दर्शन नोहर होगया। यह समय उसके मान करनेका नहीं था। अब वह अधिक देरतक अपनेको सँभाल न

सको। सिसकने लगी। थोड़ी देरके बाद यह सोचकर उठी कि,—चलकर तन्न-तन्नकरके उन्हें खोजूँगी। जहाँ सोये होंगे, वहीं पकडूँगी। पैरों पड़कर क्षमा-भिक्षा माँगूँगी, रोऊँगी, कलपूँगी,—गिड़गिड़ाऊँगी। उन्हें पिघलना ही पड़ेगा। मैंने अपराध ही कौनसा किया है कि वह न पिघलेंगे? यदि वह क्षमा न करेंगे तो मैं भी उनका दामन न छोड़ूँगी। इसमें कोई क्या करेगा? यही न, यदि कोई देखेगा तो हँसेगा, मुझे निर्लज्जा कहेगा। बला से! जिसके जो जीमें आवे, कहे! मैं अपने सर्वस्वको छोड़कर सलज्जा बनना नहीं चाहती।

रमा उन्मादिनीकी भाँति झपटकर दरवाजेपर गयी। किवाड़ खोलकर बाहर निकली। जो रमा आजसे पहले कभी आँगनमें भी सन्नाटी रातमें नहीं आयी थी, वही आज निर्भीकता-पूर्वक बाहर बरामदेमें आकर खड़ी होगयी। उसके हृदयमें भयका अङ्कुर ही उत्पन्न नहीं हुआ। किन्तु आगे पैर न बढ़ा सकी। रातका पिछला पहर था, नौकर-चाकर जाग गये थे। बहुत जोर लगाया, पर आगे बढ़नेका साहस न हुआ। लाचार होकर फिर अपने कमरेमें वापस चली आयी। हाय! हाथमें आयी हुई वस्तुको अपनेसे खो बैठी। कल सबेरे ही वह चले जायँगे। भेंट होनेकी कोई उम्मेद दिखलायी नहीं पड़ती—प्रभो!

तड़के ही स्टेशन जानेकी तैयारी होने लगी। सदायतनजीने कहा,—जब यहाँतक आये हो, तब घंटे-दो-घंटेके लिए घर

भी हो आते बेटा। हमारे समधी साहब सुनेंगे तो दुःखी होंगे न।

ज्ञानदत्तने नम्रता-पूर्वक कहा,—जी हाँ, विचार तो मेरा भी ऐसा ही था, किन्तु लाचारी है। आपको तो ज्ञात ही है कि दैनिक पत्रके सम्पादनमें कितनी झंझट रहती है। किसी चीजका दायित्व बुरा होता है।

सदा—अच्छा, जैसा उचित समझो वैसा करो, मुझे कोई आपत्ति नहीं। (गौरी बाबूकी ओर देखकर) अहो भाग्य कि आपका भी पदार्पण हुआ। मैं आशा करता हूँ कि आप इसे प्रथम और अन्तिम आगमन न करेंगे।

गौरी बाबूने कहा,—इस जीवनमें ऐसा होनेकी सम्भावना नहीं है। बड़े-बूढ़े होकर आपने इतनी सुश्रुषा की, इसे आमरण-पर्यन्त मैं नहीं भूल सकता। लेकिन यही सन्तोष है कि माँ-बापकीसी सेवा दूसरा कौन कर सकता है और उनकी सेवामें बच्चोंको लज्जा ही किस बातकी।

सदा—यह समझना आपका बड़प्पन है; मैं तो किसी योग्य नहीं हूँ। अब तो ईश्वरसे यही निवेदन है कि आपलोगोंके सौंपे हुए कार्यको मैं किसी तरह कर सकूँ।

काशी—वाह! यह अच्छी कही। अजी हमलोग तो आपके लड़के हैं। सौंपेंगे आप या हमलोग?

इतनेमें हाथीपर हौदा कसकर महावत आगया। सदायतनजीने जामाताकी यथेष्ट बिदाई की और स्वयं भी स्टेशन-

तक पहुँचानेवाले थे; किन्तु इसे अनुचित समझकर ज्ञानदत्त तथा उनके साथियोंने मना किया।

जब तीनों आदमी हाथीपर सवार होगये, तब ज्ञानदत्तके बड़े साले भी जा बैठे। हाथी चिग्घाड़ मारकर झूमता हुआ स्टेशनकी ओर चल पड़ा। एक-एककर बहुतसे लोग हाथीके पीछे हो लिये।

गौरी बाबूने कहा,—मुझे हाथीकी सवारीपर डर लगता है।

ज्ञानदत्तके साले साहबने कहा,—जी हाँ, यह कोई आरामकी सवारी तो है नहीं। सड़क न होनेके कारण लाचार होकर हाथीकी सवारी करनी ही पड़ती है। यह सवारी मुझे भी पसन्द नहीं आती।

इस प्रकार बातें करते हुए सबलोग स्टेशन पहुँचे और निश्चित समयपर ट्रेन आ गयी। फर्स्टक्लासमें सवार होकर वे निर्दिष्ट स्थानके लिए रवाना होगये। मायाधर दुखी हृदयसे घर लौट आये।
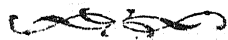
इक्कीसवाँ परिच्छेद
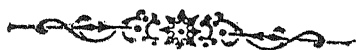
विद्यापुरमें ग्रामोपकारी-सभाका कार्य बड़े उत्साहके साथ होने लगा। पं० सदायतनजीने अपनी विद्या-बुद्धिसे लाभप्रद नये कानून और व्यवसायका प्रबन्ध करके लोगोंको आश्चर्य-में डाल दिया। समूचा गाँव उनका अनुरक्त दास बन गया। यहाँतक कि ब्याहादिके समय भी लोग घरका मालिक समझ-कर उनसे अनुमति लेने लगे। जिस प्रकार वह कार्य करनेके लिए कहते, जितना खर्च करनेके लिए कहते, वैसा ही लोग कार्य करते और उतना ही खर्च करते। वर्ष डेढ़ वर्षके भीतर गाँवका इतना सुधार होगया कि भूखा-दूखा मनुष्य तो ढूँढ़नेपर भी न मिलता। किसीको खाने-खर्चनेकी तंगी नहीं रह गयी। सबलोग दिनभर अपने घरका काम-काज करते और फुरसतके समय कारखानोंमें आकर चहल-पहलके साथ पैसा कमाते। स्त्रियाँ जहाँ पहले दिनभर गपाष्टक करनेमें लगी रहती थीं, कलह करती थीं, वहाँ अब रमाके पास बैठकर अच्छी-अच्छी बातें सुनने लगीं, सीने-पिरोने एवं बेल-बूटेका काम सीखने लगीं तथा पढ़ने-लिखने लगीं।

ज्ञानदत्तके जानेके बाद कुछ दिनोंतक तो रमा बहुत दुखी रही, किसी काममें उसका दिल लगता ही न था; यहाँतक

कि जहाँ पहले कभी पढ़नेसे उसका जी ऊबता ही न था, वहाँ अब इस घटनाके बाद उससे पुस्तकोंकी ओर ताका भी न जाता। किन्तु जब उसने स्त्रियोंके सुधारका भार अपने ऊपर उठा लिया, तब उसका झुकाव दूसरी ओर होगया। सच है! भले-बुरे कार्यका प्रभाव मानसपर पड़े बिना नहीं रहता। वह जहाँ रहें तहाँ आनन्दसे रहें, ईश्वर उन्हें समुन्नत बनावें और ऐसी बुद्धि दें कि वह मुझ निरपराधिनीको निरपराध समझने लग जायँ। ऐसा विचार होते ही उसे अपना कर्त्तव्य-पथ स्पष्ट दिखलायी पड़ा। स्त्री-समाज-सुधार-का उसने बीड़ा उठा लिया। पर्देकी प्रथासे भी उसे हार्दिक घृणा होगयी। मानो यहाँसे उसके जीवनका दूसरा युग प्रारम्भ होगया। वह गाँवकी लड़कियोंको अपने पास बुलाकर पढ़ाने लगी। बाहर-भीतर निकलनेवाली स्त्रियोंको निश्चित समयपर धर्म-कथा सुनाने तथा घर-घरमें जाकर बहुओंको शिक्षा देने लगी। उसके दिलमें नीच-ऊँचका विचार ही नहीं रह गया। कुछ ही दिनोंके बाद उसने दो घंटेका समय शूद्रोंके लिए भी देना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि दो वर्षमें ही केवल चमारोंको छोड़कर और किसी जातिका एक बच्चा भी अशिक्षित नहीं रह गया।

ईश्वरकी दयासे उसके सारे अपवादोंकी तो समाप्ति हो ही गयी, साथ ही उसके मार्गका कंटक भी दूर होगया। रात-वाली घटनाके ठीक पन्द्रह दिनके बाद ही हैजेने दिवाकरकी

मृत्यु होगयी। इतने अल्प समयके भीतर ही रमामें आश्चर्य-जनक परिवर्त्तन होगया। एक अपवाद कुछ लोगोंमें और था; वह यह कि ज्ञानदत्तके जानेके एक महीना बाद उसके गर्भसे पुत्र उत्पन्न हुआ। बहुतोंने यह कहा कि जारज-पुत्र है। किन्तु जब बालक सालभरका होगया और शकल-सूरत हूबहू ज्ञानदत्तसे मिलने लगी एवं रमाकी निस्वार्थ लोक-सेवासे लोग वशीभूत होगये, तब लोगोंका वह उपहास भी दूर होगया,—यद्यपि रामपुरके लोगोंमें वह भ्रम ज्योंका-त्यों बना रहा। वहाँके लोगोंका भ्रममें रहना किसी अंशमें ठीक भी था। क्योंकि पति-गृहसे केवल दो मासका गर्भ लेकर रमा यहाँ आयी थी। बारहवें महीनेमें वह अपने पिता-गृहमें सन्तान-वती हुई। स्त्रियाँ बहुधा नौ महीनेका ही हिसाब जोड़ती हैं। ऐसी दशामें वहाँके लोगोंका वैसा समझना स्वाभाविक ही था। यदि कोई वहाँसे आकर बच्चेको देखता और रमाके पवित्र आचरणका अध्ययन करता तो उसकी समझमें आ जाता। किन्तु वहाँके लोग तो प्रभाके माया-जालमें फँसे हुए थे।

अब रमाका ध्यान चमाइनोंकी ओर आकर्षित हुआ। एक दिन वह सन्ध्याके समय अपने भाई तथा चार-छः अन्यान्य स्त्रियोंको साथ लेकर चमरौटीमें गयी। वहाँ एक घरमें ओझाई हो रही थी। रमा वहाँ चली गयी। देखा, दो ओझे नयकवा, चनैनी, पचड़ा आदि गाकर अपने देवताको बुलानेके लिए झूम रहे हैं और सामने एक युवती चमाइन घूँघट

काढ़े बैठा है। घरकी दो-तीन बूढ़ी स्त्रियाँ भी उसी घरमें एक ओर खड़ी हैं। मिट्टीके तेलकी बत्ती जल रही थी।

उस समय काफी अन्धेरा हो चुका था। रमाको तथा उसके साथियोंको घरके भीतरके लोगोंमेंसे किसीने नहीं देखा। रमा आँगनमें खड़ी होकर देखने लगी। अचानक एक ओझेने बड़े जोरसे हुंकार मारकर बत्ती बुझा दी। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसने जान-बूझकर बत्ती नहीं बुझायी। गनगनाती हुई आवाजमें बोला,—जल्दीसे पाँच बाती के दीया जराउ नाहीं तो हम जाथई।

जो चमाइनें घरमें खड़ी थीं, वे उद्विग्न होकर बत्तीकी ओर दौड़ीं। समझा, यदि शीघ्र बत्ती नहीं जलायी जायगी तो देवता चले जायँगे। एकने कहा,—नाहीं महराज, जा जिन। हम लेई आवथई पाँच बाती के दीया। हाथ जोड़थई देवता, जा जिनि।

यह सब देखकर रमाको बड़ा कौतूहल हुआ। आगेकी लीला वह देखना चाहती थी, इसलिए अपने भाईसे कहा,—तुम्हारे जेबमें बिजली बत्ती है न भैया?

भाईने कहा,—हाँ, है तो। क्यों क्या करेगी?

रमाने धीरेसे कहा,—जल्दी जला दो। कहीं ऐसा न हो कि ये पाँच बत्तीका दीपक जलानेमें देर करें, तबतक ओझे दूसरे दिन आकर फिर कुछ एंठनेके लिए कह बैठें कि अब तो देवता चले गये।

मायाधरने झटसे बत्ती जला दी। क्या दृश्य दिखलायी पड़ा, यह कैसे लिखा जाय। हाँ, इतना अवश्य लिखा जा सकता है कि रमाको तथा उसके साथियोंको समाजके पतन-का ऐसा नग्न चित्र दिखलायी पड़ा, जिसे देखकर प्रत्येक व्यक्तिके दिलमें बहुत बड़ी लज्जा उत्पन्न हो सकती है। यही कारण है कि इस समय उनमें किसीसे किसीकी ओर ताका नहीं गया। रमा तो शर्मके मारे गड़ गयी। उसपर कौनसा भूत सवार था कि उसने अपने भाईसे बत्ती जलानेके लिए कहा ? पृथिवी माता, तुम फट पड़ो ! रमा तुम्हारे पेटमें सदा-के लिए घुस जाना चाहती है। अब वह भाईको मुख दिख-लाना पसन्द नहीं करती।

पाठकगण समझ गये होंगे कि वह कौनसा दृश्य था। यदि न समझे हों तो और भी सुन लें। वह ऐसा दृश्य था, जिसके सामने बिजलीका प्रकाश भी लज्जित होकर बैट्रीमें जा छिपा। वह ऐसा दृश्य था, जिसके कारण होनहार युवकोंका यौवन मिट्टीमें मिल जाता है। वह ऐसा दृश्य था, जो स्त्री-पुरुषके लोक-परलोक, विद्या-बुद्धि, बल-पौरुषका नाश कर डालता है। और भी सुनोगे ? वह ऐसा दृश्य था, जिसे कहनेमें, सुननेमें, लिखनेमें लज्जा आती है। वह ऐसा दृश्य था, जिसके समान संसारमें दूसरा कोई कुदृश्य है ही नहीं। ओझे इतने बड़े नीच और पाखंडी होते हैं, यह बात आज भलीभाँति मालूम होगयी।

अब दर्शकोंकी समझमें आगया कि देवताने पाँच बत्तीका दीपक केवल इसी लिए माँगा था कि जिसमें देर लगे और मनोभिलाषा पूरी हो जाय। यदि रमा अपने भाईको साथ लेकर न आयी होती तो कदाचित् वह वहाँसे न हटती और उचित यत्न करके तब घर लौटती। अथवा उसके भाई ही यदि अकेले होते तो वह भी ऐसा ही करते। किन्तु दोनोंको एक दूसरेका इतना अधिक संकोच लगा कि अविलम्ब सबलोग बाहर चले आये।

सम्भ्रान्त कुलोत्पन्ना, सदाचारिणी, विदुषी, समाज-सेविका तथा जात्याभिमानिनी रमाका हृदय समाजकी मूर्खतासे नारी-जातिपर होनेवाले अत्याचारोंको प्रत्यक्ष देखकर विदीर्ण हो-गया। सोचने लगी,—ओफ् ! इस तरह न जाने कितनी कुल-बधुएँ धर्म-भ्रष्ट हो जाती होंगी। कितनी तो यह भी न जान पाती होंगी कि इसमें भी कोई धर्म-भ्रष्टता है; वे तो यह समझती होंगी कि देवताकी ऐसी ही मर्जी होगी, इसमें कोई भी पाप नहीं है। हे प्रभो ! वह दिन कब आवेगा जब नारी-जातिमें बल दोगे—उनकी अज्ञानता दूर करोगे—कर्त्तव्य-पथ दिखलाओगे ?

इतनेमें मायाधरने तीखे स्वरमें चमारोंसे कहा,—दोनों ओझोंको लेकर तुमलोग अभी दरवाजेपर आओ।

उस समय उनका चेहरा तमतमाया हुआ था। अन्धेरा होनेके कारण चेहरेका भाव तो चमारोंको कुछ भी नहीं

मालूम हुआ, किन्तु ध्वनिसे उन सभोंने इतना अवश्य लक्ष्य कर लिया कि जरूर कोई दंड मिलेगा।

यह कहकर मायाधर घर लौटे। वह बैठे भी न थे कि दोनों ओझोंको लेकर चमारोंका जत्था आ पहुँचा। उस समयतक सदायतनजी हवा खाकर नहीं लौटे थे। मायाधरने बेंतसे दोनों ओझोंकी खूब खबर ली। कहा,—यह भी एक ओझाई है। बोल, फिर ओझाई करके किसीकी बहू-बेटीको नष्ट करेगा?

मारके आगे भूत भागता है। ओझे न तो अपनेको निर्दोष कहनेकी चेष्टा कर सके और न आश्चर्य्य ही प्रकट कर सके कि इन्हें यह बात क्योंकर मालूम हुई। हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए बोले,—अब ऐसन कब्बौं न करब सरकार।

'नहीं अभी करेगा' यह कहकर उन्होंने फिर चार-चार बेंत दोनोंको जड़ दिये।

ओझे छटपटाकर जमीनपर गिर पड़े। चमारलोग डरके मारे चार कदम पीछे हट गये। उनलोगोंकी समझमें न आया कि मामला क्या है।

मायाधरने एक चमारको लक्ष्य करके कहा,—क्यों रे भुलइया, आजकल तूने इसी कामका अड्डा खोला है? अगर आजसे फिर कभी किसीके यहाँ ओझाई हुई तो मैं उसकी खाल खींच लूँगा।

भुलइया कुछ भी न समझ सका। उसने केवल इतना ही समझा कि सरकार ओझाईको नापसन्द करते हैं। इसीसे

मायाधरकी यह कड़ाई उसे अनुचित भी मालूम हुई । किन्तु कुछ कहनेका साहस न कर सका ।

धीरे-धीरे यह समाचार सरकारी कर्मचारियोंतक पहुँच गया । जिला-कलेक्टरसे लेकर दारोगातक सब ताक लगाये बैठे थे । अवसर पाते ही दारोगा तहकीकात करने पहुँचे । गाँवके बाहर चमारोंको बुलवाया । कहा,—तुमलोग घबड़ाओ मत, जैसा हम कहें वैसा इजहार दो । सदायतनके घरवालों-की आदत छूट जायगी ।

कुबेरने कहा,—हम सभे रहै न पाउब सरकार ।

दारोगाने त्यौरियाँ चढ़ाकर कहा,—अबे सूअरका बच्चा, साला, इतना डरेगा तो मैं तुझे जहन्नुममें मिला दूँगा—, हरामीका पिल्ला !

कुबेर—सरकार मालिक हईं, जवन चाहैं तवन करैं ।

"फिर गुस्सा चढ़ाता है,—गधा ।"—यह कहकर दारोगा-ने उसे दो झापड़ कसके लगाया ।

एक सिपाही—अबे उल्लू, जो दरोगाजी कहें, वह क्यों नहीं करता ।

कुबेर सिसकता हुआ बोला,—हजूर घरमें रहै न पाउब । दोहाई सरकारकी ।

दारोगा—इसके लिए फिकर न कर । मैं तेरे लिए दूसरी जगह घर उठवा दूँगा । फिर क्या था, सब चमार राजी हो-गये । इस प्रकार उन्हें उभाड़कर पं०सदायतन और उनकी पुत्री

रमापर मामला चला दिया गया। पहले तो चमारोंकी हिम्मत ही नहीं पड़ती थी, किन्तु जब दारोगाने उन सभोंको एक जमींदारसे थोड़ी जमीन जागीरके तौरपर दिलवाकर वहीं बसा दिया, तब वे सब निडर होगये। सोचा, अब यहाँ सदायतन कुछ नहीं कर सकते।

इधर अंग्रेज कलेक्टरने पं० सदायतनको बुलाकर धमकाते हुए कहा,—तुम्हारे कामोंसे जाहिर होता है कि बिदापुरमें तुम अपनी सलतनत कायम करना चाहते हो। खूनके मुकदमे भी तुम हज़म कर जाते हो। इसलिए तुम्हारी स्पेशल मैजिस्ट्रेटी छीन ली गयी। अगर इतनेपर भी तुम कायदेसे न रहोगे, तो वह सजा दी जायगी, जिसकी तुमने कभी कल्पना भी न की होगी।

पं० सदायतनने बड़े शान्त और गम्भीर भावसे कहा,—मैं तो स्पेशल मजिस्ट्रेटी छोड़नेहीवाला था। आपने बिना प्रार्थना किये ही मेरे ऊपरसे यह भार उतार दिया, इसके लिए मैं आपका विशेष कृतज्ञ हूँ। रही सलतनत स्थापित करनेकी बात, सो बिलकुल झूठ है। आपलोगोंकी संगतिसे अब मैं ऐसा मूर्ख नहीं रह गया हूँ कि इतनी शक्ति-सम्पन्ना गवर्नमेण्टके विरुद्ध राज्य स्थापित करनेकी चेष्टा करूँ। हाँ, यह अवश्य है कि ग्रामवासीके नाते मैं बिदापुरके लोगोंको सुखी रखनेके लिए प्रयत्न किया करता हूँ। यदि इसके लिए आप रंज हों तो यह मेरे लिए बड़े दुःखकी बात है।

पंडितजीकी निर्भीकता कलेक्टरके लिए असह्य होगयी। तड़पकर बोला,—बस! चले जाओ यहाँसे। मैं सब समझ गया। चन्द दिनोंके भीतर तुम्हारी शेखी धूलमें मिलाकर छोड़ूँगा। इतनी बड़ी हिम्मत!

पंडितजी निश्चिन्त भावसे उठकर चल दिये। उनपर कलेक्टरकी धमकीका जरा भी असर न पड़ा। आपत्तियोंसे घबड़ाना कायरोंका काम है। कर्त्तव्य-च्युत होना कापुरुषता है।

बाईसवाँ परिच्छेद

बिदापुरसे वापस आकर पं० ज्ञानदत्त एक दिनके लिए भी कभी बाहर नहीं गये। सैर करनेकी दिलमें उत्कट इच्छा उत्पन्न होनेपर भी नहीं जा सके। राजोका स्मरण करते ही उनका दिल हिचक जाता था। क्योंकि उस दफे बिदापुर जाते समय चार-पाँच दिनमें लौटनेके लिए कह गये थे। अपने कथनानुसार ठीक पाँचवें दिन बिदापुरसे चल भी दिये। किन्तु रास्तेमें देर लग गयी। कारण यह था कि रमासे भेंट होनेपर उन्होंने जो नादानी की थी, उसके पश्चात्तापसे उनका शरीर शिथिल होगया। दुःख है कि उस नादानीका ज्ञान उन्हें

इतने दिनोंके बाद भी अबतक नहीं हुआ। रमा विह्वलताके साथ मिली, यही उनके लिए खटकनेकी बात होगयी। उन्होंने सोचा था कि मेरी असन्तुष्टता उससे छिपी न होगी। पत्रोत्तर न पानेसे वह बहुत खिन्न हुई होगी, इसलिए पहुँचते ही विलाप करेगी।

किन्तु रमाने बिलकुल विपरीत आचरण किया। ज्ञानदत्तने समझ लिया कि यह अवश्य कुलटा है। इसके दिलमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है। जब किसी दूसरेसे स्नेह हो जाता है, तब यही हाल होता है। इसीसे रमाका हाव-भाव देखते ही उनके सारे शरीरका रक्त खौल उठा। उसके पूछनेपर क्रोधको सँभालते हुए बोले,—'हूँ'। बाद जब रमा चुप होगयी, तब तो उनका क्रोध और भी बढ़ गया। यहाँतक कि उठकर चले आये। शेष रात्रि करवटें बदलकर बितायी और भोर होते ही स्टेशनकी राह ली।

क्रोधकी मात्रा कम होनेपर नाना प्रकारके विचारोंकी लहरें उनके हृदयमें उत्पन्न होने लगीं। सोचा,—अपने क्रोध-को दबाकर अन्तिम बार उसके मुखसे अपराध स्वीकार कराना चाहिए था। यदि वह स्पष्ट रूपसे स्वीकार न भी करती तो क्या। किसी प्रकार वह अपनेको निर्दोष भी तो प्रमाणित न कर सकती। बस, इतनेहीका तो काम था। कहना था कि भोलेपनमें भी इतना कड़ुआ विष भरा रहता है, यह बात अब मालूम होगयी।

यदि रमाके प्रति ज्ञानदत्तके हृदयमें साधारण प्रेम होता तो इतना निश्चय हो जानेपर अवश्य ही वह अपने हृदयमें रमाको आजन्मके लिए त्याग देनेका दृढ़ संकल्प करके इस संकट और चिन्तासे मुक्त हो जाते। किन्तु रमाके असाधारण सम्बन्धने इतनेपर भी ज्ञानदत्तकी रिहाई नहीं की। मन-ही-मन कहा,—प्यारी रमा, तुझे यह कुपाठ किसने पढ़ाया ? तू तो मुझपर अगाध प्रेम रखती थी, फिर यह क्या किया ? तू मुझसे भी छल करती थी ? जरा अपना और मेरा हृदय तो देख। उधर तेरा हृदय इतना कपट-पूर्ण है और इधर इतना पुष्ट और प्रत्यक्ष प्रमाण मिलनेपर भी न जानें क्यों तेरे कपटपर पूरा विश्वास नहीं होता—अबतक तुझे नहीं भुला सका। विश्वास-घातिनी ! यह तूने क्या किया ?

चिन्ता-ज्वाला और ग्लानिकी मात्रा इतनी बढ़ गयी कि गाड़ीमें गौरी बाबूके विशेष अनुरोधसे थोड़ासा फल खाते ही कै होगयी। शरीरसे पसीना छूटने लगा, बेहोशी आ गयी। तृषा बहुत बढ़ गयी। परन्तु पानी भी न पचता था। दो घूँट पानी पीते ही उलटी हो जाती थी। क्रमशः रोग बढ़ता हुआ मालूम होने लगा। गौरी बाबूके बुलानेपर भी वह नहीं बोले। मालूम हुआ, चेतना जाती रही। गौरी बाबू और काशी बाबूकी समझहीमें न आया कि इतने शीघ्र इनकी यह दशा क्यों होगयी।

गाड़ी पटना जंकशनपर खड़ी होगयी। गौरी बाबूने कहा,—मैं समझता हूँ कि यहीं उतर जाना चाहिए।

काशी बाबूने कहा,—यही श्रेयस्कर है । गाड़ीमें इनका रोग और भी बढ़ जायगा । यहाँ किसी अच्छे डाक्टरको दिखलाकर शीघ्र इलाज कराना चाहिए। किन्तु ठहरा कहाँ जायगा ?

गौरी—मेरे एक मित्र यहाँ रहते हैं, उन्हींके यहाँ रहनेमें सुविधा होगी। हैं तो और भी कई प्रतिष्ठित परिचयी, किन्तु उनलोगोंके यहाँ चलनेसे शंकरको दुःख होगा । सोचेगा, गरीब समझकर नहीं आये ।

काशी—यदि उतरना हो तो देर करना ठीक नहीं ।

इसके बाद कुलीसे सामान उतरवाकर नौकरोंके हवाले कर दिया और दोनों आदमी ज्ञानदत्तको ले चलनेका यत्न सोचने लगे। तबतक एक नौकरने कहा,—मुसाफिरखानेमें एक नन्हीं-सी खटिया पड़ी है बाबूजी, हुकुम होय तौ उसे ले आवैं ।

गौरी—हाँ हाँ, जल्दी जाओ ।

नौकर चारपाई माँग लाया। मामूली बिस्तरा लगाकर ज्ञानदत्तको लिटाया जाने लगा। तबतक ज्ञानदत्तकी तन्द्रा टूट गयी। खिन्न स्वरमें बोले,—कहाँ चल रहे हो गौरी बाबू ?

गौरी—पटना ।

ज्ञान—क्यों ?

काशी—तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए यहीं उतर जाना ठीक समझा गया ।

ज्ञान—नहीं नहीं, ऐसा न करो । अब मेरी तबीयत अच्छी है।

गौरी—अच्छी बात है। किसी दूसरी ट्रेनसे चल देंगे।

ज्ञानदत्तने कुछ नहीं कहा। सबलोग शंकरके यहाँ जा पहुँचे। शहरके बाहरी हिस्सेमें मित्रका छोटासा कच्चा घर, टूटा-फूटा थोड़ासा चबूतरा ही लक्ष्मीवान् गौरी बाबूको महलों और रमणीक बगीचोंसे बढ़कर आनन्ददायक प्रतीत हुआ। उन्हें देखकर शंकर निहाल होगया। स्वयं जाकर एक अच्छे डाक्टरको बुला लाया। दवा-दारू हुई। ज्ञानदत्त अच्छे तो हो ही रहे थे, अब बिलकुल चंगे होगये। किन्तु दवासे नहीं, डाक्टरका ऋणशोध करके अपने-आप ही।

सन्ध्याका समय था। गौरी बाबू बाहर चबूतरेपर खड़े थे। ज्ञानदत्त भी पास ही एक टूटी चारपाईपर बैठे थे। शंकरने आकर कहा,—मैं एक घंटेकी छुट्टी चाहता हूँ।

गौरी—हाँ-हाँ, जाओ, हमलोगोंके लिए अपने कामका हर्ज न करो। क्या कोई जरूरी काम है?

शंकर—इस वक्त घरमें आटा नहीं है। दो महीनेसे नौकरी छूट गयी है, इसलिए खर्चकी तंगी है। जाकर एक जगहसे कुछ रुपये लाऊँगा।

शंकरके मुखसे प्रसन्नता-पूर्ण ऊपरकी बात सुनकर गौरी बाबू बड़े प्रसन्न हुए। मैत्री हो तो ऐसी! हृदय हो तो ऐसा हो! भीतर बाहर समान! मानापमान बराबर!! मित्रसे छिपाव कैसा? घरकी परिस्थिति बतलानेमें लज्जा किस बात-की? गौरी बाबूने कहा,—तो इसके लिए बाहर जानेकी क्या

जरूरत है? मेरे पास रुपये हैं ले लो।

शंकरने सहायताके लिए अपनी परिस्थितिका दिग्दर्शन नहीं कराया था और न तो वह उनसे कुछ लेना ही चाहता था। पर स्नेही कभी-कभी रुचि-विरुद्ध कार्य भी करा बैठता है और उसे शिरोधार्य करना ही पड़ता है। यही कारण है कि विवश होकर गौरी बाबूसे रुपया लेना ही पड़ा। यह महानता देखकर ज्ञानदत्तने गौरी बाबूको अच्छी तरहसे पहचान लिया।

इस प्रकार तीसरे दिन शंकरके बच्चोंको मिठाई खानेके बहाने मित्रकी कुछ सहायता करके गौरी बाबू कलकत्ता आये। शंकरसे यह कहते आये कि, यहाँका प्रबन्ध करके तुम हमारे यहाँ चले आओ, अन्यत्र नौकरी करनेकी आवश्यकता नहीं है।

देर लगनेका यही कारण था। तबतक यहाँ राजो व्याकुल होगयी थी। यदि ज्ञानदत्तके आनेमें दो-चार दिनकी देर और लगती तो राजो सोचसे अधमरीसी हो जाती। ज्ञानदत्त उसकी सूरत देखते ही यह बात जान गये। यही कारण है कि उसके बाद अबतक वह कहीं नहीं गये। एकाध बार जानेकी चर्चा करनेपर राजोने कहा भी,—आप चार दिनके लिए जाते हैं, और पखवारा लगाते हैं।

इस वाक्यका असली अर्थ समझकर ज्ञानदत्त रुक जाते; राजोको पीड़ा पहुँचाना, उसकी रुचिके विरुद्ध कोई काम करना इनकी शक्तिसे बाहर था। अब राजा साहिब भी इन्हें बहुत चाहने लगे। घंटे-दो-घंटेकी बैठक राजा साहिबके यहाँ

प्रतिदिन होने लगी। एक दिनका भी नागा होना राजा साहिब-को बहुत खलता। साहित्य, इतिहास, राजनीति, धर्मनीति, भूगोल, खगोल, भूमिति शास्त्र, गणित आदिकी व्याख्या और आलोचना-प्रत्यालोचना राजा साहिबको बहुत प्यारी लगती थी,—खासकर पं० ज्ञानदत्तके मुखसे। इधर ज्ञानदत्तको भी सुनानेमें बड़ा मजा आता था,—प्रधानतया राजा साहिबको। हाँ, राजोके न रहनेपर अवश्य ही इनकी कुछ कहने-सुननेकी इच्छा नहीं होती थी। किन्तु राजोकी अनुपस्थिति ही बहुत कम होती थी। वह तो हर समय ताक लगाये बैठी रहती थी। कमरेमें इनका पदार्पण होनेसे पहले ही आ जाती थी।

क्रमशः इतनी एकता बढ़ गयी कि सन्ध्याके समय बहुधा राजा साहिबके ही यहाँ ज्ञानदत्त भोजन करने लगे। राजा साहिबके न रहनेपर भी उनकी प्राइवेट बैठकमें घंटों बैठकर राजोको सुन्दर उपदेश देने लगे। राजा साहिब भी इसमें किसीप्रकारका दखल न देते थे, बल्कि लड़कीकी ज्ञान गरिमाकी वृद्धि होती देखकर प्रसन्न ही होते थे। यद्यपि राजा साहिब बड़े ही तर्कीले और व्यवहार-कुशल आदमी थे तथापि ज्ञानदत्त-के आचरणपर उनकी इतनी आस्था बढ़ गयी थी कि इसमें वह किसी तरहकी हानि नहीं समझते थे। वास्तवमें ज्ञानदत्तका आचरण था भी ऐसा ही।

नित्यकी भाँति आज भी ज्ञानदत्त अपने सब कामोंसे निवृत्त होकर सन्ध्याके समय लगभग साढ़े सात बजे राजा

साहिबकी बैठकमें पहुँचे। आज राजा साहिब लड़कोंको साथ लेकर अपने एक मित्रकी गार्डनपार्टीमें सम्मिलित होने गये थे। घरमें राजो और उसकी माँके अतिरिक्त कोई नहीं था। नौकरोंसे मालूम हुआ कि आज राजा साहिब ग्यारह-बारह बजेसे पहले न आवेंगे। ज्ञानदत्तने लौट आनेका इरादा किया। तबतक राजो आ गयी। बोली,—बैठिये पंडितजी, खड़े क्यों हैं।

कोकिल-कण्ठकी मधुर ध्वनिने फन्दा डाल दिया। ज्ञानदत्तका मन अटक गया। 'जी हाँ बैठता हूँ', कहकर बैठ गये। आज कमरेमें अकेले राजोके साथ बैठनेमें उन्हें बड़ा ही संकोच मालूम हुआ,—अनुचित जान पड़ा। एकान्तमें राजोके साथ बैठनेका पहले कई बार अवसर पड़ चुका था और घंटों बैठे भी थे, किन्तु आज न जानें क्यों उनके हृदयने अनौचित्यका अनुभव किया। जान पड़ता है, यह अन्तरात्माको शुद्ध प्रेरणा थी जो उनके उपस्थित मानसिक दौर्बल्य अथवा गतिविधिको देखकर ही उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। फिर भी राजोको छोड़कर वह जा नहीं सके,—न तो जाना उनके वशकी बात ही थी। वैसे तो इकट्ठा होते ही बातोंकी झड़ी लग जाती थी, किन्तु आज बहुत देरतक किसीके मुखसे विकार ही न फूटा।

बड़ी देरके बाद ज्ञानदत्तने स्तब्धता भंग की,—कुछ बातचीत करियेगा कि यों ही चुपचाप बैठना होगा?

राजकुमारीने ससंकोच भावसे मुसकुराहटके साथ भरआँख ज्ञानदत्तको देखकर निगाहें नीची करके बोली,—क्या

बातचीतका ठेका मुझे ही दिया गया है ?

राजोकी उक्त बातको सुनकर ज्ञानदत्तने एक अपूर्व मिठास-पूर्ण गुदगुदीका अनुभव किया। शायद उनके जीवनमें यह बिलकुल नयी और अनहोनी बात थी। अत्यन्त हास्य-विनिन्दित मधुर स्वरमें कहा,—मुझे तो ठेका मिलनेके दफ्तरका पता ही नहीं। क्या आप बतला सकती हैं कि कहाँ है ?

राजोने ज्ञानदत्तकी ओर देखा। उस समय उसकी आँखें स्वाभाविक ही किंचित् सिकुड़ी हुई होनेके कारण अधमुँदीसी थीं। उसके इस भावसे रसिकता टपकी पड़ती थी। ज्ञानदत्त-ने उसका आस्वादन किया। फिर वह रस प्रच्छन्न होगया; दूसरे भावने अधिकार जमाया। राजोने निगाहें फेर लीं। कहा,—जब कोई वस्तु पैतृक सम्पत्ति हो जाती है, तब न तो वह किसीके माँगनेकी जरूरत पड़ती है और न उसपर दूसरे-का आधिपत्य ही हो सकता है।

ज्ञान—किन्तु इस बातमें आंशिक सत्यता है। यथार्थतः तो मनुष्य अपनी ही वस्तुपर अधिकार नहीं जमा सकता, पैतृक वस्तुपर अधिकार जमाना तो दूरकी बात है।

राजो सहम गयी, बोली नहीं। किन्तु उस सहममें एक विश्व-दुर्लभ पदार्थ था, जिसके आनन्दमें वह निमग्न होगयी। यदि ऐसा न होता तो क्या जो राजो, ज्ञानदत्तके स्वाभाविक प्रश्नोंका उत्तर देनेमें भी संकुचित हो जाया करती थी, वह आज इस प्रकार उपोद्घात रीतिसे बातें करती ? अच्छा, यदि

यही बात है तो फिर वह आगे बोली क्यों नहीं ? जान पड़ता है, उसका आनन्द पूर्णत्वको पहुँच गया, इसीसे वह कुछ नहीं बोली। उसने शर्मीले भावसे मूक रहकर जो उत्तर दिया, उस-पर ज्ञानदत्तकी जबान बन्द होगयी। क्या शाब्दिक उत्तरमें यह विशेषता हो सकती थी—ज्ञानदत्तको कायल होना पड़ता?

ओफ्! नारी-जातिमें कितनी शक्ति है ? जिस बातको पुरुष, बलके प्रयोगसे भी नहीं कर पाता, नारी उसे बिना कोई अंग हिलाये ही कर दिखाती है। राजोने यह दिखला दिया कि पुरुषके शरीरमें ताकत भले ही अधिक हो पर नारी-की शक्ति उससे बलवती होती है। राजोके इस शक्ति-पूर्ण कौशलमें न तो अध्यात्मका पाखंड है और न कविकी सौम्य कल्पनाका जोर।

ज्ञानदत्त और राजकुमारीके प्रेमका रूप बदल गया। पहले-पहलके आकर्षणको यद्यपि प्रेमके नामसे ही सम्बोधित किया गया है, तथापि यहाँ यह कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि वह प्रेम न होकर श्रद्धा थी। वही श्रद्धा आज प्रेमके रूपमें परिवर्तित होगयी। यद्यपि यह परिवर्त्तन इधर कुछ दिनोंसे हो रहा था, किन्तु उसका लक्ष्यमें आना अस-म्भव था। अब उसने इतनी द्रुत-गतिसे कदम बढ़ाया कि यह परिवर्त्तन दोनोंको भलीभाँति मालूम होगया। पहले दोनों एक दूसरेके केवल दर्शनके उपासक थे, अब वे उसके अति-रिक्त कुछ आगे बढ़े। पहले दोनों भावुक थे, अब भावमय

होगये। पहले ज्ञानदत्त सौन्दर्य्यके उपासक थे; राजो भी उसीकी उपासिका थी। अब वह रूपके सेवक होगये, अतः राजो भी रूपकी सेविका बन गयी। किन्तु इससे तो यह सिद्ध होता है कि राजोने ज्ञानदत्तकी देखादेखी ऐसा किया। नहीं; इस प्रकार कहना विशेष उत्तम होगा कि दोनोंकी अन्तरात्मायें सलाह करके एक समयमें एक ही साथ बदल गयीं,—तैयारी भी साथ-ही-साथ कर रही थीं।

यद्यपि सौन्दर्य्य और रूप दोनों शब्दोंका प्रचलित भाषामें एक ही अर्थ है, क्योंकि 'रूप' कहनेसे लोग सुरूपका बोध करते हैं—तथापि यह मानना पड़ेगा कि दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। सौन्दर्य, स्वर्गवासी है,—स्वर्गमें आदर पानेवाला है! निष्कलंक है! अनन्य भक्तिका जन्मदाता है। सौन्दर्य्यमें सब गुणोंका समावेष हो जाता है। सौन्दर्य केवल सुन्दर रूप ही नहीं है! उसके साथ सब सुगुणोंका होना आवश्यक है। सौन्दर्य्य, व्यापक है! श्रद्धेय है! उपास्य है! निःस्वार्थ है!! और रूप, केवल रूप है या यह भी कह सकते हैं कि केवल सुरूप है। यह मर्त्यलोक-निवासी है! स्वार्थी है! वाह्य-चक्षुका विषय है! सौन्दर्य, मोहक है किन्तु मादकता और मदान्धतापूर्ण नहीं! रूप मोहक है, किन्तु मादकता और मदान्धतापूर्ण। सौन्दर्य्यसे हृदय निर्मल होता है और रूपसे कलुषित। सौन्दर्यमें अमृत है, रूपमें विष। सौन्दर्य्य वह है जिसके दर्शनसे हृदयमें भक्ति उत्पन्न हो, पूजा करनेके लिए

हृदय लालायित हो उठे। रूप वह है जिसके देखनेसे सम्भोग-की इच्छा उत्पन्न हो, मिलनोत्कंठा जागृत हो जाय।

किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं। रूपको सौन्दर्य्यसे पृथक् करना—छोटा ठहराना, अन्याय है। वास्तवमें दोनों एक हैं। दृष्टि-भेदसे श्रद्धेय और सम्भोग्य बन जाते हैं। सौन्दर्य्य या रूप! तू विश्व-प्रिय है। स्वर्गमें भी आदरणीय तू ही है! नहीं तो तिलोत्तमा, रम्भा, उर्वशी, मेनका आदिका आदर कभी न होता,—उनकी गुणावलियोंसे ग्रंथोंके पन्ने न रँगे जाते! तू अलभ्य है, सदा पवित्र है! इसीसे तो तेरे कृपा-कटाक्ष-पर बड़े-बड़े ऋषि महर्षि समाधि छोड़कर अपनी तपस्याका फल तेरे पैरोंपर अर्पण कर देते हैं। तू एक है, उपासक-भेदसे तेरा अनन्त रूप दिखायी पड़ता है। साक्षात् ब्रह्म तू ही है। मोक्षदाता भी तू ही है। नर्कमें घुसेड़नेवाला भी तू ही है। तू जलसे अधिक कोमल है और बज्रसे भी अधिक कठोर है। तेरी मूर्ति निराकार है, साधार रहती है; किन्तु है वह इतनी मनोहारिणी कि विश्व-यौवन हाथ पसारकर तेरे मिलनकी सदा ही भीख माँगता रहता है। सूर और तुलसीके हृदयको बनानेवाला तू ही है। ईश्वरके ईश्वरत्वका मूल कारण तू ही है। यदि ईश्वरमें सौन्दर्य्य न होता, उनके गुणोंपर लोग मुग्ध न होते, तो उन्हें कौन पूछता? काली-कलूटी कोकिलकी कंठ-ध्वनि क्यों मुग्धकारिणी होती? निराकार ब्रह्मका भी लक्ष्य करानेवाला तू ही है। तू व्यापक है। तेरा राज्य स्वर्गलोकमें है, अतः

कितने ही लोगोंको स्वर्गमें निर्विघ्न स्थान देता है; और तेरा राज्य मर्त्यलोकमें भी है, अतः कितने ही पामरोंको उन्मादी बनाकर चारों ओर भटकाता भी रहता है।

उपासनाका अन्तिम परिणाम ही एकाकार होना है। जब उपासक अपने उपास्यमें उपासनाद्वारा लीन हो जाता है, तब उसकी उपासना बन्द हो जाती है। ज्ञानदत्त और राजोके प्रेमकी भी यही दशा है। इन दोनोंमें एक विशेषता यह भी है कि दोनों ही एक दूसरेके उपासक भी हैं और उपास्य भी। जिस प्रकार कितने ही उपासक मुक्ति नहीं चाहते, उसी प्रकार यह युगलमूर्ति भी मुक्त होनेसे दूर रहना चाहती है। दोनोंकी अन्तर्मिलनसे तृप्ति न हुई, वाह्य-मिलनकी शुद्ध वासना भी उदीयमान हो उठी। युवक-युवती-स्नेहकी चरम सीमा भी यही है। युवक-युवती-प्रेमकी स्वाभाविक गति यहाँ पहुँचे बिना विश्राम नहीं लेती। इसमें ज्ञानदत्त और राजोको कलंकित करना सृष्टि-नियमानभिज्ञताका द्योतक है।

नौकरने आकर गौरी बाबूके आनेका हाल कहा। ज्ञानदत्त राजोसे आज्ञा लेकर चले गये।

तेईसवाँ परिच्छेद

कई वर्ष बीत गये। राजोका व्याह नहीं हुआ—कोई योग्य सम्बन्ध ही न मिला। जहाँ बातचीत हुई थी, वहाँ राजा साहिबका दिल नहीं बैठा। क्योंकि उस लड़केमें कुछ कोर-कसर थी। लड़का अच्छा पढ़ा-लिखा नहीं था। राजा साहिब चिन्तित रहने लगे। राजो मन-ही-मन प्रसन्न हुई। उसने अपना यह निश्चय पिताके पास पहुँचा भी दिया कि, मैं व्याह न करूँगी। राजा साहिबने समझा, मुझे दुखी देखकर वह ऐसा कह रही है। इसलिए उन्होंने लड़कीकी बातपर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

स्त्री-समाजमें राजोकी अब अच्छी ख्याति होगयी। ज्ञान-दत्तके प्रभावसे कुछ ही दिनोंमें वह गहनाति गहन विषयोंपर इतना अच्छा लेख लिखने लगी कि बड़े-बड़े लिक्खड़ोंके छक्के छूट गये। कभी-कभी तो सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी वही लिखती थी, और पं० ज्ञानदत्त उसे बड़े चावसे छापते थे। राजा साहिब भी इसके लिए ज्ञानदत्तके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने लगे। कहते,—आपहीकी दयासे हमारी राजो इतनी उन्नति कर सकी है। यह हमारा सौभाग्य है कि गौरी बाबूके द्वारा आपसे परिचय होगया।

ज्ञानदत्त और राजोके आन्तरिक प्रेमका रहस्य राजा

साहिबके कई नौकरोंको कुछ-कुछ मालूम था। किन्तु वे आपस-में भी इसकी चर्चा कभी न करते थे। कारण यह था कि राजो अपनी स्वाभाविक दान-शीलता और परोपकार-तत्परता-से सबको दबाये रहती थी। यह बात नहीं है कि वह अपनी बातको छिपानेके लिए ऐसा करती थी, क्योंकि उसे तो यह मालूम ही न था कि इस प्रेम-सम्बन्धको कोई आदमी जानता है या नहीं,—बल्कि यह सब तो उसका स्वाभाविक गुण था। यदि कोई नौकर बीमार पड़ जाता, तो दयामयी राजो दिन-भरमें दो-तीन बार जाकर उसे देखती, दवा-दर्पनका प्रबन्ध करती। कभी-कभी तो वह अपने हाथसे ही पानी लाकर पिलाया करती थी।

प्रेम तो चरम सीमापर पहले ही पहुँच चुका था। धीरे-धीरे नये सम्बन्धका प्रकृत संकोच भी दूर होगया। फिर भी आन्तरिक अभिलाषाके अनुसार कार्य करने या उसे प्रकट करनेका साहस किसीमें भी उत्पन्न नहीं हुआ था। जाड़ेका दिन था। कांग्रेसका समय निकट होनेके कारण विशेषांकोंकी धूम थी, अतः दो दिनसे पं० ज्ञानदत्त राजा साहिबके घर नहीं जा सके; अपने कमरेसे ही प्रेयसी राजोका अतृप्त आँखों-से दर्शन कर लेते थे। इधर राजो भी कोई काम न रहनेके कारण आज नौ बजे ही अपने शयनागारमें चली गयी। नींद आनेपर उसने विलक्षण स्वप्न देखा। मालूम हुआ ज्ञानदत्त उसके पलँगके पास खड़े प्रेम-भिक्षा माँग रहे हैं। वह स्त्री-

धर्मानुसार कहिये या उन्हें खिझानेके लिए कहिये, कह रही है, —'ना'। वह आलिंगन करना चाहते हैं, राजो तरह दे जाती है। बड़ी देरतक यही कांड होता रहा। अन्तमें निराश होकर ज्ञानदत्त जाने लगे। राजो इसे सहन न कर सकी। उन्हें पकड़नेके लिए लपकी।

इतनेहीमें नींद खुल गयी। देखा, कहीं कुछ नहीं। अपनेको कोसने लगी,—हाय, मैं क्यों उठ गयी? पड़ी रहती तो रंगमें भंग न होता। सोकर चेष्टा करने लगी कि वह फिर स्वप्नमें दिखलायी पड़ें। आवें, अबकी मान न करूँगी। किन्तु सफलता न मिली। नींद ही नहीं आयी, सबेरा होगया। नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर जलपान करने बैठी। अच्छा न लगा। शाल ओढ़कर कुर्सीपर बैठ गयी और एक पुस्तक पढ़नेका विचार करने लगी। उसमें भी दिल न लगा। टहलने लगी,—किताब हाथमें लिये ही; तबतक दाई एक बोझ अखबार लेकर आयी और सामनेकी टेबुलपर रखकर चली गयी। राजोने पुस्तक रख दी और समाचार-पत्रोंको उलटने लगी। एक जगह चार-पाँच पंक्तियोंका समाचार छपा था। उसीमें विष था। राजो अपने नेत्रोंद्वारा उसे पान कर गयी। नशा होगया, आँखोंसे आँसू गिरने लगे। जो राजो कुल अखबारोंको उलट-पुलटकर अच्छी तरहसे देखे बिना, ज़रूरी काम आनेपर भी कभी नहीं उठती थी, किसीसे बात भी नहीं करती, वह आज न जानें क्यों अवाक् होगयी। आगे किसी अखबारको छुया-

तक नहीं। पाठक घबड़ाते होंगे कि वह कौनसा समाचार था जिसे पढ़कर राजोकी यह दशा होगयी ? अतः उसका उल्लेख कर देना विशेष प्रयोजनीय है। वह समाचार इस प्रकार था:—

"श्रद्धेय पं० मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें होनेवाली अमृतसरकी कांग्रेसमें सम्मिलित होनेके लिए जगत् प्रसिद्ध सम्पादक पं० ज्ञानदत्तजी आगामी बुधवारको पंजाब-मेलसे प्रस्थान करेंगे । और भी कई प्रतिष्ठित सज्जन उसी ट्रेनसे जानेवाले हैं, जिनके नाम कलके अंकमें प्रकाशित किये जायँगे।"

यह वियोगान्तक समाचार पढ़कर राजोका हृदय अधीर हो उठा। सम्भवतः यह स्वप्नमें खिझानेका फल है। उठकर बार-बार बरामदेमें जाती, परन्तु ज्ञानदत्तके कमरेका दरवाजा बन्द पाकर फिर अपने स्थानपर आकर बैठ जाती । इतनेपर भी जब सन्तोष न होता, तब आदमी भेजती कि 'जाकर देखो पंडितजी हैं या नहीं। यदि हों तो एक बार दर्शन देनेके लिए कहो। नौकर आकर कोरा जवाब देता,—'नहीं हैं। कहीं गये हैं।'

इस प्रकार चिन्ता-पूर्ण प्रतीक्षा करनेमें समूचा दिन बीत गया। रातके दस बज गये। सन्नाटा समझकर राजा साहिब सोने चले गये। राजो अबतक अपने पिताके उसी प्राइवेट रूम-में बैठी रही। निराश होकर वह भी अपने कमरेमें चली गयी। सामने दृष्टि डालते ही देखा,—उनके कमरेका दरवाजा खुला है, बिजली बत्तीके तीक्ष्ण प्रकाशमें वह कपड़े उतार रहे हैं। मालूम

हुआ, वह अभी-अभी बाहरसे चले आ रहे हैं । भेंट करनेका यत्न सोचने लगी । तबतक उनकी दृष्टि इस ओर घूमी । हाथसे संकेत किया,—अभी आया । राजो मूर्तिवत् अपने स्थानपर खड़ी देखती रही । वह दुशाला ओढ़े सड़कपर दिखायी पड़े । राजो दरवाजा लगाकर अपने कमरेमें खड़ी होगयी । समझा, नीचे कोई नहीं है, इसलिए वह यहीं आवेंगे ।

ज्ञानदत्तने सदर फाटकपर आकर देखा, पहरेवाले हाथमें बन्दूक लिए ऊँघ रहे हैं। कई आदमी इधर-उधर ओढ़ना ओढ़कर सर्दीके मारे नाकसे घुटना लगागे 'घर्र-घों' कर रहे हैं। यह दृश्य देखकर उन्होंने किसीसे कुछ नहीं पूछा और सीधे ऊपर चले आये। राजोके कमरेमें प्रवेश करते ही कहा,—आजकल इतना काम बढ़ गया है कि दम मारनेकी भी फुरसत नहीं। कुशल हुई कि आप दिखलायी पड़ीं, नहीं तो ऐसी नींद आ रही......

इतनेमें उनकी दृष्टि राजोके चेहरेपर पड़ी। विस्मित हुए और ऊपरकी बात कहते-कहते रुक गये। राजोके कपोलोंपर बड़े-बड़े मोतीके दाने लुढ़क रहे थे। आश्चर्यान्वित होकर बोले,—यह क्या ! आप रो क्यों रही हैं ? क्या बात है ?

राजोका शब्द-रहित रुदन और भी तीव्र हो उठा। उसने अश्रु-मोचन करते हुए मुख फेर लिया। ज्ञानदत्त क्षण-कालतक स्तब्ध होकर अपने स्थानपर खड़े रहे। बाद आगे बढ़े और उसके मुखके सामने जाकर बोले,—बतलाइये न ?

राजो अपने पैरके अँगूठेसे संगमर्मरकी फर्शको खुरचती हुई नीचे ताकने लगी। कुछ नहीं बोली। शायद बोल ही न सकी।

ज्ञानदत्त कुछ भी न समझ सके। किन्तु यह जाननेसे भी वंचित न रहे कि वह रुदन उन्हींके लिए हो रहा है। उनका भी गला भर आया। थोड़ी देरतक चुप रहे। फिर पूछा,—मैं इसी तरह खड़ा रहूँ? आप न बतलायेंगी?

राजोने बड़े कष्टसे सिसकियाँ लेते हुए कहा,—बैठते क्यों नहीं?

आँसू अब भी संगमर्मरके वक्षस्थलपर टप्-टप् गिरते जाते थे। मानो उनके कोमल आघातसे ज्ञानदत्तका हृदय आहत हो रहा था। कहा,—बिना कारण जाने मैं नहीं बैठनेका।

अब वह अपनेको नहीं सँभाल सकी। चम्पक-वदना राजो कुछ जोरसे सिसक पड़ी।

ज्ञानदत्त अपनेको भूल गये। जरा आगे बढ़कर उन्होंने बड़े स्नेहसे राजोकी पीठपर आहिस्तेसे एक हाथ रखकर ग्लानि-युक्त मधुर स्वरमें पूछा,—बोलो न?

हाथका स्पर्श होते ही राजो प्रेम और ग्लानिमें विभोर हो-गयी, और तुरन्त ही उसने अपना सिर ज्ञानदत्तकी छातीपर झुका दिया। उसके रुदनने और भी करुण-रूप धारण कर लिया।

क्या हो रहा है, कोई देखता है या नहीं, कोई देखेगा तो क्या कहेगा, यह कार्य अनुचित है या उचित आदि बातोंकी

सुध दोमेंसे एकको भी नहीं रही। सुध थी एकको केवल रुदन-का कारण जाननेकी और दूसरेको किस बातकी, कहना कठिन है। राजोके मस्तक झुकाते ही ज्ञानदत्तने अपना दूसरा हाथ पसारकर राजोको हृदयसे लगा लिया। उसका सुन्दर और कोमल कपोल ज्ञानदत्तकी छातीमें चिपट गया। फिर वही प्रश्न हुआ,—बोलो न ?

तुरन्त ही दोनों एक दूसरेसे अलग होगये। मानो एकाएक उन्हें किसी बातका ज्ञान होगया; आवरण हट जानेके कारण कपोल-वक्षस्थल-स्पर्शसे दोनोंकी हृदय-स्थित ज्वाला शान्त होगयी। दोनों मन-ही-मन लज्जित हो उठे। किन्तु एकने भी दूसरेको अपराधी नहीं समझा। इस घटनाने दोनोंके दिलमें इतना संकोच भर दिया कि एकका दूसरेकी ओर ताकना कठिन होगया। थोड़ी देरतक किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर दोनों खड़े रहे। उस समय उन दोनोंके हृदय-भाव क्या थे, मूक-भाषा ही इसका उत्तर देगी।

ज्ञानदत्तकी आँखें भी भर आयीं। कहा,—बैठ जाइये, खड़ी कबतक रहियेगा।

राजो अन्यमनस्क भावसे बैठनेके लिए कुर्सीकी ओर बढ़ी। पश्चात् दोनोंने आसन ग्रहण किये। कुछ देरके बाद ज्ञानदत्तने फिर अपने पूर्व प्रश्नकी पुनरावृत्ति की।

अबकी बार उत्तर मिला,—आप जायँ जहाँ जा रहे हैं, यह सब पूछनेसे क्या लाभ ?

ज्ञान—मैं कहाँ जा रहा हूँ ?

राजो चुप रही। ज्ञानदत्तने फिर वही पूछा।

राजोने टेबुलसे समाचार-पत्र उठाकर सामने रख दिया। ज्ञानदत्तको पढ़नेकी जरूरत नहीं पड़ी, समझ गये। बोले,—तो इसमें ऐसी कौनसी बात थी? एक हफ्ता भी तो नहीं लगेगा ?

राजोकी आँखोंसे फिर अश्रु-वर्षा होने लगी। यदि वह अपने हृदयका भाव व्यक्त करनेमें संकोच न करती तो कहती, "एक हफ्ता कहते हो, एक महीना लगाओगे। तुम्हें क्या मालूम कि तुम्हारे बिना मेरा एक पल कितने दुःखसे बीतेगा।"—किन्तु हृदयके भावको व्यक्त कर देनेपर रस ही क्या रह जाता ?

बिना कुछ कहे ही ज्ञानदत्तको उसके हृदयका भाव पूर्ण रीतिसे मालूम होगया। उन्हें भी साधारण दुःख नहीं था। किन्तु कोई चारा न था,—गये बिना काम ही न चलता। सान्त्वना देते हुए बोले,—न जानेसे ठीक न होगा। विश्वास मानो, मैं ठीक सातवें दिन आ जाऊँगा।

राजोने भर्रायी हुई आवाजमें दूसरी ओर ताकती हुई बड़े कष्टसे कहा,—यदि अखबारमें न छपा होता तो मालूम भी न होता।

ज्ञान—क्या तुम यह समझती हो कि मैं तुमसे चर्चा न करता? बिना कहे चला जाता ?

राजो—कौन जाने ।

ज्ञान—यह मैं पहले ही समझता था कि जरूर तुम यही सोचोगी। किन्तु इसमें मेरा दोष नहीं राजो! अभी परसों मेरे जानेका निश्चय हुआ है। तबतक मुझे यहाँ आनेका अवकाश ही नहीं मिला, नहीं तो अवश्य कहता।

राजो—अवकाश काहेको मिलेगा! कोई मरे चाहे जिये।

'कोई मरे चाहे जिये', कह तो गयी पर तुरन्त ही लज्जाने धर दबाया।

ज्ञान—तो क्या तुम यह चाहती हो कि मैं न जाऊँ?

राजो—मैं क्यों कहूँ!

वह बातें तो कर रही थी, किन्तु उसकी दृष्टि एक बारके अतिरिक्त फिर ऊपर नहीं उठी।

ज्ञान—अच्छा, यदि तुम्हें इतना दुःख है, तो मैं न जाऊँगा। बस, अब तो प्रसन्न हो न?

यह सुनकर राजोकी हठात् पलकें उठीं; उसी तरह; जिस तरह मेघ-खंडसे अंशुमालीके आच्छादित रहनेपर पृथवी-तलपर एक ओरसे शनैः-शनैः धूप प्रसरित होती है और छाया भागती जाती है। अहा! उसके पलकोंका धीरे-धीरे उठना कितना मनोहर था। तुरन्त ही फिर पलकें गिर गयीं। मानो बिजली कौंदकर गायब होगयी। ज्ञानदत्तके हृदयमें उन विशाल नेत्रोंका उघड़ना और बन्द होना अंकित होगया। आह! उसमें कितना आकर्षण था! उसने एक बार ज्ञान-

दत्तकी ओर ताककर कृतज्ञता प्रकट की। फिर न जाने क्या सोचकर बोली,—मैं मना थोड़े ही करती हूँ।

शायद उसने यह सोचकर ऊपरकी बात कही कि अब न जानेसे इनकी बदनामी होगी। यदि कोई काम बिगड़ जायगा तो चाहे यह प्रकट न करें, पर वास्तवमें उसका अप-राध मेरे ही मत्थे थोपा जायगा।

ज्ञानदत्तने कहा,—यह न समझना कि मुझे साधारण दुःख था। क्या करूँ, मेरे विभागमें कोई आदमी ऐसा नहीं है, जिस-पर विश्वास करके भेज सकूँ। खैर, अब तो कोई-न-कोई प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।

राजोका विचार पलट गया। उसने मन-ही-मन स्थिर किया कि अपने कष्टको दूर करनेके लिए इनका अहित करना ठीक नहीं। ऐसा करना मेरा धर्म नहीं है। यह तो घातकका काम है। मुझे तो वही काम करना चाहिए, जिससे इनका हित हो, इनके मान और मर्यादकी रक्षा हो,—गौरव बढ़े।

इतनेमें बारह बजेकी आवाज हुई। ज्ञानदत्त चौंक उठे। बोले,—अच्छा अब छुट्टी दो, नहीं तो नीचे फाटक बन्द हो जायगा। फिर व्यर्थ ही चिल्ल-पों मचाना पड़ेगा

उन्हें खड़ा देखकर राजो भी उठकर खड़ी होगयी,—पर नीची निगाह किये ही। प्रणाम करनेके लिए उसके हाथ उठते ही न थे। यह कार्य इस समय उसे कितना कठोर और निष्ठुर जान पड़ा, यह वही जानती है। क्योंकि वार्त्तालापके बाद प्रणाम

करना ही बिदाईकी सूचना देता है। किन्तु समय सब कुछ कराता है। लाचार होकर उसे प्रणाम करना ही पड़ा। ज्ञानदत्तका खड़ा रहना भी तो उसे सह्य न था।

अन्ततः पं० ज्ञानदत्तजी कांग्रेसमें सम्मिलित होनेके लिए नहीं गये,—यद्यपि राजोने जानेके लिए संकोचकी रक्षा करते हुए कई बार कहा, किन्तु सहायक सम्पादकको भेज दिया।

चौबीसवाँ परिच्छेद
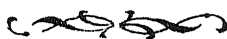
पुलिसने मामलेको बड़ी खूबीके साथ सजाया। दारोगाने अपने सिपाहीसे पीटे गये आदमीमेंसे एकको उसका गला टिपवाकर जानसे मरवा डाला और सिविलसार्जनसे सर्टिफिकेट ले लिया कि, 'यह आदमी कमजोर कलेजेका था, जोरसे धक्का लगनेके कारण इसकी धड़कन बन्द होगयी। यदि बेंतसे पीटकर छोड़ दिया गया होता तो इसकी मृत्यु कभी न होती।

डाक्टरके सर्टिफिकेट और सुबूतकी अधिकतासे खूनका मामला पुष्ट होगया। पुलिसने मौकेकी तहकीकातका विवरण भेजते हुए अपनी रिपोर्टमें लिखा कि :—

'कुबेर वल्द घिनहू और सुमेर वल्द लुरखुर नामके ओझे मौजे बिदापुरके बासिन्दे हैं। कुबेरका यह कहना कि सदा-यतनकी लड़की रमासे मेरी आशनाई है, झूठा नहीं मालूम होता। क्योंकि खुफिया जाँचसे भी इस बातका पता चला है कि रमा बदचलन औरत है। वाकया होनेके दिन कुबेर कामसे वापस आकर करीब आठ बजे खेतीके औजारोंको रख रहा था। रमाने कुछ छेड़खानी की। कुबेर भी मजाक कर बैठा। इसपर सुमेर भी कुछ बोल उठा। सदायतनने मु० रमाकी बात तो नहीं सुनी, मगर कुबेर और सुमेरके अलफाज उनके कानोंमें पड़ गये। गुस्सेमें आकर दोनोंको बेंतसे खूब पीटा। आखिरकार जिस वक्त वह कुबेरको मार रहे थे, उस वक्त सुमेर बेंतकी चोटसे रो रहा था। उन्होंने अपनी लड़कीसे कहा, खड़ी क्या देखती है, मारती क्यों नहीं हरामजादेको। जहाँतक मालूम होता है, मु० रमाको कुबेरका तो नहीं, क्योंकि उससे उसकी आशनाई थी, लेकिन सुमेरका मजाक करना नागवार मालूम हुआ था। लिहाजा वालिदके ललकारते ही उसने सुमेरको गुस्सेमें आकर इतने जोरसे झोंक दिया कि वह धड़ामसे गिर पड़ा। उसी दम उसके मुँसे खून निकल पड़ा,—मरा नहीं। ब-मुश्किल तमाम वह थानेपर आकर अधूरा इजहार लिखाते ही गुजर गया।'

बस इसी बातपर दारोगाने सुबूत इकट्ठा किया। पं० सदा-यतन और रमाकी जमानतपर रिहाई हुई। मैजिस्ट्रेटने सेशन

सुपुर्द कर दिया। खूनका मुकदमा था, इसलिए तारीख बहुत निकटकी डाली गयी। सदायतनको अपने लिए तो कोई चिन्ता न थी, किन्तु लड़कीका भरी अदालतमें हाजिर होना उन्हें बहुत खलने लगा। रमाने पिताको आश्वासन दिया। पाठकोंको मालूम होगा कि अब रमाके विचार पहलेकेसे नहीं रह गये थे। इस अल्पावस्थामें ही उसमें बहुत बड़ी गम्भीरता अध्ययन-शीलता और सहन शीलताका समावेश होगया था। वह देश और जातिकी रक्षाके लिए अपने प्राणतक निछावर करनेको तैयार थी।

बिदापुरमें हाहाकार मचा था। छोटे-बड़े, सबलोग पं० सदायतनके लिए अत्यन्त दुःखी थे। मुकदमेका रुख देखकर लोगोंकी यह धारणा हो गयी थी कि फाँसीका दंड अवश्य मिलेगा। इसीलिए सबलोग अधीर होकर सदायतनसे कहने लगे, कि कुबेरको कुछ रुपये देकर उसे मिला लेना चाहिए। किन्तु उन्होंने इस बातको किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया। कहा, ईश्वररक्षा करेंगे, मैं यह अनुचित कार्य कभी न करूँगा। अन्ततः गाँववालोंने गुप्त रीतिसे आपसमें चन्दा करके यह तय किया कि पंडितजीको मालूम न हो और कुबेर तथा अन्य गवाहोंको मिलाकर इजहार बदलवा दिया जाय।

इन्हीं दिनों एक और कांड होगया। जीवनमें जब कष्टोंकी बारी आती है, तब चारों ओर कष्ट-ही-कष्ट दृष्टिगत होता है। यही प्रतीत होता है कि यह संसार केवल दुःखमय है, इसे

सुख-दुख-मिश्रित कहना भूल है। बेचारी रमाको अभी न जानें क्या-क्या देखना बदा है। खूनका मुकदमा प्रारम्भ होते ही भावजोंने उसके सामने ही वाग्-बाण छोड़ना शुरू कर दिया। एक दिन तो एक भावजने यहाँतक कह डाला कि,—यदि यह ऐसी न होती तो यह आफत काहेको आती। इनकी इसी चालके कारण आजतक रामपुरका एक कुत्ता भी नहीं झाँक चला। चली थीं देशका सुधार करने !

ये बातें रमाको असह्य होगयीं। मुकदमेकी तारीखमें केवल चार दिनकी देर थी। आधी रातके समय रमा अपने डेढ़ सालके बच्चेको लेकर घरसे निकल गयी। उसे कितना कष्ट हुआ, कहना कठिन है। पति-विरहाकुला रमा बरसात-की कितनी रातें—जब रिमझिम पानी बरसने लगता और आकाशमें काले बादल गरज उठते, बिजली कौंधने लगती—बिछौनेपर करवटें बदलकर काट चुकी थी। जाड़ेकी कितनी गोधूलियोंमें वह धूमिल पश्चिम क्षितिजकी ओर चुपचाप देखा करती थी। उसके उस मौनमें कितना विषाद निहित रहता था, उस दृष्टिमें अन्तरकी कितनी वेदना होती थी ! फिर भी वह अपना समय काटती जाती थी। किन्तु आज आधी रात-का बिताना उसके लिए पहाड़ होगया। सब कुछ सहन करने-की शक्ति उसमें थी; किन्तु भावजोंके कथनकी ज्वालाका सहन करना उसकी सहन-शक्तिसे बाहर था। इसीसे आज वह माँ-बापको छोड़कर चल पड़ी और पिताके नाम यह पत्र लिख-

कर छोड़ती गयी कि :—

"बाबूजी,

मेरे लिए आप चिन्ता न करें। तारीखके दिन मैं अदालतमें हाजिर हो जाऊँगी। यदि मेरे हट जानेमें आपका मंगल था तो मुझे बहुत शीघ्र आपका घर त्याग देना चाहिए था। किन्तु मैं ऐसा न कर सकी। कारण, पहले यह मैं नहीं जानती थी कि मेरे हटनेसे आपका कल्याण होगा,—लोगोंकी यह धारणा है। यह मैं जानती हूँ कि मेरा इस प्रकारसे चल देना आपको तथा माँको विशेष कष्टकर होगा, किन्तु क्या करूँ मेरे लिए और कोई मार्ग ही नहीं था। इसपर आप विश्वास करें कि आपकी यह हतभागिनी कन्या किसी प्रकार भी आपके नामपर कलंक न लगने देगी।

आपकी पुत्री

रमा

पत्र पढ़कर पं० सदायतनको इतना शोक हुआ कि उनका उठना-बैठना भी अपाढ़ होगया। गाँवकी स्त्रियाँ रमाको प्रशंसा करने लगीं। देवी न मालूम कहाँ अन्तर्धान होगयी। अहा! माँ-बापपर रमाकीसी भक्ति रखनेवाली लड़कियाँ इस युगमें कहाँ? रमा हर समय बड़ोंकी आज्ञा पानेके लिए अहकती रहती थी। यह सब सुनकर सदायतनकी मानसिक वेदना और भी बढ़ने लगी। यहाँतक कि कल तारीख है और आज दिनके लगभग दस बजे उनका प्राण-पखेरू सदाके लिए

उड़ गया। लोग कहने लगे, पंडितजी बड़े भाग्यवान पुरुष थे। ऐसा दयालु होना कठिन है। उन्होंने अपने जीवनमें कोई दुःख नहीं देखा। उनकी पुत्र-वधुयें कहने लगीं, रमाके कारण ही बाबूजीकी मृत्यु हुई। रमाने ही इस घरको चौपट किया। यदि कुछ दिनोंतक वह यहाँ और रहती तो न जाने क्या-क्या अनर्थ हो जाता।

बिदापुर गाँवके लोग अपने दयालु स्वामीकी मृत्यु होनेपर बिलकुल अनाथ होगये। मायाधरने अपने पिताके कार्य्यको अपने हाथमें लेनेके लिए लोगोंको आश्वासन दिया, किन्तु कुबेर आदिको समझाने-बुझानेके लिए वह भी राजी न हुए। इससे गाँवके लोग शान्त न हो सके। समय बिलकुल नहीं था। सन्ध्याके समय गाँवके प्रमुख लोग शोकातुर चित्तसे बैठ-कर कल अदालतमें कार्य्य करनेके लिए विचार कर रहे थे, तबतक एक आदमीने आकर कहा,—बड़ा गजब होगया।

मायाधर—क्या?

वह—एक औरतको कुछ सिपाही पीटते हुए थानेपर ले गये हैं। सिपाहियोंकी नीयत अच्छी नहीं मालूम हो रही थी। औरत बिलकुल युवती है। उसे देखा तो जरूर है, पर पहचान नहीं सका।

मायाधर सन्न होगये। सोचा, कहीं रमा न हो। किन्तु फिर यह सोचकर कि रमाको यहाँ चार कोसमें ऐसा कौन मनुष्य है, जो न चीन्ह सके, उन्हें शान्ति मिली।

एक दूसरे आदमीने कहा—अरे कुबेरकी लड़कीको तो नहीं कह रहे हो ?

वह आदमी जरा सोचकर बोला,—हाँ-हाँ ठीक है, वही थी। तभी तो मैं कहता था कि उसे देखा है, सुध नहीं आ रही है।

दूसरा—अच्छा है, सालेकी दुर्गति होने दो। किन्तु यह नहीं मालूम हुआ कि क्यों पकड़कर ले गये हैं।

मायाधरने कहा—ऐसा न कहो। सबलोग अभी जाकर उसकी रक्षा करो। यदि हमलोग ऐसा सोचेंगे, तो कुबेरकी और हमलोगोंकी बुद्धिमें फर्क ही क्या रह जायगा। उसकी लड़की अपनी बेटीके समान है। हमें अपने कर्मसे च्युत नहीं होना चाहिए। चलो मैं तुमलोगोंके साथ ही चलता हूँ।

यह कहकर पं० मायाधर उठ खड़े हुए। सबलोग मन-ही-मन सहम गये। सोचा, वास्तवमें यह अपने पिताके समान ही रक्षक होंगे। अभी दग्ध संस्कार करके आये चार घंटे भी नहीं बीते; पितृ-शोक बासी भो नहीं हुआ कि यह दूसरेका धर्म बचानेके लिए तैयार होगये। फिर क्या था, जितने आदमी थे, सब उत्साहित होकर तैयार होगये। गाँवके और भी बहुतसे आदमी बुला लिये गये। बन्दूक, तलवार, गड़ासा, बर्छी, आदि लेकर सबलोग मायाधरके पीछे-पीछे थानेकी ओर चल पड़े।

थानेके पास पहुँचकर मायाधरने एक आदमीसे सारा भेद जान लिया। कुबेरकी लड़कीपर दारोगा बहुत दिनोंसे आशिक

थे। सदायतनजीके कारण कुछ कर नहीं सकते थे। अब उसका भय छूट गया। कुबेर घरसे हटा दिया गया था, इसलिए वह जबर्दस्ती पकड़वा मँगायी गयी है। यह मालूम हुआ कि थोड़ी देर पहले कुबेर उस लड़कीकी खोजमें आया था। किन्तु दारोगाने कहा,—वह यहाँ तो नहीं आयी। तुम जल्दी उसका पता लगाओ, मैं अभी चलकर उसपर बुरी निगाह डालनेवाले-की खाल खींच लूँगा।

यह हाल सुनकर मायाधरका रक्त खौल उठा। सब आद-मियोंको वहीं रोक दिया। केवल एक आदमीको साथ लेकर आप थानेमें गये। जो दारोगा, पं० सदायतनके एक नौकरको देखकर काँप उठता था, वह आज उनके ज्येष्ठ पुत्र मायाधरको देखकर बोलातक नहीं। यह समयकी खूबी है। दारोगाने सोचा कि, यह खूनवाले मामलेमें कहली-विनती करनेके लिए आये होंगे।

किन्तु मायाधरने न तो दारोगाके इस अनुचित बर्त्तावपर ध्यान ही दिया और न वह अनुनय-विनय करने ही गये थे। शिष्टतापूर्वक बोले,—दारोगाजी, मैं आपकी सेवामें एक प्रार्थना करनेके लिए आया हूँ। आशा है, आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

दारोगाको अपने अनुमानकी सत्यतापर गर्व हुआ। रुआबके साथ बोले,—अब कुछ कहना-सुनना बेकार है। यदि ऐसा ही था तो पहले आये होते। इतने घमंडकी क्या जरूरत थी?

माया—जरूरत तो आज पड़ी है, पहले किस कामके

लिए आता ?

दारोगा—जिस कामके लिए आज आये हैं।

माया—क्या आप बतला सकते हैं कि, आज मैं किस काम-के लिए आया हूँ?

दारोगा—इतनी फुर्सत नहीं है।

माया—ऐसा न कहिये। रार करनेका फल अच्छा नहीं होता। खुराफात करना भलेका काम नहीं।

दारोगा—तो और क्या कहूँ? अब मेरे हाथमें क्या है? क्या अपनी रिपोर्टके खिलाफ काम करके जहन्नुममें मिलूँ?

माया—आप तो न जानें क्या सोच रहे हैं। मैं उसके लिए कुछ भी नहीं कहना चाहता। वह तो ईश्वराधीन है। जो कुछ होगा, देखा जायगा। मैं ऐसे कामके लिए आया हूँ, जो आप-के हाथमें है।

दारोगाने चकित होकर पूछा,—सो क्या?

माया—क्या मैं यह जान सकता हूँ कि कुबेरकी लड़की किस अपराधपर पकड़कर मँगायी गयी है?

दारोगाने कड़े स्वरमें पूछा,—कौन कुबेर?

माया—वही कुबेर जिसके हाथमें इस समय आपकी नौकरी है।

दारोगाने उत्तेजित होकर कहा,—वह तो अभी-अभी फरि-याद करके गया है। जान पड़ता है कि उसे आपहीने छिपा रखा है और ठेसरा करनेका यह जरिया सोच निकाला है।

माया—फरेबकी बातें करनेसे कोई लाभ नहीं है। मुझे सारी बातें मालूम होगयी हैं, अब कृपा करके उसे छोड़ दीजिये। किसीकी बहू-बेटीका धर्म बिगाड़ना आप-सरीखे पढ़े-लिखे आदमीका काम नहीं है।

दारोगाने रूखी हँसी हँसकर कहा—क्या खूब! कलके लड़के होकर आये हो खेल खेलने। अरे म्यां, पुलिसमें काम करते मुझे पन्द्रह साल गुज़र गये।

माया—ईश्वर करें इसी तरह आपकी जिन्दगी बीत जाय। पर मेहरबानी करके उसे छोड़ दीजिये।

दारोगाने ताव बदलते हुए कड़े स्वरमें कहा,—तुम कैसे बदतमीज आदमी हो जी? मेरे पास किस सालेकी बहन-बेटी बैठी है कि छोड़ दूँ?

मायाधरने शान्ति-पूर्वक कहा,—खैर, मैं बदतमीज ही सही, पर अपनी तमीजदारी दिखलानेके लिए उसे छोड़ दीजिये। उसके छोड़नेमें ही आपकी भलाई है।

इतना सुनते ही दारोगाका चेहरा तमतमा उठा। त्योरियां बदलकर बोले,—ठहरिये अभी छोड़ता हूँ।

यह कहकर दारोगाने आवाज दी,—ए! कौन है, कान्सटेबिल! इधर आओ!

'हुजूर' कहते हुए दो सिपाही आ गये।

दारोगाने कहा,—इस लौंडेको पकड़कर कोठरीके भीतर बन्द कर दो।

दोनों सिपाही पकड़नेके लिए चले। मायाधरने बड़े जोर-से डपटकर कहा,—खबरदार! उनके साथके आदमीने कहा,—ओहरै रहौ, नाहीं तो धड़के मस्कब चूर होई जाबा।

सिपाही हिचक गये। दारोगाने उत्तेजित होकर कहा,—बुजदिलो, देखते क्या हो। जल्दी पकड़ो!

सिपाही लपके। मायाधर दो कदम पीछे हट गये। इतनेमें गाँवके सधे हुए लोग झटसे पहुँच गये। उनमें अधिकांश ऐसे लोग थे, जिनकी अभी रेख भीन रही थी। एकने दारोगाका हाथ पकड़ लिया। पीटना ही चाहता था कि मायाधरने रोक दिया। अब तो थानेदारकी अक्लपर पड़ा हुआ पर्दा हट गया। सिपाही भी हक्के-बक्केसे होकर मुँह निहारने लगे।

मायाधरने बड़ी शान्तिके साथ गाँववालोंसे कहा,—थानेके किसी भी आदमीका रोआँ न दुखाओ। दो आदमी जाकर उस दक्खिनवाली कोठरीके भीतरसे लड़कीको निकाल लाओ। यदि उस कोठरीमें ताला लगा हो, तो दारोगाजीसे चाभी माँगो; न मिलनेपर ताला तोड़ दो।

लोगोंने ऐसा ही किया। चाभी माँगनेपर दारोगाने मीन-मेष कुछ भी नहीं किया। सोचा,—इस समय झंझट दूर हो, ल इनके ऊपर दूसरा मुकदमा कायम किया जायगा।

जब लड़की सामने आयी, तब मायाधरने दारोगासे कहा, हिये जनाब! यह कहाँसे आगयी?

गाने कुछ नहीं कहा। लड़की भयके मारे काँप रही थी।

मायाधरने पूछा,—क्योंरी, तू यहाँ कैसे आयी ?

वह रोने लगी। बाद मायाधरके पैरों पड़कर रोते हुए बोली,—जबरजस्ती धइ लियायेन सरकार।

माया—क्यों पकड़ लाये ? साफ-साफ कह, डर मत। मेरे रहते तेरा कोई कुछ नहीं कर सकता।

औरत—ई हम नाहीं जानित। बाकी जो सरकार थोरिक बेर अउर न आइ होतें तौ ए सभे हमैं बेइज्जति—यह कहकर उसने मुँह ढँक लिया और जोरसे रोने लगी।

मायाधरने दारोगाकी ओर हेय दृष्टिसे देखते हुए कहा,—बड़े शर्मकी बात है। छिः-छिः! पढ़े-लिखे आदमीको इतने कमीनेपनका काम नहीं करना चाहिए दारोगा साहब !

दारोगाकी जबान न खुली। मायाधर उस लड़कीको उसके घर पहुँचानेकी व्यवस्था करके अपने घर चले आये। उनके जाते ही दारोगा साहब सब सिपाहियों तथा और भी बहुतसे बाहरी आदमियोंको अपनी अक्ल और इख्तियारातका इस प्रकार परिचय देने लगेः—कल डाकाजनीकी रिपोर्ट भेजकर बच्चूको मजा चखा दूँगा। उस हरामजादीकी हिम्मत तो देखो। एक तो कुबेरवासे कुछ काम निकालना है, दूसरे कल ही कचहरी भी जाना है, नहीं तो अभी मैं उसे रोक लेता। देखता इस लौंडेकी हिम्मत। खैर कोई मुजायका नहीं। छिनालको अपनी बीबी बनाकर छोड़ूँगा।

कुबेर अन्धेरेमें बैठा सब सुन रहा था। बड़ी देरतक

दारोगाकी बातें होनेके बाद जब सबलोग उठकर जाने लगे, तब कुबेर भी चुपचाप छिपकर चला आया। घर न जाकर उस आदमीके पास गया, जिसकी लड़कीपर उस दिन भूत चढ़ा था और जिसके कारण खूनका मुकदमा चलाया गया था। वहींपर बाकी दो गवाहोंको बुलाकर बातें कीं।

थोड़ी रात शेष रहते ही दारोगाके दो सिपाही बुलानेके लिए आये। उस समय भी वे बातें ही कर रहे थे। किन्तु कामकी बातें हो चुकी थीं। सिपाहियोंको देखते ही सबके-सब खामोश होगये और झटपट तैयार होकर चारो गवाह कचहरीमें हाजिर होनेके लिए सिपाहियोंके साथ चल दिये। रास्ते-भर चारो गवाहोंको दारोगाजीके आज्ञानुसार सिपाही लोग एक-एक अक्षर रटाते गये।

यथा समय जजीमें मुकदमा पेश हुआ। रमा हाजिर थी। सदायतनकी मृत्युके सम्वादपर सरकारी वकीलने कहा,—इसमें भी कारवाई की गयी है। सब-इन्सपेक्टरके पास काफी सुबूत है।

मायाधरके वकीलने डाक्टरका सर्टिफिकेट दिखलाकर भ्रम दूर कर दिया। डाक्टरने साफ लिखा था कि सदायतनकी मृत्यु केवल गहरी चिन्ताके कारण हुई है।

पश्चात् कुबेरकी पुकार हुई। उसने इस आशयका इजहार दिया,—हम सभे सरकार कै परजा हई हजूर। कौनो काम बिगड़ेपर जरूरे रंज होथैं। कबौं मारिउ दे थैं। ओहू

दिन एक थप्परा मारे रहें. सुना ओकर हमैं सभै माँख नाहीं बा। परवरिस तौ ओ करथैं मारी-गरियाई के ?

जज—ठहरो, जो बात पूछी जाय, उसीका जवाब दो।

कुबेर—बहुत अच्छा हजूर।

सरकारी वकील—सदायतनकी लड़की रमासे तुम्हारी मुहब्बत थी न ?

कुबेर—हाँ सरकार, अइसन सुद्धो और दया करैवाली बिटिया वसुधामें नाहीं हई।

वकील—यह मैं नहीं पूछ रहा हूँ। मेरे पूछनेका मतलब यह है कि रमाकी चाल-चलन खराब है न ?

कुबेर—के सरचा कह थै सरकार ? राम राम, अइसन लछिमी तौ हम देखबै नाहीं किहा।

वकील—तो क्या उस दिन जब तुमने रमासे मजाक किया था, तब सुमेर भी कुछ बोला था ?

कुबेर—सब झूठ बात हौ।

वकील—अच्छा तो क्या रमाने योंही सुमेरको झोंक दिया ?

कुबेर—ओ तौ घरेसे बहरे निकलबै नाहीं करतीं।

वकील—अगर रमाका धक्का न लगा होता तो सुमेर न मरता न ?

मायाधरके वकीलने सरकारी वकीलके पूछनेके ढंगपर आपत्ति करते हुए कहा,—ऐसा प्रश्न करना सर्वथा अनुचित है जिसका उत्तर केवल अपने पक्षमें मिलनेकी सम्भावना हो

'मारा न !' 'ऐसा हुआ न !' 'चाल-चलन खराब है न !' आदि प्रश्नोंका उत्तर देहाती आदमी बहुधा 'हाँ' दे सकता है। इसलिए ऐसे ढंगसे क्रास न करनेके लिए सरकारी वकीलको चेतावनी दे देनेकी प्रार्थना है।

जजने ऐसा ही किया। सरकारी वकीलने जजकी आज्ञाको मानते हुए पूछा,—अच्छा, अगर रमाका धक्का न लगा होता तो सुमेर मरता या नहीं ?

सुमेर—हम नाहीं समुझा हजूर।

वकील—मैं यह पूछता हूँ कि सुमेर कैसे मरा ?

कुबेर—ई हम नाहीं जानित। काहेसे कीं थानेपर दरोगाजी ओके कोठरीमें बन्द कराइ दिहे रहेनि। अब भीतर कै हाल केहू देखत हौ ?

वकील साहब चुप होकर बैठ गये। मायाधरके वकीलने क्रास (Crass) करके कुबेरसे यह कहलवा लिया कि यह सब दारोगाकी काररवाई है। वह पहले कुबेरको ही मरवाना चाहते थे, पर उसमें सहूलियत न होनेपर सुमेरके घरवालोंको कुछ रुपयेकी लालच दिखाकर उन्होंने सुमेरको भीतर बुलाया और उसे खतम कराकर एक धनी परिवारपर इस प्रकार मामला चलाया।

ओफ ! कितना स्वार्थी और कठोर संसार है। कभी-कभी दूसरेको आफतमें डालनेके लिए मनुष्य अपनी प्यारीसे-प्यारी वस्तुको यहाँतक कि घरके प्राणीको भी, सदाके लिए अलग कर देनेमें नहीं हिचकता। यही कारण है कि सुमेरके भाईने

कहा था,—'एक दिन तौ मरहीके बा।'

इसी प्रकार बाकी तीन गवाहोंके बयान भी बिलकुल सत्य और दारोगाके विरुद्ध हुए। दारोगाका कलेजा सूख गया।—काटो तो खून नहीं! मायाधरके हितैषी जी उठे। सबलोग अचम्भेमें आ गये। किन्तु रमा जैसी पहले थी, वैसी ही अब भी। उसके हृदयमें न तो पहले खेद ही था और न अब किसी प्रकारकी प्रसन्नता ही। उसमें ज्योंकी-त्यों धीरता बनी रही।

मुकदमेकी सारी काररवाई समाप्त हो जानेपर निश्चित तारीखपर जजने रमादेवीको निरपराध छोड़ दिया। दारोगा चौपट होगये। उनकी नौकरी छूट गयी, बेचारे दूसरा मुकदमा डाकेवाला न चला सके। दिलकी हवस दिलहीमें रह गयी। लोगोंका अनुमान था कि यदि वह मुकदमा चलानेकी नौबत भी आती तो एक भी सुबूत उन्हें न मिलता, उलटी मुँहकी खानी पड़ती।

फैसला सुनकर कचहरीसे बाहर निकलते ही कुबेर तथा भुलइया दोनों आकर मायाधरके पैरोंपर गिरकर क्षमा माँगने लगे। कहा,—भैया, हमार पचके कसूर माफ होइ।

मायाधरने बड़े प्रेमसे दोनोंकी पीठपर हाथ रखकर कहा,—तुमलोगोंने कोई कसूर नहीं किया। यदि हमलोग शिक्षाका प्रबन्ध किये होते, तुमलोगोंको शिक्षित बनाये होते तो ऐसा क्यों होता? दोष हमलोगोंका ही है।

कुबेर—एतना कुलि भयेउपर ओहि दिन सरकारै हमरे

बिटियाकै इज्जति वँचायेन । हाय राम, ऐसे देवताके ऊपर हम दरोगा ससुरके कहेमें आइके ई कुलि किहा, हमार न जानीं कवन गति होई !

माया—अब इसकी चिन्ता न करो, तुमलोग अपने घरोंमें आकर रहो । मुझे कोई रंज नहीं है ।

इसके बाद कुबेर भुलइयाके पैरपर गिरा । कहा,—तू जवन डाँड़ लगावा, डंड द्या, ऊ सब हमके मंजूर बा । ओहि दिन हमही ओझाई करैके बहाने जाइके तोहरे पतोहूकै इज्जति उतारा ।

भुलइया यह हाल पहले ही सुन चुका था, अतः दुःखी भावसे केवल इतना ही कहा,—जवन संजोग रहा, तवन भा । अब ओकर चर्चा छोड़ि द्या ।

पश्चात् मायाधरने रमाकी खोज की । वह देवी अदालत-से निकलकर न जानें कहाँ चली गयी । किसीने उसे नहीं देखा । लाचार होकर मायाधर जब अपनी साध्वी भगिनीको खोजकर हार गये तब घर आये । इस प्रकार सत्यकी विजय हुई । दयालुता और परोपकारने दुष्ट-स्वभावपर अधिकार जमाया । संसारमें पं० मायाधर उदाहरण स्वरूप होगये ।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

अब पाठकगण एक बार रामपुरकी सैर करें। यहाँ प्रभाने पूर्णरूपसे अधिकार जमा लिया। रमाके लड़का पैदा होते ही उसने अपनी सत्यता पूर्णरूपसे प्रमाणित कर दी। अपनी पुत्र-वधूकी दुश्चरित्रताका स्मरण करके पं० शम्भूदयाल दुःखी रहने लगे। कुछ ही दिनोंमें वह सन्निपात-ज्वरमें ग्रस्त होनेके कारण चल बसे। देवकी भी पति-शोकको अधिक दिनोंतक सहन न करके उनकी मृत्युके महीनेभर बाद ही इस संसारसे विदा होगयीं। किन्तु माता-पिताकी मृत्युसे धर्मदत्तको किसी प्रकारकी पीड़ा न हुई। बल्कि इससे वह प्रसन्न ही हुए। स्त्रीके कहनेमें आकर उन्होंने माँ-बापकी मृत्युका समाचारतक ज्ञानदत्तके पास नहीं भेजा, रुग्णावस्थामें बुलाना तो दूर रहा।

इधर प्रभाके माँ-बापका भी प्लेगके कारण सर्वनाश होगया। कोई पिंडा-पानी देनेवाला भी नहीं रह गया। इसलिए उन्होंने जीवितावस्थामें ही अपनी सारी जायदाद प्रभा और धर्मदत्तके नामसे बक्सीस लिख दी थी। लिखकर रजिस्टरी करानेके दो महीने बाद वे विकराल कालके ग्रास होगये। धर्मदत्त उस सम्पत्तिके मालिक बने। अब उन्होंने लालचमें पड़कर ज्ञानदत्त-से अलग होनेकी ठानी। किन्तु ज्ञानदत्त कभी घर आये ही नहीं। इन्हीं दिनों यह भी समाचार मिला कि रमा घरसे निकलकर

कहीं चली गयी। प्रभा प्रसन्नताके कारण नाचने लगी। समझा, अब कुछ ही दिनोंमें सारी सम्पत्ति मेरी हो जायगी। अब उसका जीवन-पथ निष्कंटक होगया। घरकी मालकिन होगयी। मैकेकी जायदाद मिलनेसे आर्थिक स्थिति भी अच्छी होगयी। पति-पत्निमें केवल ज्ञानदत्तकी चिन्ता रह गयी। यदि वह एक बार आते, और अपना हिस्सा अलग कर लेते तो दोनोंको निश्चिन्तता हो जाती। क्योंकि पीछे देश-गाँवके लोग ससुरालकि सम्पत्तिमें भी ज्ञानदत्तका भाग लगावेंगे, यह बात ठीक न होगी।

इरादा तो यह था कि किसी प्रकारसे ज्ञानदत्तका हिस्सा भी अपना हो जाय। किन्तु ऐसा करनेसे केवल बदनामी होगी, हाथ कुछ न लगेगा, यही सोचकर इसके सम्बन्धमें धर्मदत्तने किसी प्रकारका काम नहीं किया। हाँ, यह अवश्य किया कि यदि ज्ञानदत्तके विवाहकी चर्चा चलती तो वह कह देते कि वह तो होटलमें खाते हैं। ऐसी अफवाह इसलिए उड़ायी जाती थी, जिसमें ज्ञानदत्तका विवाह कभी न हो और सम्पत्तिका मालिक चिरं० जगदीश हो।

जेठके महीनेमें दोनोंकी इच्छा पूर्ण हुई। ज्ञानदत्त घर आये। माँ-बापको न देखकर बड़े चकित हुए। उनके दिलकी सारी उमंग जाती रही। इतने दिनोंमें बड़े यत्नसे सात हजार रुपये जुटाकर वह घर आये थे। सोचा था, किसीका ऋण-भार सिर-से उतारकर माँ-बापको प्रसन्न करूँगा। हाल सुनते ही अवाक्

होगये। बालककी भाँति फूट-फूटकर रोने लगे। कहा—भैया, आपने मुझे समाचारतक नहीं भेजा!

धर्मदत्तने कहा—मैंने तो दो पत्र दिये, किन्तु तुम्हारी ओर-से एकका भी उत्तर नहीं आया।

प्रभाने पतिकी बातको पुष्ट करनेके लिए कहा,—एक चिट्ठी तो मैंने अपने सामने लिखवायी थी।

यद्यपि ज्ञानदत्तको भाईकी बातपर विश्वास नहीं हुआ, तथापि कुछ कहना व्यर्थ समझकर नहीं बोले। सोचने लगे,—अब चाहे कितनी ही सम्पत्ति कमायी जाय, बाबूजी न देख सकेंगे। हाय! उनकी अभिलाषा ज़रा भी पूरी न हुई। उनका यह कहना नहीं भूलता कि, "कोई ऐसा दिन भी आवेगा, जब मैं ज्ञानूकी कमायीसे अपनेको ऋण-मुक्त होता देखूँगा?" आज बाबूजीको इन सात हजार रुपयोंसे कितनी बड़ी प्रसन्नता होती! उनकी प्रसन्नतासे मुझे कितना आनन्द मिलता!

उस दिन ज्ञानदत्तने कुछ नहीं खाया। सबेरे जब स्नानादि-से निवृत्त होकर आँगनमें जलपान करने बैठे, तब धर्मदत्तने कहा,—भाई ज्ञानू, भले मौकेसे आये हो, अबकी बार तुम अपना हिस्सा अलग करते जाओ। बात यह है कि झंझटकी गृहस्थी है, लोग कहेंगे, ज्ञानू यहाँ नहीं रहते थे, ये लोग सब खा गये। इस प्रकार लोकमें व्यर्थकी मेरी निन्दा होने लगेगी।

ज्ञानदत्तने आश्चर्य्यमें पड़कर कहा,—मैंने तो ऐसा कभी नहीं कहा भैया! लोगोंके कहनेसे क्या होता है?

धर्मदत्त—यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम न तो आजतक ऐसा कहे हो, और न कहोगे। लेकिन लोगोंका कहना क्या कम कलंककी बात है? इसमें हर्ज ही क्या है, सारी सम्पत्ति बाँट ली जाय, यदि तुम कहोगे तो तुम्हारी ओरसे सूल-तहसील मैं ही कर दिया करूँगा।

ज्ञानदत्त थोड़ी देरतक चुप रहे। बाद बोले,—यह अत्यन्त लज्जाकी बात है। लोग कहेंगे, पिताके मरते ही दोनों भाइयों-में नहीं पटी, अलग होगये। जब··· ······

धर्मदत्तने बात काटकर कहा,—किन्तु कुछ ही दिनोंतक। जब हमारा और तुम्हारा प्रेम पूर्ववत् ही देखेंगे, तब स्वयं ही लोग अपनी भूल मान लगे।

ज्ञानदत्तने कहा,—मैं अपने जीवनमें ऐसा नहीं कर सकता। यदि आप कहें तो मैं यह लिख दूँ कि, आप इस सारी सम्पत्ति-को चाहे आज ही खो दें, मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं।

यह सुनकर धर्मदत्त बड़े पेचमें पड़ गये। अन्ततः सहोदर भाई ही तो थे, कहाँतक हृदय कठोर कर सकेंगे। कुछ भी न बोल सके। 'सिखयी बुद्धि उपराजी माया नहीं होती।'

स्वामीको चुप देखकर मायाविनी प्रभा बोल उठी,—सो क्या हमलोगोंको नहीं मालूम है ज्ञानू बबुआ। मैं तुमको बाबा-से कम नहीं समझती। लेकिन तुम मेरा कहना मानो, जैसा कहा जा रहा है, वैसा ही करो। इससे यह न समझो कि माया कम हो जायगी।

ज्ञानदत्तने निष्कपट भावसे कहा,—मुझे पिताकी सम्पत्तिका जरा भी लोभ नहीं है। मैं अपना हिस्सा भैयाके नामसे बैंची कर दूँगा। तब तो लोगोंको कुछ कहनेका अवसर न मिलेगा न ?

अब तो प्रभा भी निरुत्तर होगयी। ज्ञानदत्तने फिर कहा,—चलिये कल लिख-पढ़कर रजिस्टरी करा दूँ।

धर्मदत्तने कहा,—नहीं, ऐसा करना ठीक नहीं है। जिन्दगीका कोई ठिकाना नहीं; कल मेरे शरीरको कुछ हो जाय तो तुम किसी ओरके न रहोगे।

ज्ञानदत्तने बड़े ही शान्त भावसे कहा,—इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। जब मेरे दुर्भाग्यसे तुम्हीं न रहोगे, तब यह सब लेकर ही मैं क्या करूँगा ?

प्रभाने स्वामीकी ओर मुख करके कहा,—जैसा ज्ञानू बबुआ कहें, वैसा क्यों नहीं करते ? क्या बाबाको तुम इतना नीच समझते हो ? बबुआका कहना ठीक है। बैंची लिख देनेपर हमलोगोंको कोई कलंक न लगा सकेगा।

ज्ञानदत्तको भाभीका उक्त कथन नहीं जँचा। प्रभाका कपटपूर्ण हृदय उन्हें खटक गया। फिर भी वह कुछ नहीं बोले। जलपान करके बाहर चले आये। गाँववालोंसे बातचीत होनेपर भाईके आन्तरिक अभिप्रायका पता चल गया। अब उनका हृदय सतर्क होगया। यों तो वह अपनी सारी सम्पत्ति भाईको देनेके लिए तैयार थे; किन्तु जब यह सुना कि 'ससुरालका धन

पाकर अपनी गृहस्थी बढ़ानेके लिए वह ऐसा कर रहे हैं, तब वह भी कड़े होगये।

दो दिन बीत गये। ज्ञानदत्तने बँची करनेकी चर्चा नहीं की। इसलिए स्वामीकी उपस्थितिमें प्रभाने फिर वही बात छेड़ी,—सब बाँट डालो न, नहीं तो बबुआ चले जायँगे।

यह बात इसलिए कही गयी कि ज्ञानदत्त फिर बँची करनेके लिए कहेंगे। किन्तु उन्होंने यह कहा कि,—यदि आपकी यही इच्छा है तो फिर देर करनेकी क्या जरूरत है।

धर्मदत्त और प्रभाका हृदय स्तब्ध होगया। क्षणकालतक चुप रहनेके बाद धर्मदत्तने कहा,—आज बैठो, सब समझकर ठीक कर लिया जाय।

ज्ञानदत्तने कहा,—अच्छी बात है।

दोनों भाइयोंका बँटवारा होकर लिखन-पढ़न होगया। ज्ञानदत्त अपने भतीजेको पाँच सौ रुपये देकर कलकत्ता चले गये। अब धर्मदत्तने अपनी इच्छाके अनुसार विस्तार शुरू कर दिया। ससुरालकी कुछ सम्पत्ति बै करके उन्होंने गिरों लिखी हुई अपने हिस्सेकी सारी जायदाद छुड़ा ली। स्त्री-पुरुष प्रसन्न-चित्त होकर आपसमें सलाह करके सारा कार्य करने लगे। किसीका देना नहीं रह गया, इसलिए गृहस्थीसे अच्छी आय होनेकी आशा करके दोनों विह्वल हो उठे। अमीरी भी खूब बढ़ गयी। लड़केकी शिक्षाका प्रबन्ध घरपर ही किया गया; ताकि वह नजरोंसे ओझल न रहे।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

—— ::※:: ——

उस दिन पिताके घरसे निकलकर दो दिनमें रमा शान्तिपुर नामक गाँवमें पहुँची। यह गाँव पहाड़ी हिस्सेमें था। उसने वहाँ पहुँचने तथा रहनेका प्रबन्ध उसी समय कर लिया था, जब भावजोंके दिलमें उसके प्रति बुरा भाव पैदा हुआ; किन्तु यही सोचकर वह कहीं नहीं हटी कि जबतक निभ सके, निर्वाह करना चाहिये—संसारमें घबड़ानेसे काम नहीं चलता। इसलिए वहाँ पहुँचनेमें किसी प्रकारकी अड़चन नहीं पड़ी। मार्गमें उसने बहुतसी नवीन बातोंका अनुभव किया। जब वह सड़ककी ओर जा रही थी, तब बहुतसे मदान्ध युवक ही क्यों अव-बुढ़ भी बोली बोलते थे, गन्दे शब्दोंका प्रयोग भी कर बैठते थे। जब वह रेलपर बैठी, तब उसकी गाड़ीमें बैठे हुए कितने ही मनुष्य तेजीसे दौड़ती हुई गाड़ीके बाहर हाथ निकालकर जमीनपर खड़ी हुई स्त्रियोंको बुलाते और गला फाड़कर चिल्लाते थे। समाजकी यह कुत्सित दशा देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। यहाँतक कि एकबार उसका चेहरा तमतमा उठा; किन्तु शान्त और मधुर शब्दोंमें ही बोली,—क्यों मेरे भाई! आप ऋषियोंके वंशमें जन्म लेकर ऐसा कर रहे हैं? भला बतलाइये तो, इससे किसकी हानि हो रही है? आपकी या किसी दूसरेकी? ऐसी गन्दी हरकतोंसे मन पापी हो जाता है, मेरे प्यारे।

यह सुनकर वह आदमी बड़ा ही लज्जित हुआ। सोचा, सचमुच ही इससे क्या लाभ है? कहाँ तो रेल हवासे बातें कर रही है और कहाँ ये बातें। उसे पा भी तो नहीं सकता।

फिर तो और लोग भी इन बातोंकी निन्दा करने लगे। रमाने कहा,—ऐसी आदतोंसे प्रत्येक मनुष्यको दूर रहना चाहिये और दूसरोंको भी दूर रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कच्ची जबान भी अपने मुखसे कभी न निकालनी चाहिये।

इस प्रकार देशकी दशाका अनुभव करते हुए शान्तिके भेजे हुए विश्वासी आदमियोंके साथ रमा शान्तिपुर गाँवके क्षत्रिय जमींदारकी स्त्री शान्तिके यहाँ जाकर ठहरी। विधवा शान्ति अपने घरमें अकेली थी और वही मालकिन थी। एकबार रमाकी कथामें वह भी कहींसे आगयी थी, अतः रमापर उसकी बड़ी श्रद्धा होगयी। उस समय अपने यहाँ चलनेके लिए उसने रमासे अनुरोध भी किया था, पर उस समय वह न जा सकी। आज रमाके आनेपर उसने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। रमा भी उत्तमोत्तम कथायें उसे सुनाने लगी। तारीखके दिन कचहरी आते समय उसके साथ पालकीमें बैठकर शान्ति भी आयी। मुकदमा समाप्त होते ही रमा उसी पालकीमें जा बैठी और चली गयी। अतः किसीको इस बातका पता न चला कि वह कहाँ गयी।

उसी दिन शान्तिने अपना एक गाँव रमाको दानपत्र लिखकर रजिस्टरी करा दिया। किन्तु यह भेद रमाको मालूम नहीं

था। एक दिन रमाने शान्तिसे कहा,—मुझे इस प्रकार बैठकर खाना अच्छा नहीं लग रहा है। आप अपने इलाकेमें कहीं सौ-दो-सौ बीघेका पट्टा कर दें, मैं मालगुजारी दिया करूँगी और उसीसे उपार्जन करके निर्बाह करूँगी।

शान्तिने कहा,—मैंने तो आपको एक गाँव ही लिख दिया है। यह कहकर उठी और सन्दूक खोलकर रजिस्टरी किया हुआ कागज़ उठा लायी। रमा उसे पढ़ते ही अवाक् होगयी। बोली,—इसे मैं कभी न लूँगी। मुझे गाँवकी जरूरत नहीं है।

शान्तिने कहा,—लेना ही पड़ेगा। मेरे कौन है, जिसके लिए संच रखूँ?

रमाने कहा,—ऐसा न करो। लोग कहेंगे, इसने फुसलाकर गाँव ले लिया।

शान्ति,—किन्तु सूर्य्यपर धूलि-प्रक्षेप करना बेकार है।

रमा,—सो तो ठीक है, पर यह भी एक बन्धन है। मैं सम्पत्तिके बन्धनमें अपनेको नहीं जकड़ना चाहती।

शान्ति,—इससे आपके काममें बाधा न पहुँचेगी।

रमा बड़े पेचमें पड़ी। किसीकी दमड़ीकी चीज भी योंही लेना उसके स्वभाव-विरुद्ध था। किन्तु संकोचवश वह अपने भावको शान्तिसे कह न सकी। बड़ी देरतके वाद-विवाद होनेके बाद अन्तमें रमाने यह सोचा कि,—न लेनेसे शान्तिको बड़ा दुःख होगा। अब कोई उपाय नहीं है। मैं इस दानको स्वीकार कर लूँ। इसकी सारी आय धर्म-कार्य्यमें व्यय कर

दिया करूँगी । लेनेमें हानि ही क्या है ।

यही सोचकर उसने दानपत्रको स्वीकार कर लिया । उसी गाँवके बाहरी हिस्सेमें एक सुन्दर किन्तु छोटासा मकान अपने रहनेके लिए उसने बनवाया । बेकार पड़ी हुई पर्ती जमीन-में बेर, केला, अमरूद, आम, कटहल आदिके कई वर्गीचे लगवा दिये, जिनसे कुछ ही दिनोंमें बहुत अच्छी आय होने लगी । अपने गाँवको कौन कहे आस-पासके गाँवोंमें उसने अपने रुपयेसे उत्तम शिक्षाका प्रबन्ध कर दिया । दिनभरमें एकबार शान्ति उससे मिलनेके लिए अवश्य आती थी । कभी-कभी रमा भी शान्तिके पास चली जाती थी । गाँवकी विलक्षण उन्नति देखकर शान्ति तो उसे साक्षात् देवी समझने लगी । शान्ति ही क्यों चार-छः कोसके लोगोंका ऐसा ही भाव होगया । लोगोंकी सेवा करनेके लिए रमाने एक चिकित्सालय भी खोल दिया । उसका निरीक्षण स्वयं करती थी ।

कुछ ही दिनोंमें वहाँके लोगोंकी इतनी श्रद्धा बढ़ गयी कि कोई उसका नामतक नहीं लेता था । सबलोग उसकी पूजा करने लगे । कोल-किरात आदि जातियाँ उसके इशारेपर अपना सर्वस्व निछावर करनेके लिए तैयार होगयीं । रमाने विद्यापुर-की भाँति यहाँके प्रत्येक गाँवमें कार्यारम्भ कर दिया। जब सब जगहका काम सुचारु रूपसे चलने लगा, तब वह आगे बढ़ी । जगह-जगह व्याख्यान देकर शिक्षाका प्रचार करने लगी । उसने अपने कामसे देशके बड़े-बड़े नेताओंकी आँखें खोल दीं । नेताओं—

को यह कहकर उसने फटकारना शुरू किया कि,—"यह सभी लोग जानते हैं कि श्रमके पीछे सम्पत्ति है; फिर भी नेतालोग कोई काम करनेसे पहले चन्दा करते हैं। यह बड़े ही दुःखकी बात है। मैं संसारको अपने कामोंसे—कोरे उपदेशोंसे नहीं—यह दिखला देना चाहती हूँ कि श्रमके पीछे सम्पत्ति किस तरह चेरी बनी फिरा करती है।" इस प्रकार वह घूम-घूमकर लोगोंको उपदेश देने लगी। वह जहाँ भी जाती, कोलों और भिल्लोंकी बड़ी सेना उसके साथ हो लेती। धीरे-धीरे भारतके कोने-कोनेमें रमा विख्यात होगयी। बड़ी-बड़ी सार्वजनिक संस्थाओंमें उसकी बुलाहट होने लगी। देशकी विद्वन्मंडली उसे आदरकी दृष्टिसे देखने लगी।

रमाने अपने गाँवको ऐसे ढंगसे सजाया और उसकी इतनी उन्नति की कि यदि उस गाँवकी सीमा चहार दीवारीसे घेर दी जाती तो वह एक बड़ा ही रमणीक उद्यान कहलाता। बस्तीमें यदि सड़कें निकाल दी जातीं और कुछ पक्की इमारतें बन जातीं, तो वह एक नन्हासा नगर हो जाता। आवश्यकीय ऐसी कोई वस्तु ही नहीं रह गयी, जो रमाके सुप्रबन्धसे इस गाँवमें न मिल सके। अब उसका निवास इस गाँवमें बहुत कम होने लगा। पहले तो उसे बालक विनयकी देख-रेख करनी पड़ती थी, किन्तु अब वह शान्तिके साथ इतना हिल-मिल गया कि उसकी वह चिन्ता भी बहुत कुछ दूर होगयी।

——:※:——

सताईसवाँ परिच्छेद

उस दिनके बाद कई दिनोंतक लज्जावश कोई एक दूसरेके सामने न हो सका। यहाँतक कि जब एक दिन राजा साहिबके बुलानेपर पं० ज्ञानदत्तजी गये, भी तो राजो नहीं आयी। इससे उन्हें अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। सोचने लगे, इसके लिए राजोसे क्षमा माँगना आवश्यक है। किन्तु जब एक दिन राजोका सामना हुआ, तब उनके मुखसे शब्द ही न निकला। माना कि वहाँपर राजा साहिब भी उपस्थित थे, अतः ज्ञानदत्तके लिए खुले शब्दोंमें क्षमा-प्रार्थी होना असम्भव था; किन्तु क्या प्रेमी-प्रेमिकाको स्पष्ट शब्दोंमें वार्त्तालाप करनेकी आवश्यकता है? क्या वे मौनाभिनय नहीं करते? यदि हाँ, तो फिर ज्ञानदत्त सहस्त्रों मनुष्योंके बीचमें भी राजोके सामने प्रार्थी बन सकते थे। उनका प्रार्थी न बनना इस बातको प्रमाणित करता है कि वे संकोचवश संज्ञा-हीन होगये।

किन्तु यह बात केवल ज्ञानदत्तके ही लिए नहीं कही जा सकती। राजोकी दशा तो उनसे भी बुरी होगयी थी। उससे तो ज्ञानदत्तके सामने आया ही नहीं जाता था। वह यह भी समझती थी कि न चलनेसे बाबूजी सोचेंगे कि पहले तो इनके आते ही सब काम छोड़कर आ बैठती थी, अब क्या होगया कि नहीं आती। फिर भी वह सामने नहीं हो सकती थी।

उस दिन यदि वह पहलेहीसे पिताके पास बैठी न होती तो सम्भवतः आज भी वह उनके सामने न आती; आज क्या इस जीवनमें वह कभी भी ज्ञानदत्तके सामने न होती;—सम्मिलन-के लिए मन-ही-मन छटपटाती, उनकी मानसिक पूजा करती, पहलेकी भाँति लुक-छिपकर प्रत्यक्ष दर्शन भी करती, किन्तु सामने कदापि न आती।

धीरे-धीरे कुछ ही दिनोंमें दोनोंके हृदयका संकोच फिर दूर होगया। दोनोंका भेद-भाव भी मिट गया। प्रेम उस स्थान-पर पहुँच गया, जहाँके आगे उसकी गति नहीं है। परन्तु अब राजोसे मिलनेके लिए पं० ज्ञानदत्त बहुधा चोर दरवाजेसे आने लगे। यह चोर दरवाजा मकानके पिछवाड़ेकी ओर था और हमेशा बन्द रहा करता था। केवल खास-खास अवसरों-पर ही खोला जाता था।

आज ज्ञानदत्तके आनेकी बात थी। राजो प्रतीक्षामें बैठी थी। करीब दस बजे रातके पं० ज्ञानदत्त अपने मित्र गौरी बाबूकी मोटरसे आकर अपने मकानके फाटकके सामने खड़े हुए। राजोने देख लिया। स्वर-हीन भाषामें बातें हुईं। ड्राइवरके चले जानेपर ज्ञानदत्त राजा साहिबके मकानके पिछवाड़े गये। यद्यपि वह गली दिनमें भी भयावनी प्रतीत होती थी, किन्तु प्रेमके पागल-को तो ऐसे स्थान सदा ही अमरपुरीसे बढ़कर आनन्द-दायक होते हैं। उसके दिलमें तो ऐसे ही स्थानोंकी चाह रहती है। दरवाजा खुला और उनके भीतर जाते ही फिर पूर्ववत् बन्द

होगया। नीचे-ही-नीचे युगल मूर्ति दोनों चौक डाँक आयी। फिर एक आलमारीका दरवाजा खोला गया। यह आलमारी दीवारमें लगी थी। इसीके भीतर एक सीढ़ी थी जो दीवारके बीचमें बनी हुई थी और चोर दरवाजेकी भाँति भीतरसे हमेशा बन्द रहती थी। राजो इसे पहले ही खोलकर बाहर आयी थी। अतः धक्का देते ही खुल गया और भीतरसे बन्द कर लिया गया। अब यहींसे निष्कंटक मार्ग था, इसलिए बिजली-बत्तीके प्रकाशमें राजोके साथ ज्ञानदत्त दीवारके बीचोबीच लगी हुई सीढ़ीसे उतरकर नीचे आये। यहाँ एक बड़ा लम्बा-चौड़ा कमरा था, जो कि जमीनके नीचे गर्मीके दिनोंमें रहनेके लिए बनवाया गया था। यह राजोके अधिकारमें था और उसीके कमरेकी दीवारके बीचसे इस कमरेमें आनेके लिए रास्ता था। यह कमरा भी साधारणतया हरवक्त सजा रहता था; किन्तु इसमें धरी हुई सारी वस्तुएँ निर्धन धनाढ्यकीसी प्रतीत होती थीं। पलँग-पर धूल जमी रहती थी, शीशेदार आलमारियाँ पोंछी न जानेके कारण सदा मलिन रहती थीं। फिर दूसरी सीढ़ीसे ऊपर चढ़ना शुरू किया। चढ़ाई समाप्त होनेपर राजोका राजसी सामानसे सुसज्जित कमरा मिला।

इस कमरेमें पहुँचकर दोनों प्रेममें विभोर होगये। राजोने जरा रूठकर कहा,—इस प्रकार नित्यकी चोरी मुझे अच्छी नहीं लगती।

ज्ञानदत्तने कहा,—तो फिर और उपाय ही क्या है?

राजो—रोज-रोज वही पाठ किया करूँ ?

राजो क बार ज्ञानदत्तसे विवाह करके अपने प्रेम-सम्बन्ध-को प्रकट करनेके लिए अनुरोध कर चुकी थी। किन्तु ज्ञानदत्त-ने कोई उत्तर नहीं दिया था। इसीसे आज उसने कुछ खीझकर ऊपरकी बात कही।

ज्ञानदत्तने उसके कोमल और विकसित कपोलोंपर हाथ फेरते हुए कहा,—तुम्हारा कहना मुझे भी मान्य है; किन्तु देखो राजो, आज मैं तुमसे अपने दिलकी बात कहता हूँ। क्या तुम सुनना चाहती हो ?

राजोका पूर्व भाव दूर होगया। उत्सुकता-पूर्ण कोमल स्वर-में पूछा,—वह कौनसी बात है ? जरूर सुनूँगी।

ज्ञानदत्तने कहा,—बात यह है कि ऐसा करनेमें मैं हित नहीं देखता। क्योंकि मैं एक साधारण स्थितिका मनुष्य हूँ। जितना तुम महीनेभरमें व्यर्थ खर्च कर डालती हो, उतनी मेरी महीनेभरकी बीन-बटोरकर कुल आय नहीं है। ऐसी स्थितिमें तुम्हें आर्थिक कष्ट होगा, जोकि मेरे लिए असह्य हो जायगा। मैं तुम्हें कभी भी कष्टमें नहीं देखना चाहता। यदि मेरे संगतिसे तुम्हारा किसी प्रकारका अहित होगा तो मुझे पाप लगेगा। मैं···

ओफ ! नारी-हृदय कितना महान है ! उसकी विशालताका पारावार नहीं। पुरुष तो अपने ज्ञान-बलसे भी काम लेना चाहता है, अतः कुछ अन्तर अवश्य रही जाता है; पर स्त्री तो जिस वस्तुको चाहती है, उसको या तो वह अपनेमें मिला लेना

चाहती है और या स्वयं उसमें मिलकर अपने अस्तित्वको मिटा देती है। किन्तु पुरुषमें यह बात कहाँ? यदि होती तो क्या ज्ञानदत्त अपनी प्रणयिनीकी बातको विचारकी कसौटीपर कसते? नारी जिस वस्तुमें लग जाती है, उसमें अपनेको विलीन कर देती है—फिर वह इधर-उधर कहीं नहीं देखती। यह है नारी-हृदयकी अपूर्व निष्ठा! जिसको उसने पकड़ लिया, उसीमें लीन होगयी।

राजोने बात काटकर कहा,—दुःख है कि आप इतने बड़े विद्वान् होकर ऐसी बातें कर रहे हैं। प्रेम रुपये-पैसे, धन-दौलत या मान मर्यादाका भूखा नहीं। प्रेम, सम्पत्तिसे नहीं खरीदा जा सकता। प्रेमको संसारमें किसी भी वस्तुकी चाह नहीं, वह केवल अपनेको चाहता है। प्रेमका सम्बन्ध केवल हृदयसे है, नकि रुपये-पैसेसे। प्रेम-लोक-निवासीके हृदयमें अभाव क्या है, इसकी भावना ही कभी उत्पन्न नहीं होती मेरे प्यारे! प्रेम-को सुख और दुःख पहुँचानेवाला केवल प्रेम है। वह प्रेम, प्रेम ही नहीं, जो अपने प्रेमीके साथ भूखों रहकर दर-दरकी ठोकरें खाकर भी स्वर्ग-सुखको तुच्छ न समझे। प्रेम, नेत्रहीन है। उसे संसारकी अलभ्यसे भी अलभ्य वस्तु अपनी ओर आक-र्षित नहीं कर सकती। रही मेरे अहितकी बात, सो आप ही सोचें कि मेरा अहित किसमें है? क्या समाजकी आँखोंमें धूल झोंककर इस प्रकार गुप्त सम्बन्ध रखना उचित है? और फिर यह बात क्या सब दिन छिपी रहेगी?

ज्ञानदत्त थोड़ी देरके लिए निरुत्तर होगये। उन्होंने पहले भी इस बातपर विचार किया था; किन्तु गम्भीरता-पूर्वक नहीं। आज राजोकी बात सुनकर उन्होंने बहुतसी बातोंका विचार किया। सोचते-सोचते एक बातपर आकर अटक गये। कहा,—देखो राजो, समझदार मनुष्यका यह कर्त्तव्य है कि वह कोई काम करनेके पहले भलीभाँति आगा-पीछा सोच ले। मेरा अनुभव है कि हमारे-तुम्हारे ब्याहको राजा साहिब स्वीकार न करेंगे। ऐसी दशामें हम-दोनोंको यहाँसे निकल जाना पड़ेगा। फिर समाज हमलोगोंको हेय-दृष्टिसे देखने लगेगा। यह तुम जानती ही हो कि संसारमें जातीय अपमान सबसे अधिक कष्ट-दायक होता है।

राजोने घबड़ाहटके साथ कहा,—तो क्या तुम मुझे इसी चिन्तामें रखना पसन्द करते हो और मेरे संकटके समय अलग हो जाना चाहते हो? मुझे किसी ओरकी न रहने दोगे?

इतना कहते ही राजो रो पड़ी। उसका हृदय ग्लानिसे भर गया। आगे वह एक शब्द भी न बोल सकी।

उसकी यह दशा देखकर ज्ञानदत्त भी व्याकुल हो उठे। उसको हृदयसे लगाते हुए सान्त्वना-पूर्ण शब्दोंमें कहा,—यह तुम क्या कह रही हो राजो? क्या तुम्हें विश्वास है कि मैं तुम्हें संकटमें छोड़कर—किसी ओरकी न रखकर—चेष्टा करके भी पृथक् हो सकता हूँ?—प्यारी राजो, तुम्हारा यह समझना मेरे लिए डूब मरनेकी बात है। हमारा-तुम्हारा असली विवाह

तो उसी दिन हो चुका, जिस दिन हम-दोनोंने एक दूसरेको अपनाया।

इतना कहते ही ज्ञानदत्तका गला भर आया। उन्होंने दुःख-पूर्ण एक लम्बी साँस ली। राजोके हृदयपर गहरी चोट लगी। ज्ञानदत्तका दुःख उसे असह्य होगया। तुरन्त ही करुणा-पूर्ण हृदयसे बोली,—मैंने यों ही पूछा है। भला ऐसा कभी मुझे विश्वास हो सकता है? क्या यह मैं नहीं जानती कि मेरा विवाह तो हो चुका?

ज्ञानदत्तको शान्ति मिली। बोले,—तुम किसी तरहकी चिन्ता न करो। मैं तुम्हारे भविष्यको कभी भी अन्धकारमय न होने दूँगा। समय आनेपर मैं सब कुछ करूँगा; किन्तु अभी कोई काम करना ठीक नहीं है।

राजोने कहा,—लेकिन बदनामी हो जानेके बाद समाजमें प्रतिष्ठा स्थापित करना बड़ा ही दुरूह काम है। यद्यपि हम-लोगोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका पाप नहीं है, क्योंकि वैवाहिक सम्बन्ध तो प्रेम-सूत्रद्वारा ही सम्बद्ध होना चाहिये,—तथापि यदि कोई बात खुल जायगी तो निष्कलंक होते हुए भी हमलोगोंको चोर बनना पड़ेगा। इसीलिए मैं इतना कह रही हूँ और कोई बात नहीं है। जहाँतक मेरा अनुमान है, बाबूजी इसे कभी अस्वीकार न करेंगे और उन्हें इसमें कोई बात अनुचित भी न जँचेगी।

ज्ञानदत्त—किन्तु सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनसे

कहना क्या चाहिये। यहींपर मेरी बुद्धि अटक जाती है।

राजो—बड़े-बड़े गम्भीर विषयोंका तत्त्वानुसन्धान करनेवाले व्यक्तिके लिए यह बतलानेका कोई प्रयोजन नहीं है और न तो उसके लिए यह कोई असम्भव ही है।

राजोकी वाक्-चातुरीसे पं० ज्ञानदत्तको हँसी आ गयी। बोले,—अच्छी बात है, अब मैं कोई यत्न सोचूँगा।

इस प्रकार बातोंका सिलसिला जारी हो था कि, बाहरसे किसीने दरवाजा खटखटाया। दोनोंका हृदय सन्न होगया। ज्ञानदत्तके शरीरमें तो मानों प्राण ही नहीं रह गया। राजो झट उठी और दीवारके भीतरकी सीढ़ीका दरवाजा खोलकर ज्ञानदत्तको नीचे भेज दिया। पश्चात् उस दरवाजेमें ताला बन्द करके कमरेका दरवाजा खोलने गयी। उस समय उसका कलेजा धकधका रहा था। दरवाजा खोलते ही आवाज आयी,—इतना दिन चढ़ आया, अभीतक सोयी थी बेटी? तेरी तबीयत तो अच्छी है न?

यह बात सुनकर राजोके हृदयकी धड़कन कुछ कम होगयी। दयामयी माँका दर्शन हुआ। बोली,—तबीयत तो ठीक है माँ। कमरेके सब दरवाजे बन्द थे, इसलिए भीतर मैं बत्तीके प्रकाशमें पुस्तक पढ़ रही थी, दिन चढ़ आनेका पता ही न चला। जान पड़ता है, घंटेसे ऊपर दिन चढ़ आया है। क्यों माँ ठीक है न?

बातचीत करते हुए माँ-बेटी दोनों कमरेमें आकर बैठ

गयीं। माँने कहा,—अभी घंटेसे अधिक दिन नहीं चढ़ा है। तूने घड़ीकी आवाजपर भी ध्यान नहीं दिया ?

राजो—घड़ी तो मरम्मतके लिए गयी है न ? रिस्टवाच तो थी, किन्तु आलस्यवश मैंने उसे नहीं देखा।

माँ—खैर कोई हर्ज नहीं। क्योंरी राजो, तू तो कहती है कि तबीयत ठीक है, फिर तेरा चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों देख रही हूँ—यह कहकर माँने राजोके माथेपर हाथ रक्खा।

रति-मर्दिता राजोने कहा,—नहीं तो। तू तो हमेशा इसी तरह कहा करती है।

माँ—माथा भी तो गर्म है। जान पड़ता है, आज तू अधिक राततक पढ़ती रही है, तुझे मैं कितना समझाऊँ ? मैं तो हार गयी। तेरा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, क्योंकि तू तो चारपाई पकड़ेगी, और मरना होगा मुझे। दवा दो, डाक्टर बुलाओ, यह करो, वह करो, नाकमें दम हो जायगा। समझाती हूँ, मानती नहीं। हैरान होगयी भगवान् !

राजो नीचा सिर किये मातृ-स्नेहका आनन्द लेती रही। इतनेमें टेबुलपर उसकी दृष्टि गयी। जी झन्नसे होगया। दरवाजेके पास पायन्दाजपर नजर पड़ी, प्राण सूख गये। कुछ सोचने लगी। तबतक माँने ध्यान भंग कर दिया। वह जो कुछ सोच रही थी, वही हुआ। माँने दरवाजेकी ओर ताककर पूछा,—यह जूता किसका है री बेटी ! कल तो पंडितजी नहीं आये थे न ?

राजोने झट गढ़कर उत्तर दिया,—पंडितजीका ही जूता है। यह परसोंका ही पड़ा हुआ है। अँगूठेमें कुछ दर्द था, इस लिए बाबूजीकी स्लीपर पहनकर इसे यहीं छोड़ते गये। जल्दी-में टोपी भी भूल गये। वह टेबुलपर पड़ी है।

माँ—हैं बड़े भोले आदमी। तूने भेजवा क्यों नहीं दिया? बेचारेोंका हर्ज हुआ होगा न?

इस बातसे राजोके मानसने एक साधारण वेदनाका अनुभव किया। सोचा, माँ समझती है कि उनके पास एक ही टोपी है। माँकी दृष्टिमें वह गरीब हैं। कल उनके लिए चार-पाँच टोपियाँ, चार-छः जोड़े जूते, दस-पाँच सूट अच्छे कपड़े मँगवाकर तब छोड़ूँगी। किन्तु ऊपरसे उसने यही कहा,—हर्ज समझते तब तो मँगवा ही लेते। देखती नहीं, भिन्न-भिन्न तरहकी टोपियाँ लगाकर आया करते हैं?

माँने कहा,—अच्छा जाकर मुँह-हाथ धो, देर हो रही है।

राजो चली तो गयी, किन्तु उसका जी ज्ञानदत्तके ऊपर लगा था। यद्यपि उन्हें वह सुरक्षित स्थानमें छोड़ आयी है, तथापि मानव-स्वभावानुसार उसे सन्तोष नहीं। कहीं ऐसा न हो कि कोई उन्हें देख ले। माँ अभीतक वहीं बैठी है। झटपट स्नानादिसे निवृत्त होकर फिर वह ऊपर आ गयी। देखा, उसकी माँ दो-तीन स्त्रियोंके साथ बैठी बातें कर रही है। बड़े फेरमें पड़ी। अभीतक वह शौच भी नहीं हुए। थोड़ी ही देरमें आफिस जानेका समय हो जायगा। हे परमात्मा! इस संकट-

से मुक्त करो। अब ऐसी भूल कभी न हो पावेगी।

नौ बज गये, रानी साहिबा नहीं हटीं। अब राजो व्याकुल होगयी। कहा,—माँ, जरा कमरा धुलवानेका विचार है। बड़ा गन्दा होगया है। कहो तो पानी मँगाऊँ।

लड़कीकी बात सुनते ही रानी साहिबा उठकर खड़ी होगयीं। बोलीं,—सर्दीका दिन है, धुलवानेकी जरूरत नहीं है बेटी, सिर्फ गीले कपड़ेसे पोंछवा डाल। लेकिन तूने कुछ जलपान किया या नहीं? मैं तो बातोंमें फँसी रह गयी।

राजोने कहा,—दाईसे कह आयी हूँ, लाती होगी।

एक स्त्रीने कहा,—कुँवरिको पूछनेकी क्या जरूरत? यह तो उनका घर है।

रानी—नहीं जी, यह ऐसी भोली और पगली लड़की है कि अपने खाने-पीनेकी कुछ भी सुध नहीं रखती। अच्छा चलो उस कमरेमें बैठें।

इसके बाद सब स्त्रियोंको साथ लेकर वह अपने कमरेमें चली गयीं। राजोके सिरसे बला टली। अब अवकाश मिला। पानी लेकर नीचे गयी। चिन्तित ज्ञानदत्त धूलि-धूसरित पलँगपर पड़े राजोकी बातोंपर विचार कर रहे थे। सचमुच ही यह निन्द्य बात है। इस प्रकारकी चोरीसे आत्मा पतित हो जायगी।

राजोको यह सुनकर सन्तोष हुआ कि आज समाचारपत्रकी आफिस बन्द रहेगी। इसलिए नीचे शौचादिका प्रबन्ध करके वह फिर ऊपर चली आयी। राजा साहिबका मकान

इतना प्रकांड था कि ज्ञानदत्तको किसी चीजमें अड़चन नहीं पड़ी। राजो उनको शौच-स्नानादिके लिए एक ऐसे सुरक्षित और एकान्त स्थानमें पहुँचा आयी थी, जहाँ स्वप्नमें भी किसी-के जाने या देखनेकी सम्भावना न थी। वह ज्यों ही सब कामों-से निवृत्त होकर बैठे, त्यों ही राजो हलवा, दूध तथा कुछ नम-कीन चीजें लेकर पहुँच गयी। इस प्रकार पालतू जानवरकी भाँति चारा-पानी चुँगकर ज्ञानदत्त कठघरेमें पड़े पुस्तका-वलोकन करते रहे। आज उन्हें विश्वास होगया कि राजो अपनी प्रवीणतासे हर समय मेरी रक्षा कर सकती है।

अवसर पाकर लगभग दो बजे ज्ञानदत्त बाहर निकले। फिर सदर फाटकसे होकर अपने कमरेमें आये। कमरेके दर-वाजेपर ही गौरी बाबू खड़े थे। इन्हें देखते ही बोले,—छुट्टी के दिन भी पता नहीं लगता।

ज्ञानदत्तने कहा—इम्पीरियल लाइब्रेरीमें कुछ काम था।

गौरी—वहाँ आज क्या काम था?

ज्ञानदत्त—दो-तीन पुस्तकें देखनी थीं। हाँ गौरी बाबू, कल उस पुस्तकके सम्बन्धमें मैंने अमेरिकावालेको पत्र भेजा है।

गौरी—किस पुस्तकके सम्बन्धमें?—अच्छा हाँ, ठीक है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि सवा लाखका नोबेलप्राइज तुम्हें अवश्य मिलेगा।

ज्ञान—जो कुछ होगा, देखा जायगा, अभीतक तो कुछ समाचार नहीं मिला।

गौरी—अच्छा सुनो, जिस कामके लिए मैं आया हूँ।

ज्ञान—कहो।

गौरी—आसाममें एक विराट् सभा होनेका आयोजन हो रहा है। क्या तुम्हारा भी चलनेका विचार है?

ज्ञान—अरे हाँ भाई, यह तो मैं तुमसे पूछनेहीवाला था। यह देवीजी कौन हैं? सुनते हैं, बड़ी साध्वी और प्रतिभा-शालिनी हैं।

गौरी—सो तो मैं भी नहीं जानता कि वह कौन हैं। पर इतना मैंने भी सुना है कि वह बड़ी अपूर्व पंडिता हैं, उनके व्याख्यान बड़े ही ओजस्वी होते हैं। इस समय भारतके करोड़ों आदमी उनके झंडेके नीचे हैं। एक स्त्रीका इतना नाम पैदा कर लेना यार वास्तवमें आश्चर्य्यकी बात है।

ज्ञान—तभी तो आसाम-निवासी इतने समारोहके साथ उन्हें बुला रहे हैं। किन्तु इसमें आश्चर्य्यकी कौनसी बात है। भाई देखो, मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि किसी कामको जितनी तत्परताके साथ स्त्रियाँ कर सकती हैं, उतनी लगन-के साथ पुरुषोंका किया नहीं हो सकता।

गौरी बाबूने चकित होकर पूछा,—अच्छा क्या आसामकी सभामें देवीजी भी आवेंगी? यह मुझे नहीं मालूम था। तब तो भाई, जरूर चलना चाहिए। क्यों, चलोगे न?

ज्ञान—जब तुम जा ही रहे हो तो मुझे ले चलकर क्या करोगे? व्यर्थ ही कामका हर्ज होगा।

गौरी—तुम चलते तो और भी आनन्द आता। लेकिन इस समय तुम्हें फुरसत मिलना ही कठिन है। खैर, कोई हर्ज नहीं। मैं रिपोर्ट भेज दूँगा।

ज्ञान—अच्छा एक काम और करना। उनसे एकान्तमें मिलकर भी बातें करना।

गौरी—अच्छी बात है।

ज्ञान—बड़े हर्षकी बात है कि हमारे देशमें ऐसी देवीका पदार्पण हुआ। उनके विलक्षण कार्यों को सुनकर आश्चर्य्यमें पड़ जाना पड़ता है। सचमुचमें ऐसी ही देवियोंसे देशका उद्धार होगा।

गौरी—इसमें क्या सन्देह। स्त्री-समाजके आगे बढ़े बिना देश और जातिकी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। मेरा विश्वास है कि कुछ ही दिनोंमें ऐसी असंख्य देवियाँ हो जायँगी और तभी देशका कल्याण होगा।

ज्ञान—जरा उनके आन्तरिक जीवनकी बातें जाननेके लिए भी प्रयत्न करना गौरी बाबू। क्योंकि अभीतक उनके सम्बन्धकी कोई भी बात किसी समाचार-पत्रमें नहीं निकली है।

गौरी बाबूने कहा,—चेष्टा करूँगा। मुश्किल यह है कि ऐसे लोगोंसे बातें करनेके लिए समय बहुत कम मिलता है। फिर भी मैं किसी-न-किसी तरह उनसे मिलूँगा अवश्य।

इसके बाद कुछ इधर-उधरकी बातें करके गौरी बाबू चले गये! ज्ञानदत्त अपने स्थानपर ही रह गये, क्योंकि उन्हें कुछ आवश्यक काम करना था।

अठाईसवाँ परिच्छेद
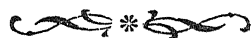
गौरी बाबू निश्चित समयपर आसाम पहुँच गये। सड़कें बन्दनवार और ध्वजा-पताकाओंसे सुसज्जित थीं। चारों ओर अपूर्व समारोह दिखायी पड़ रहा था। छोटे छोटे बालकोंका उत्साह रोके नहीं रुकता था, मानो वह दल शासकोंको इस बातकी सूचना दे रहा था कि अब देशकी जागृति रोकी नहीं जा सकती। देवीजी जिस मकानमें ठहरेंगी, वह पुष्प-मालाओं-से गुँथा हुआ था। फाटकपर स्वयंसेवकोंके पहरेका खासा प्रबन्ध था। वहाँ पूछनेपर मालूम हुआ कि देवीजीके आनेमें अब केवल दो घंटेकी देर है।

यह सुनकर गौरी बाबू भी स्टेशन पहुँचे। प्लेटफार्म आद-मियोंसे ठसाठस भरा था। कहीं तिल रखनेकी भी जगह नहीं थी। फिर भी दर्शकोंका आना बन्द नहीं। समयपर गाड़ी आ गयी। 'वन्दे मातरम्' की ध्वनिसे आकाश गूँज उठा। चारों ओरसे पुष्प-वृष्टि होने लगी। देवीजीके गाड़ीसे उतरते ही देवी-जीकी जय-ध्वनि शुरू होगयी। उसी ध्वनिको साथ लिए हुए देवीजी स्टेशनके बाहर आयीं। वहाँ एक सुन्दर सजी हुई मोटर खड़ी थी। उसीपर वह जा बैठीं। उनके गौर वर्ण, सुन्दर दिव्य रूप अपूर्व तेजमान चेहरा, सादी और शुद्ध खादीकी पोशाक, गलेमें फूलोंकी मालाओं, और विलक्षण गाम्भीर्य्यको

देखकर बरबस दर्शकोंके मनमें श्रद्धा उत्पन्न होती थी। भजन-मंडलीके साथ उनका जुलूस नगरकी खास-खास सड़कोंसे होता हुआ निश्चित स्थानपर पहुँचा।

अवसर पाकर गौरी बाबू मिलनेकी अनुमति लेकर भीतर गये। भीड़ बहुत थी, इसलिए इस समय कोई विशेष बातें न हुईं। देवीजीने संध्याके समय मिलनेके लिए कहा। गौरी बाबू अपने स्थानपर चले आये। भोजनादिसे निवृत्त होकर सभा-भवनमें गये। अन्यान्य वक्ताओंके बाद तालियोंकी कड़कड़ाहट और 'वन्दे मातरम्' तथा जय-घोषके साथ देवीजी मंचपर खड़ी हुईं। 'अंग्रेजीमें' 'बँगलामें' आदि आवाजें होने लगीं। देवीजीने अत्यन्त नम्र शब्दोंमें कहा,—दुःख है कि मैं अंग्रेजी और बँगला दोमेंसे एक भी भाषाकी ऐसी जानकारी नहीं रखती कि उसमें व्याख्यान दे सकूँ। आशा करती हूँ कि दर्शक-बन्धु मुझे संस्कृत अथवा हिन्दीमें बोलनेकी आज्ञा देंगे।

इसके बाद जनताकी रुचिसे संस्कृतमें उनका व्याख्यान हुआ। अंग्रेजी और बँगलामें भी अनुवाद करके सुनाया गया। देवीजीने ग्रामीण उन्नति और स्त्री-जाति-सुधारकी आवश्यकता बतलायी। भाषण ऐसा पाण्डित्य-पूर्ण हुआ कि बड़े-बड़े विद्वानोंको हक्का-बक्का सा रह जाना पड़ा। सब लोगोंने एक स्वरसे देवीजीकी बातें स्वीकार कीं। कुछ आदमियोंकी एक नगर-कमेटी बनायी गयी और उसके जिम्मे देहातोंमें प्रचार करनेका भार सौंपा गया। यह निश्चय हुआ कि प्रत्येक गाँवके

लोग अपनी आवश्यकताके अनुसार सारी चीजें तैयार करें। जो वस्तु वे तैयार करेंगे, वही काममें ला सकेंगे,—बाहरकी बनी हुई चीजको काममें लानेका अधिकार किसीको नहीं होगा। प्रत्येक बच्चेको स्वावलम्बनकी शिक्षा देना इस सभाका मुख्य काम होगा। इस कामके लिए सभामें ही एक लाखसे अधिक रुपया देनेके लिए बहुतसे लोग वचन-बद्ध हुए। गौरी बाबूने दस हजार रुपयेका वचन दिया। देवीजीने अपने मुखसे गौरी बाबूको बधाई दी और कहा कि यद्यपि मेरी बतलायी हुई कार्य-प्रणालीमें रुपयेकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि दाताओंके द्रव्यसे उस कार्यकी अधिकाधिक उन्नति नहीं होगी,—यह बात नहीं कही जा सकती।

तदुपरान्त सभाके कार्योंसे छुट्टी पाकर वह अपने स्थानपर आयीं। प्रतिदिनकी भाँति आज भी वह पूजनपर बैठ ही रही थीं कि गौरी बाबू आ गये। देवीजी बिना कुछ बोले दत्तचित्तता-से अपने काममें प्रवृत्त होगयीं। गौरी बाबू बैठकर देखने लगे। ऐसा भक्ति-पूर्ण और अद्भुत निष्ठा-युक्त दृश्य देखकर गौरी बाबूको बड़ा ही आह्लाद हुआ। देवीने यौगिक प्राणायाम किया, केबिनेट साइजके एक चित्रका धूप-दीप-नैवेद्यादिसे विधि-पूर्वक पूजन करके ध्यान किया। दो घंटेके बाद निश्चिन्त हुईं। गौरी बाबू कुछ दूर रहनेके कारण यह नहीं जान सके कि चित्र किसका है। उन्हें इतनी बात मालूम होगयी कि यह सधवा हैं। इसीसे हाथमें सुहाग-सूचक चूड़ियाँ हैं और माथेमें

सिन्दूर-विन्दु। देवीने कहा,—आपको बड़ा कष्ट हुआ।

गौरी बाबूने श्रद्धा-पूर्वक कहा,—जी नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। हाँ, यदि मेरे आनेसे आपके कार्यमें कोई विघ्न पड़ा हो तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

देवी—मेरे कार्य्यमें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित होता ही नहीं। कारण यह कि मैं अपना कार्य्य समाप्त किये बिना छोड़ती ही नहीं।

गौरी—क्या आप यह बतलानेकी कृपा करेंगी कि उपासनासे क्या लाभ होता है?

देवीने गम्भीर मुद्रा धारण करके कहा,—हृदयको शान्ति मिलती है, आत्मिक शक्ति बढ़ती है।

गौरी—पर मुझे ऐसा नहीं हुआ। इसीसे मैंने अपने आराध्य देवताकी उपासना करनी छोड़ दी।

देवी—आपने भूल की। सफलता प्राप्त करना, अपनी दृढ़ता-पर निर्भर है। मनोभिलाषा पूर्ण न होनेके कारण अपने उपास्य देवको छोड़ देना, कमजोर विचारवालेका काम है। सच्चे उपासकका धर्म यह है कि वह बारम्बार असफल होनेपर भी अपनी यह धारणा रक्खे कि किसी-न-किसी दिन सफलता अवश्य प्राप्त होगी। देखिये, मेरे उपास्य देव मुझसे रूठे हुए हैं। फिर भी मुझे आशा है कि वह किसी दिन अवश्य प्रसन्न होंगे। और फिर यदि वह न प्रसन्न हों तो इससे मेरा क्या? मैं अपना कर्त्तव्य-पालन तो करूँगी ही। यदि उपास्य देव प्रसन्न

लोग अपनी आवश्यकताके अनुसार सारी चीजें तैयार करें। जो वस्तु वे तैयार करेंगे, वही काममें ला सकेंगे,—बाहरकी बनी हुई चीजको काममें लानेका अधिकार किसीको नहीं होगा। प्रत्येक बच्चेको स्वावलम्बनकी शिक्षा देना इस समाजका मुख्य काम होगा। इस कामके लिए सभामें ही एक लाखसे अधिक रुपया देनेके लिए बहुतसे लोग वचन-बद्ध हुए। गौरी बाबूने दस हजार रुपयेका वचन दिया। देवीजीने अपने मुखसे गौरी बाबूको बधाई दी और कहा कि यद्यपि मेरी बतलायी हुई कार्य-प्रणालीमें रुपयेकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि दाताओंके द्रव्यसे उस कार्यकी अधिकाधिक उन्नति नहीं होगी,—यह बात नहीं कही जा सकती।

तदुपरान्त सभाके कार्योंसे छुट्टी पाकर वह अपने स्थानपर आयीं। प्रतिदिनकी भाँति आज भी वह पूजनपर बैठ ही रही थीं कि गौरी बाबू आ गये। देवीजी बिना कुछ बोले दत्तचित्तता-से अपने काममें प्रवृत्त होगयीं। गौरी बाबू बैठकर देखने लगे। ऐसा भक्ति-पूर्ण और अद्भुत निष्ठा-युक्त हृदय देखकर गौरी बाबूको बड़ा ही आह्लाद हुआ। देवीने यौगिक प्राणायाम किया, केबिनेट साइजके एक चित्रका धूप-दीप-नैवेद्यादिसे विधि-पूर्वक पूजन करके ध्यान किया। दो घंटेके बाद निश्चिन्त हुईं। गौरी बाबू कुछ दूर रहनेके कारण यह नहीं जान सके कि चित्र किसका है। उन्हें इतनी बात मालूम होगयी कि यह सधवा हैं। इसीसे हाथमें सुहाग-सूचक चूड़ियाँ हैं और माथेमें

सिन्दूर-बिन्दु। देवीने कहा,—आपको बड़ा कष्ट हुआ।

गौरी बाबूने श्रद्धा-पूर्वक कहा,—जी नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। हाँ, यदि मेरे आनेसे आपके कार्यमें कोई विघ्न पड़ा हो तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

देवी—मेरे कार्य्यमें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित होता ही नहीं। कारण यह कि मैं अपना कार्य्य समाप्त किये बिना छोड़ती ही नहीं।

गौरी—क्या आप यह बतलानेकी कृपा करेंगी कि उपासनासे क्या लाभ होता है?

देवीने गम्भीर मुद्रा धारण करके कहा,—हृदयको शान्ति मिलती है, आत्मिक शक्ति बढ़ती है।

गौरी—पर मुझे ऐसा नहीं हुआ। इसीसे मैंने अपने आराध्य देवताकी उपासना करनी छोड़ दी।

देवी—आपने भूल की। सफलता प्राप्त करना, अपनी दृढ़तापर निर्भर है। मनोभिलाषा पूर्ण न होनेके कारण अपने उपास्य देवको छोड़ देना, कमजोर विचारवालेका काम है। सच्चे उपासकका धर्म यह है कि वह बारम्बार असफल होनेपर भी अपनी यह धारणा रक्खे कि किसी-न-किसी दिन सफलता अवश्य प्राप्त होगी। देखिये, मेरे उपास्य देव मुझसे रूठे हुए हैं। फिर भी मुझे आशा है कि वह किसी दिन अवश्य प्रसन्न होंगे। और फिर यदि वह न प्रसन्न हों तो इससे मेरा क्या? मैं अपना कर्त्तव्य-पालन तो करूँगी ही। यदि उपास्य देव प्रसन्न

न हों तो समझना चाहिए कि उपासनामें कुछ-न-कुछ त्रुटि है।

गौरी—क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आप किसकी उपासना करती हैं ?

देवी—यद्यपि अपने उपास्य देवको गुप्त रखना चाहिए तथापि मैं आपसे बतलाये देती हूँ कि मैं उसीकी उपासना करती हूँ जिसकी उपासना स्त्री-जातिको करनी चाहिए।

गौरी—किन्तु ऐसा हृदय सबका नहीं हो सकता। असफल होनेपर मैं तो झुँझला पड़ा था।

देवी—ऐसा करना ठीक नहीं। किसी कार्यमें असफल होना अपने ही कार्यकी त्रुटिका फल है। अकृत-कार्य होनेपर मनुष्यको और भी अधिक दृढ़तासे उस काममें तत्पर होना चाहिए। उससे विमुख होना, कायरता और भीरुता है। 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः'—जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह उसी रूपका हो जाता है। इसलिए अपनी श्रद्धा बढ़ानी चाहिए। जैसा कि आपने अपने बारेमें अभी कहा है, कितने ही लोग मनोकामनाके पूर्ण न होनेपर ईश्वरके ऊपर रूठ जाते हैं, तथा उनको निष्ठुर प्रवंचक आदि अपशब्दोंसे विभूषित करने लगते हैं; कहते हैं कि अब ईश्वराराधन कभी न करूँगा, उनका मुख न देखूँगा, उन्हें मानूँगा भी नहीं। बहुतसे लोग हताश होकर नास्तिक हो जाते हैं और यह निश्चय कर लेते हैं कि यह संसार दुःख, अन्याय और अत्याचारका राज्य है, ईश्वर कुछ नहीं है, उसे मानना व्यर्थ है। किन्तु मैं कहती हूँ कि इस

प्रकारकी भक्ति अज्ञ भक्ति है। ईश्वर-भक्ति उपेक्षणीय नहीं। यह निश्चय है कि क्षुद्र ही महान होता है। ईश्वरके अकृपा-पात्र उपासक ही किसी दिन उनके कृपा-भाजन बनते हैं। अविद्या-साधन विद्याकी प्रथम सीढ़ी है। देखिये, बालक भी अज्ञ है, पर उसकी अज्ञतामें एक प्रकारका विचित्र माधुर्य है। माताके समीप बालक रोता, दुःखका प्रतिकार चाहता, और दौरात्म्य करता है, पर माँ उसे फुसलाती ही रहती है।

गौरी—यह युग ऐसा है कि स्त्री-पुरुषमें ही विरोध पैदा हो जाता है। जरा......

देवी—किन्तु यह दोष युगका नहीं है। साधारण जीवनमें स्त्री-पुरुषके बीच जिस आनन्दका अभिनय तुम देख रहे हो, वह भीतरके पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे जो आनन्द होता है, उसीका अन्धा अनुकरण मात्र है। स्वामी और स्त्रीका जो सम्बन्ध है, वह बड़ा ही पवित्र और आनन्ददायक है। शरीर-का शरीरके साथ भोग करना ही भोग नहीं है। भोगके अर्थमें दैहिक भोग है ही नहीं। स्वामी अपनी स्त्रीमें ही संसारका दृश्य देखना चाहता है और स्त्री संसारके आनन्दको अपने स्वामीसे ही पाना चाहती है। प्राणके साथ प्राणका, मनके साथ मनका, बुद्धिके साथ बुद्धिका, ज्ञानके साथ ज्ञानका और देहके साथ देहका भोग होता है, बस यही सच्चा मिलन है और इसीका नाम दाम्पत्य-जीवन है। आजकल लोग दाम्पत्य-जीवनकी परिभाषा ही नहीं जानते। इसीसे ऐसी दशा हो रही

है। हृदयकी विशालतासे सब बातोंके असली अर्थका स्पष्टीकरण होता है। आजकल तो लोग स्त्री-जातिको पुरुषोंसे सर्वथा भिन्न समझते हैं। इसीसे स्त्रियोंके अधिकारपर इतने ग्रह मँडरा रहे हैं। लोगोंको यह मालूम ही नहीं है कि वास्तवमें स्त्री है क्या वस्तु। स्त्री-पुरुष दोनों ही एक सत्तासे उत्पन्न हुए हैं और दोनों उसीके प्रतिरूप हैं। यद्यपि स्त्री और पुरुषकी शिक्षा और साधनाका एक ही उद्देश्य है, और वह है मनुष्यत्वका उद्बोधन तथा उसकी सार्थकता; पर एक ही उद्देश्य होते हुए भी दोनोंका गन्तव्य मार्ग एक नहीं है। संसारकी एकता जिस तरह सत्य है, उसकी विचित्रता या अनेकता भी उसी तरह सत्य है बल्कि यों कहिये कि इस संसारकी विचित्रताने ही संसारको संसार कहलानेके योग्य बनाया है। पार्थक्य और विशेषतामें ही विश्वका रहस्य है और इसीमें उसकी सार्थकता भी है। मैं बहुत ही गम्भीर बात कह रही हूँ, आप जरा ध्यानसे सुनियेगा।

गौरी बाबू खिसककर देवीजीके अत्यन्त निकट जा बैठे और बोले,—जी हाँ, आप कहिये, मेरा ध्यान आपके शब्दोंके लक्ष्यकी ओर ही है।

देवीने कहा,—पुरुष और स्त्रीकी विशेषता कहाँ है, इसे समझनेकी चेष्टा करनी चाहिए। मनुष्यकी सत्ताका कौन भाव और कौन अंग पुरुष है तथा कौन भाव और कौन अङ्ग स्त्री? वास्तवमें मनुष्य सत्ताके दो भाग हैं,—ज्ञान और शक्ति। मनुष्य

पहले तो जाननेकी चेष्टा करता है, फिर कहनेकी। जाननेकी चेष्टा ज्ञान है और कहना शक्ति है। एक रास्ता और भी है जिसे प्रेम कहा जाता है। यही प्रेम दोनोंका आश्रय-स्थान है। दोनों इसी प्रेमके सहारे चलते हैं। ज्ञानका प्रकाश मन या बुद्धिद्वारा होता है और इसका केन्द्र मस्तिष्क है तथा शक्तिका प्रकाश प्राणोंमें होता है। इससे सिद्ध होता है कि पुरुष ज्ञान है और स्त्री शक्ति। किसी कामका संचालन पुरुष अपने बलद्वारा करता है, किन्तु स्त्री अपनी स्वाभाविक चातुरीद्वारा। देखिये न; इस स्थूल संसारसे संग्राम करनेके लिए नैपोलियनको स्कूलमें व्यायाम आदिद्वारा अपनी ताकत बढ़ानी पड़ी थी, पर आर्ककी देवी जोनको इस तरहकी कोई भी बात करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। जो लोग इस निगूढ़ रहस्यको नहीं जानते, वे ही उल्टी बातें करते हैं।

गौरी बाबूने गद्गद होकर कहा,—आपके उपदेशोंसे मुझे बहुत कुछ शान्ति मिली। इस......

देवीने बात काटकर कहा,—वास्तविक शान्ति तब मिलेगी, जब आप गम्भीरता-पूर्वक सारी बातोंको समझनेकी चेष्टा करेंगे। गम्भीरता-पूर्वक विचार किये बिना शब्दार्थका असली रहस्य नहीं मालूम होता।

इतनेमें गौरी बाबूकी दृष्टि उस चित्रपर फिर पड़ी, जिसकी देवीजी पूजा करती थीं। अत्यन्त निकट होनेके कारण उन्होंने उस चित्रको एकबार गौरसे देखा; न जानें क्यों उनका हृदय

धकधका उठा। थोड़ी देरतक चुप रहे। सोचने लगे, ओफ! नारी-हृदय इतना महान होता है और पुरुष-हृदय इतना कठोर! शोक !!

बाद बोले,—अच्छा, आपको अपने उपास्य देवका रूठना कैसे मालूम हुआ? क्या ये बातें भी किसी संकेतसे जानी जाती हैं? कृपा करके स्पष्ट शब्दोंमें बतलाइये, इसे मैं जानना चाहता हूँ।

"इसके लिए कोई खास संकेत नहीं है", यह कहकर देवीजी चुप होगयीं। उनके तेज-पूर्ण मुख-मण्डलपर शोक और चिन्ताकी एक हल्कीसी आभा दौड़ गयी। उन्होंने एकबार बड़े गौरसे स्नेहभरी चितवनसे गौरी बाबूकी ओर देखा, बाद आँखें बन्द कर लीं। गौरी बाबू टकटकी लगाकर देवीजीकी ओर देखने लगे। उस प्रभा-पूर्ण मुख-मण्डलपर अश्रु-विन्दु दिखलायी पड़े—किन्तु आँखें बन्द ही थीं। गौरी बाबूने अपने प्रश्नपर मन-ही-मन पश्चात्ताप किया। बड़ी देरके बाद देवीकी आँखें खुलीं। शान्त मुद्रा धारण करके बोलीं,—क्या मेरे आराध्य देवके रुष्ट होनेका हाल जानना चाहते हैं? अच्छा, मैं बतलाती हूँ। यद्यपि यह बात आजतक मैंने किसीसे भी नहीं कही, तथापि आपसे कहूँगी। किसीसे न कहनेका कारण यह नहीं है कि मैं कहना ही नहीं चाहती थी, बल्कि यह कि किसीने मुझसे पूछा ही नहीं।

इसके बाद देवीजी फिर चुप होगयीं। क्षण-कालके बाद

बोलीं,—मुझे कितना कष्ट हुआ, साधारण उपासक इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। ओफ! उसके स्मरणसे आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं—कलेजा काँप उठता है। (आँसू पोंछकर) किन्तु यह मैं कहूँगी कि आराध्य देवने मुझे एक भी दुःखदायक शब्द कभी नहीं कहा—और न तो कोई मेरा अनिष्ट ही किया।

गौरी—फिर आपको इतना कष्ट क्यों हुआ ?

देवी—केवल यह जानकर कि वह मुझसे नाराज होकर खिंचेसे हैं।

गौरी—उनकी नाराजगी आपको कैसे मालूम हुई ?

देवी—उनके मौन रहनेसे।

गौरी—क्या आपने उन्हें प्रसन्न करनेकी भी कभी कोई चेष्टा की ?

देवी—हाँ, पहले कुछ साधारण चेष्टायें अवश्य की गयी थीं; किन्तु उस समय, जब मेरा हृदय निबल था—उपासना-के उच्च रहस्यसे अनभिज्ञ था। अब मैं कोई चेष्टा नहीं करती और न करूँगी ही।

गौरी—कारण ?

देवी—उनमें इच्छाका अभाव।

गौरी—यह मैंने नहीं समझा, दया करके स्पष्ट कर दीजिये।

देवी—कारण यह कि उनकी इच्छा नहीं है कि मैं उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करूँ। ऐसी दशामें सम्भव है कि मेरे

प्रयत्नसे उन्हें किसी प्रकारकी असुविधा हो अथवा कष्ट हो। मेरा धर्म तो केवल इतना ही है कि जिसमें वह प्रसन्न रहें, वही मैं करती जाऊँ। यदि वह कहेंगे कि तुम नीच हो तो मैं यह कभी न कहूँगी कि 'नहीं, मैं नीच नहीं हूँ।' यदि वह पूछेंगे कि 'क्या तुम नीच नहीं हो?' तो मैं अवश्य कहूँगी कि, 'मैं नीच नहीं हूँ।' यदि वह प्रमाण माँगेंगे तो दूँगी और न माँगेंगे तो मैं अनुरोध भी न करूँगी। आराध्य देव जिस स्थितिमें रखना चाहें, उसी स्थितिमें प्रसन्नता-पूर्वक रहना ही सच्चे उपासक-या उच्च-कोटिकी उपासिकाका धर्म है। अब मैं उपासना और उपासकके कर्त्तव्योंको अच्छी तरहसे समझ गयी हूँ, अतः पहलेकीसी भूल नहीं कर सकती।

गौरी बाबूने देवीजीकी उक्त बातोंमें लोहेके समान दृढ़ता देखी; उनके उच्च-विचारोंमें अत्यन्त पवित्र और समुन्नत विचारोंका अनुभव किया; और अनुभव किया—उनके हृदय-में ज्ञान-विवेक-वैराग्यसे आच्छादित एक छिपी हुई शुष्क और क्रमशः नष्ट होती हुई सूक्ष्म वेदनाका। किसी पुरानी बातकी स्मृतिने उस वेदनाके रूपको गौरी बाबूके हृदय-पटपर अंकित-सा कर दिया। उन्होंने अपनेको सँभालनेकी बहुत चेष्टा की, पर किसीके ऊपर महान घृणा, विषाद और तिरस्कार-भाव उत्पन्न होनेके कारण उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऊपरकी बात कहकर देवीजी चुप होगयीं। गौरी बाबू भी इसके आगे और कुछ पूछनेका साहस न कर सके,—मन-ही-मन उनकी

अनन्य भक्तिका लोहा मान गये। उनका हृदय ज्ञानदत्तसे मिलनेके लिए अनायास उत्सुक होगया।

इसके बाद वार्त्तालाप बन्द होगया। देवीजीने कलकत्ता-सभाके निमंत्रणका सुसम्वाद सुनाया। गौरीने हर्षित होकर अवश्य पधारनेके लिए जोर दिया। देवीने अत्यन्त कोमल और गम्भीरता-पूर्ण शब्दोंमें स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त गौरी बाबू आज्ञा लेकर वहाँसे बिदा हुए।

———*———
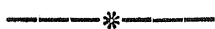
उन्तीसवाँ परिच्छेद

——:*:——

सन्ध्याका समय था। ज्ञानदत्त आफिससे आकर बरामदे-में बैठे थे। तबतक गौरी बाबू आगये। कहा,—आइये गौरी बाबू, अभी आपहीकी याद कर रहा था।

गौरी बाबूने पश्चात्ताप भरे स्वरमें कहा,—तुम कितने कठोर हो ज्ञानदत्त! मुझे तुम्हारी कठोरता देखकर पुरुष होते हुए भी पुरुष-जातिसे घृणा होगयी। जो मनुष्य संसारकी विचित्रतापर ध्यान न देकर छल-प्रपंचमें अपने विचारोंको निमग्न कर देता है, उसे हम क्या कहें, समझमें नहीं आता। निश्चय जानो, तुमने इतना बड़ा अपराध किया है कि जन्म-जन्मान्तरमें भी तुम्हारा उद्धार नहीं होनेका। तुम्हारी दशा

देखकर मुझे तरस आता है।

इतना कहते ही गौरीके करुणा-पूर्ण हृदयने नेत्रोंद्वारा अश्रु-वर्षा करनी शुरू कर दी। ज्ञानदत्त अवाक् होगये। सोचने लगे, "इन्होंने मेरी कौनसी कठोरता देखी? मैंने ऐसा कौनसा काम किया, जिसके कारण मेरे प्रति इनके हृदयमें इतनी घृणा होगयी?" बहुत कुछ माथा लड़ानेपर भी वह कुछ स्थिर न कर सके। बोले,—मैंने कौनसा अपराध किया है, गौरी बाबू? गौरी बाबूने करुण-कातर स्वरमें कहा,—अभी भी कहते हो, कौनसा अपराध किया है?—ज्ञानदत्त! ओफ्!! (कुछ सोच-कर) खैर जाने दो। मैं इसके आगे कुछ भी नहीं कहूँगा। समय अपने-आप इसका उत्तर तुम्हें देगा।

पश्चात् गौरी बाबूने एक लम्बी साँस ली। कहा,—देवीजी वास्तवमें देवी ही हैं। ओफ्! उनके कितने उच्च विचार हैं, कितना अपूर्व त्याग है, वह हम-तुम-सरीखे पामर पुरुषोंकी समझमें भी नहीं आ सकता। कलकत्तेवालोंने निमंत्रण दिया है, आनेपर देखना।

ज्ञानदत्त फिर कुछ पूछना ही चाहते थे कि इतनेमें एक स्त्री आ गयी और ज्ञानदत्तका पाँव पकड़कर रोने लगी। देखनेसे मालूम हुआ कि स्त्री किसी उच्च कुलकी है। दोनों मित्र आश्चर्य्यमें पड़ गये। वह स्त्री केवल इतना ही कह रही थी कि मुझे क्षमा करो। आज इतने दिनोंके बाद ज्ञानदत्तके हृदय-में गड़ी हुई आग फिर भभक उठी। सोचा, अवश्य यह वही

कुलटा रमा है। अभीतक यह जीवित है। ओफ्! सहज ही यह मेरा पीछा न छोड़ेगी। इसका इतना साहस! मेरे पास कौन बैठा है, कौन नहीं, इसका इसने कुछ भी विचार नहीं किया। पढ़ी-लिखी होकर ऐसी मूर्खता!!

वह कुछ कहना ही चाहते थे कि उस स्त्रीने ऊपर मुख उठाया, करुण-कातर शब्दोंमें कहा,—बबुआ ज्ञानू! मैं पापिनी हूँ, मुझे क्षमा प्रदान करो!

ज्ञानदत्तने प्रभाको पहचान लिया। पूछा,—कौन, भाभी! तुम यहाँ कैसे आयीं?

प्रभाने विलाप करते हुए कहा,—हाँ! यह राक्षसी घरको चौपट करनेवाली पिशाचिनी तुम्हारी भाभी ही है। पहले इस चांडालिनीको क्षमा प्रदान करो, पीछे आनेका कारण पूछो।

ज्ञानदत्तने एक बार गौरी बाबूके मुखकी ओर निहारकर कहा,—तुमने अपराध ही कौनसा किया, जिसके लिए क्षमाकी आवश्यकता है? जल्दीसे घरका हाल सुनाओ, मेरा जी घबड़ा रहा है।

प्रभाने अधीर होकर कहा,—क्षमा किये बिना मैं कुछ भी बोल न सकूँगी, निश्चय जानो।

ज्ञान—अच्छा, यदि ऐसा ही है तो क्षमा करता हूँ; अब जल्दी सब हाल कहो।

प्रभाने उन्मादिनीकी भाँति पर्दा हटाकर कहना प्रारम्भ किया,—कहते हो, अपराध कौनसा किया है? तुम्हीं बतलाओ

कि मुझसे बढ़कर अपराधिनी संसारमें कौन है ? स्वार्थमें पड़-कर मैंने ही तुम दोनों भाइयोंको जुदा कराया। सोचा, मैकेका धन पाकर मैं सुख भोगूँगी और तुम आजन्म पर-मुखापेक्षी बने रहोगे। यह क्या मामूली पाप है ? यदि मुझसे साधारण पाप हुआ होता तो मेरे सामने तुम्हारे भाई और भतीजेकी चार घंटेके भीतर मृत्यु न हो जाती। हाय राम ! मैंने ही उस लक्ष्मीका स्वर्गमय जीवन मिट्टीमें मिला दिया। बेचारी दर-दर-की ठोकरें खा रही है—इतना कहते ही वह फूट-फूटकर फिर रोने लगी। आगे बोल ही न सकी।

ज्ञानदत्तने चकित होकर पूछा,—क्या भैया......

प्रभा बीचहीमें बोल उठी,—अब अधिक न पूछो बबुआ। हाय ! कलेजा फटा जाता है। मैं तो उन्हींके पीछे जा रही थी, पर तुमसे क्षमा माँगनेके लिए यहाँ आगयी।

ज्ञानदत्तकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। गौरी बाबूने प्रभा-से पूछा,—क्या वह बीमार थे ?

प्रभा—रामपुर गाँवमें टन्नकी बीमारी बड़े जोरोंपर थी। उसीमें वह भी चले गये। साथ ही अपने प्यारे बच्चेको भी लेते गये। हाय ! यदि मैंने उस लक्ष्मीका जीवन नष्ट न किया होता तो आज मेरी यह दशा कदापि न होती।

गौरी बाबूने पूछा,—किसका जीवन ?

प्रभा—देवी रमाका।

गौरी—उसके जीवनको तुमने क्या नष्ट किया ?

प्रभाको इस बातकी सुध ही न थी कि ज्ञानदत्तके स्थानपर कोई दूसरा आदमी प्रश्न कर रहा है। उसने आर्त्त होकर कहा,—उस दिन रातको मैंने ही तुम्हें धोखेमें डाला था। दिवाकर-को बुलानेवाली भी मैं ही थी।

ज्ञानदत्त चौंक उठे। बोले,—क्या कहा? क्या दिवाकर-को तुमने बुलाया था?

प्रभा,—हाँ मैंने ही बुलाकर उसके घरमें उसे सुलाया था। रमाके नामपर नकली चिट्ठी दिखलानेवाली हतभागिनी और पापिनी भी मैं ही हूँ।

ज्ञानदत्त तमतमा उठे। बोले,—सो क्यों?

इसके बाद प्रभाने एक-एककर सारा हाल कह सुनाया। ज्ञानदत्त स्तब्ध और अस्थिर होगये। गौरी बाबूने ज्ञानदत्तको ओर एक बार तीक्ष्ण दृष्टिसे देखा। कहा,—अब कहो? उस समय मेरा कहना तुम्हें विषकी तरह मालूम होता था। संसार-में जो मनुष्य समझ-बूझकर नहीं चलता, उसे तुम्हारी ही तरह पछताना पड़ता है। ओफ़! उस निरपराधिनीको तुमने बड़ा कष्ट दिया, तुम नहीं जानते कि संसार कितना भयंकर है।

ज्ञानदत्तकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। रमापर किये गये अन्यायसे वह व्याकुल हो उठे। अपनी की हुई निष्ठुरताके आघातसे छटपटाने लगे। थोड़ी देरके बाद विलाप-युक्त स्वरमें बोले,—क्या तुम यह बतला सकती हो भाभी कि इस समय वह कहाँ है?

प्रभा रोती हुई बोली,—मैं अभागिनी उस लक्ष्मी रमाका कुछ भी पता न पा सकी। पर इतना मुझे अवश्य मालूम हुआ है कि वह जीवित है। हाय! यदि उसका दर्शन मिल जाता तो मैं उससे क्षमा माँगकर सुखसे मरती।

ज्ञानदत्तने एक लम्बी साँस ली। सोचने लगे, हाय! क्या अब वह न मिलेगी? मैंने उसके साथ कितना बड़ा अन्याय किया। जन्म-जन्मान्तरमें भी इस पापसे मेरी रिहाई नहीं हो सकती। प्राणाधिके! एक बार तू फिर अपनी झलक दिखला जा। सिर्फ एक बार! और कुछ नहीं, मैं सिर्फ इतना चाहता हूँ कि तुम्हारे सामने मैं अपनी भूल स्वीकार कर लूँ—क्षमा माँग लूँ! क्या तुम मुझे पतित समझकर न आओगी—प्रिये? नहीं नहीं, तुममें इतनी कठोरता नहीं आ सकती। भाभीका हृदय इतना कपट-पूर्ण था, यह मैं नहीं जान सका! इसी प्रकार बड़ी देरतक मन-ही-मन सोचने-विचारनेके बाद बोले, —भैयाके साथ ही जगदीश भी चल बसा?

प्रभाने बड़े कष्टसे कहा,—उसे कोई बहका ले गया। बहुत ढूँढ़ा, पर कुछ भी पता न चला!

ज्ञानदत्त—क्या कहा, जगदीशको कोई बहका ले गया।

प्रभा—हाँ।

ज्ञान—यह कैसे मालूम हुआ?

प्रभा—उसीके साथ दो लड़के और गये थे। एक तो उसके साथ ही है, लेकिन दूसरा लड़का किसी प्रकारसे भागकर

चला आया। वही यह हाल कह रहा था।

ज्ञान—कितने दिन हुए?

प्रभा—महीने भरसे अधिक हुआ।

गौरी—तब तो सम्भव है कि पता लग जायगा। अच्छा, जरा मेरे साथ चलोगे?

ज्ञानदत्त उठकर खड़े होगये। आगे पैर रखने भी न पाये थे कि प्रभाने पकड़ लिया। शायद उसने गौरी बाबूकी बात नहीं सुनी। बोली,—ठहरो, थोड़ा और सुन लो। अब मैं इस संसारमें अधिक देरतक न रहूँगी।

ज्ञानदत्त रुक गये। वह चाभीका गुच्छा देकर बोली,—यह लो चाभी। एक लाखसे अधिक नकद है और कुछ जेवर भी है। इसे अपने काममें लाना। अब यही मैं विनती करती हूँ कि निरपराधिनी रमाको जैसे भी हो और जहाँ भी वह हो, बहुत जल्द घर बुलानेका प्रबन्ध करो। यदि हो सका तो मैं उससे भी क्षमा माँगकर अपना कार्य्य समाप्त करूँगी; नहीं तो मेरे न रहनेपर मेरी ओरसे तुम्हीं उस देवीसे क्षमा माँगना।

ज्ञानदत्तने चाभीका गुच्छा प्रभाके हाथमें देनेका उपक्रम करते हुए कहा,—अभी इसे अपने ही पास रक्खो। मैं जगदीश-का पता लगाने जाता हूँ। जो होना था सो तो होगया, अब घबड़ानेसे कोई लाभ नहीं।

प्रभाने कहा,—बेकार है। मेरे ही पापसे गोदका वह लाल खो गया। अब वह नहीं मिल सकता। चाभी अपने पास ही

रहने दो। मुझे इसकी जरूरत नहीं है। हाय! मैंने उस भोली-को कितना कष्ट पहुँचाया! सम्पत्तिके लोभसे तुमसे कितना छल किया। भाई-भाईको अलग किया। बस अब नहीं सहा जाता। मेरी इच्छा पूरी करो, अब मैं अधिक समयतक यह यंत्रणा नहीं सहन कर सकती।

ज्ञानदत्तने सान्त्वना देते हुए कहा,—दुःखके समय धीरता-से काम लेना चाहिए भाभी! अभी तो मैं तैयार हूँ न; तुम्हें किस बातकी चिन्ता है? जो होनेवाला होता है, वह हो ही जाता है; इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं!

प्रभाने विलापके साथ कहा,—हाय, मैंने तुम्हारा मुँह देख-कर भी दया नहीं की! राक्षसी बनकर तुम्हारे सुखमय जीवन-को बर्बाद करनेमें कुछ भी उठा नहीं रक्खा। फिर भी तुम मुझ डाइनसे इतने प्रेमके साथ बातें करते हो? नहीं बबुआ, मेरे साथ ऐसा व्यवहार न करो; इससे मेरी वेदना बढ़ती जा रही है। यदि तुम मेरा कल्याण चाहते हो, तो मेरी नीचतापर मुझे खूब धिक्कारो, कठिन-से-कठिन दंड दो—तभी मुझे कुछ शान्ति मिल सकती है।

ज्ञान—इस तरह अपने दिलको छोटा करना ठीक नहीं। बीती बातोंपर अफसोस करना उचित नहीं। तुम स्थिर हो-कर थोड़ा आराम करो, तबतक मैं जगदीशका पता लगाकर आता हूँ।

इसके बाद ज्ञानदत्त जल आदिका प्रबन्ध करके गौरी

बाबूके साथ चले गये। थानेमें जाकर हुलिया करायी। अख-बारोंमें लड़केके गुम होनेकी सूचना प्रकाशनार्थ भेज दी। मिर्च देशकी भर्तीका दफ्तर देखकर गौरी बाबूके घर आये। कहा,—हमें तो मालूम होता है गौरी बाबू, जगदीश अभी यहीं है।

गौरी बाबूने कहा,—यही तो मैं भी समझता हूँ। क्योंकि भर्तीवालेने और लोगोंको भीतर देखनेके लिए जाने दिया लेकिन लड़केका नाम सुनकर हमलोगोंको नहीं जाने दिया।

ज्ञान—इसके अलावा उसकी बातोंमें भी इसी बातकी झलक पायी जाती थी। अच्छा, तो फिर अब कौनसा उपाय करना चाहिए?

गौरी—मेरी समझमें तो यह आता है कि पुलिस कमि-श्नरके पास एक दरख्वास्त देनी चाहिए और दफ्तरके किसी आदमीको लालच देकर फँसाना चाहिए।

ज्ञानदत्तके मनमें यह बात बैठ गयी। तुरन्त ही दोनों काररवाई कर दी गयी। बाद गौरी बाबू अपने घर चले गये और ज्ञानदत्त अपने डेरेपर आये। प्रभा अभीतक ज्योंकी-त्यों बैठी थी। ज्ञानदत्तने बड़े आग्रहसे उसे खिलाया-पिलाया। उसके साथ आये हुए आदमीको भी कुछ खिलाकर नौकरके साथ समाचार-पत्रकी आफिसमें सोनेके लिए भेज दिया।
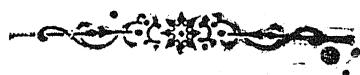
तीसवाँ परिच्छेद

कई दिन बीत गये, रमाका कुछ भी पता न चला। विदा-पुरसे भी जो समाचार आया, वह सन्तोष-जनक नहीं। किस प्रकार पता लगाया जाय, यह समझमें न आता था। इधर प्रभा रात-दिन रमासे मिलनेके लिए आतुरताके साथ ज्ञानदत्त-से कहा करती थी, वह नहीं मिलेगी, अब मेरा जीना व्यर्थ है। रमाका हाल सुनकर राजोको भी बहुत दुःख हुआ। वह भी मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगी। उसने तो ज्ञानदत्तसे यहाँ-तक कह डाला कि,—आपका हृदय इतना कठोर है, यह मुझे आज ही मालूम हुआ। बेचारे ज्ञानदत्त लज्जित होनेके सिवा और कहते ही क्या।

आज ठीक नौ बजे सभामें जाना था। इसलिए लगभग साढ़े आठ बजे ही भोजन करके ज्ञानदत्त चले गये। ठीक समयपर देवीजीका व्याख्यान शुरू होगया। यद्यपि पं० ज्ञान-दत्त गये तो थे रिपोर्ट लिखनेके लिए, किन्तु किसी कारणवश वह अपने काममें असमर्थ होगये। टकटकी लगाकर देवीको निहारने लगे। रिपोर्ट लिखनेकी सुध ही न रही। गौरी बाबूके कई बार पूछनेपर भी कुछ नहीं बतला सके। थोड़ी ही देरके बाद उनकी आँखोंसे पानीकी बूँदें भी झड़ने लगीं। अब तो वहाँ एक मिनटका रहना भी उनके लिए कठिन होगया। झट

उठकर बाहर चले आये।

किन्तु यहाँ भी शान्ति न मिली। अपने प्राणोंमें वह एक त्रुटिका अनुभव करने लगे। देवीजीका दर्शन करनेके लिए वह फिर भीतर आये। वही दशा फिर हो उठी। किसी प्रकार देवीजीका ओजस्वी व्याख्यान समाप्त हुआ। तुमुल-घोषके साथ वह अपने निर्दिष्ट स्थानपर चली गयीं। ज्ञानदत्त एक जगह खड़े ताकते रह गये। बड़े-बड़े लोग देवीजीका आग्रह करनेके लिए उनके साथ गये, ज्ञानदत्तकी ओर किसीने दृष्टि भी नहीं डाली। सबलोग व्याख्यानकी सुन्दर आलोचना-प्रत्यालोचना करते हुए अपने-अपने घरकी ओर चले। किन्तु ज्ञानदत्त भकुआ बने ज्योंके-त्यों खड़े रहे। इतनेमें काशी बाबू-की दृष्टि पड़ी। आकर बोले,—कहिये पं० ज्ञानदत्तजी, अकेले कैसे खड़े हैं? गौरी बाबू कहाँ गये?

ज्ञानदत्तने उदासीनताको छिपाते हुए कहा,—शायद देवी-जीके साथ गये।

काशी—देवीजीका पांडित्य देखकर दंग रह जाना पड़ा। भई तभी तो आज समूचा देश उनकी मुट्ठीमें हो रहा है। वास्तवमें देशका उद्धार स्त्री-जाति ही कर सकती है।

ज्ञानदत्तने अन्य-मनस्क भावसे कहा,—इसमें क्या सन्देह।

काशी—श्री भी अपूर्व ही है। उनकी ओर ताकनेमें आँच लगती है।

ज्ञान—त्याग ऐसी ही चीज है। चलिये घर चलते हैं?

काशी—और यहाँ काम ही क्या है।

दोनों आदमी टैक्सीपर बैठकर चल पड़े। समाचार-पत्रकी आफिसके सामने पहुँचते ही एक अपरिचित आदमीने हाथ उठाया। मोटर रुकी। उस आदमीने एक पत्र दिया। पढ़नेपर मालूम हुआ कि अभीतक जगदीशका पता नहीं लगा है।

पं० ज्ञानदत्तजी सीधे राजा साहिबकी बैठकमें गये। जी बहलानेकी बहुत चेष्टा की, पर फल कुछ न हुआ। धीरे-धीरे सूर्य्य भगवान अस्तगामी हो चले। सन्ध्या अपना अलस पग बढ़ाते हुए एकाएक आ पहुँची। राजो स्त्री-सभामें जानेकी तैयारी करने लगी। शामको छः बजे देवीजीका एक भाषण स्त्रियोंके लिए होनेवाला था। प्रभा भी उसके साथ ही गयी। वह तो जाना नहीं चाहती थी, पर राजोने इतना अनुरोध किया कि धनाढय कन्याका मान उसे रखना ही पड़ा। अब ज्ञानदत्तका अकेले रहना पहाड़ होगया। यदि ऐसा जानते तो शायद राजोके आग्रह करनेपर उसके साथ ही चले गये होते। अब वह बड़े संकटमें पड़ गये। सोचने लगे, चलनेसे राजो कहेगी मेरे कहनेसे नहीं आये, और अपने-आप आये हैं।

कोई कुछ भी कहे, ज्ञानदत्त चल पड़े। सभा-भवनमें पहुँचनेपर मालूम हुआ कि देवीजीका भाषण प्रारम्भ होगया है। भवन ठसाठस भरा हुआ था। देखा, एक ओर पर्देके भीतर भारत-ललनायें बैठी हैं और दूसरी ओर आर्य्य-वंशजों-की धक्का-धुक्कीका बाजार गर्म हो रहा है। ज्ञानदत्त भी इधर-

उधर धक्का खाने लगे। इतनेमें एक स्वयं-सेवककी नजर इन-पर पड़ी। वह तुरन्त हाथ पकड़कर भीड़को चीरता हुआ आगे ले गया। देवीजीके बिलकुल समीप जाकर ज्ञानदत्त बैठ गये। उनके बैठते ही देवीजीका व्याख्यान बन्द होगया। सबलोग आपसमें कहने लगे,—हैं, यह क्या? देवीजी बोलते-ही-बोलते चुप क्यों हो गयीं? बिना कुछ कहे-सुने जा कहाँ रही हैं?

लोगोंमें यह चर्चा हो ही रही थी कि देवीजी मंचसे उतर-कर ज्ञानदत्तके पास आ गयीं। गौरी बाबू भी पीछे लगे थे। ज्ञानदत्तकी क्या दशा हुई, शब्दोंमें व्यक्त करना कठिन है। तब-तक देवीजी ज्ञानदत्तके पैरोंपर गिर पड़ीं। ज्ञानदत्त सहम उठे—अकर्मण्य होगये; पर तुरन्त ही कुर्सीसे उठकर देवीको हृदयसे लगा लिया। कंठ नहीं खुला; पर मूक भाषामें उन्होंने कहा,—प्रिये! मैं अपने किये कर्मोंसे लज्जित होते हुए भी निर्ल-ज्जता-पूर्वक तुमसे क्षमाकी भीख माँग रहा हूँ।

वह दृश्य अपूर्व था। वह छटा ही निराली थी। प्रेमका समाँ बँध गया। देवीने भरी सभामें शान्त भावसे कहा,—प्राणनाथ! मैं अपना काम करती हूँ, आप अपना काम करें। मेरे मोहमें पड़कर अथवा मेरे कुसंस्कारोंकी याद करके आप किसी प्रकारके भी कष्टोंका अनुभव न करें। मेरी तपस्या सफल हुई। आज्ञा दीजिये, मैं अपना कर्त्तव्य पालन करूँ। आशा है, मेरे इस कार्यसे आप किसी प्रकारके कष्टका अनुभव

न करेंगे। पापी भी तो देवताओंका दर्शन करता है, पर क्या उससे देवताओंको दुःख होता है?

ज्ञानदत्तको कुछ भी कहनेका अवसर न मिला। देवी फिर अपने स्थानपर जाकर पूर्ववत् बोलने लगी। बहुत देरतक यह रहस्य किसीकी समझमें नहीं आया। बाद मालूम हुआ कि देवीजीका पं० ज्ञानदत्तके साथ कोई नातेदारीका सम्बन्ध है। किसीने कहा,—भाई-बहनका नाता है। जान पड़ता है कि देवीकी पूरी बात किसीने नहीं सुनी। नहीं तो 'प्राणनाथ' शब्द सुनकर किसीको अटकल लगानेकी क्या जरूरत थी? किसीने कहा,—देवीजी सबके साथ आत्मीयकासा ही बर्त्ताव करती हैं। किसीको सच्ची बात भी मालूम होगयी।

पाठकगण समझ गये होंगे कि रमा ही देवीजीके नामसे विख्यात हो रही है। ज्ञानदत्त गहरी चिन्तामें पड़ गये। सोचने लगे,—हाय! ऐसी सर्व-गुण-सम्पन्ना स्त्रीको मैंने अपनी मूर्खताके कारण इतना कष्ट पहुँचाया। देशमें इतना बड़ा सम्मान प्राप्त करके भी यह मुझे नहीं भूली, अपने धर्मानुसार ही आकर पैरोंपर गिरी। मेरी नीचतापर ध्यानतक नहीं दिया। धन्य है रमणी-हृदय! अब मैं कैसे कहूँ कि प्रिये! तू मेरे अपराधोंको भूल जा? इतना कहनेसे यह भूलेगी ही कैसे? क्या मैंने साधारण अपराध किया है? ऐसी स्वाभिमानिनी देवी क्या मेरे किये अपमानोंको इतने शीघ्र भूल जायगी? क्या मानव-हृदय कभी इतना उदार भी हो सकता है? नहीं नहीं,

यदि इसमें इतनी महानता न होती तो आती ही क्यों? और फिर इसकी गुणावलियोंका वर्णन करते-करते गौरी बाबूके नेत्र अश्रु-पूर्ण क्यों होगये होते?

ज्ञानदत्त इसी प्रकारकी विचार-तरंगोंमें निमग्न ही थे कि देवीका भाषण समाप्त होगया। ज्ञानदत्त साहस करके देवीके पास गये और ढाढस बाँधकर बोले,—मैं अपने स्थानपर ले चलना चाहता हूँ।

देवीने स्नेहके साथ कहा,—अहोभाग्य! आपकी रुचिके वरुद्ध मेरी रुचि हो ही कैसे सकती है नाथ! चलिये, मैं वहीं चलूँगी।

इतना कहकर वह ज्ञानदत्तके साथ चल पड़ी। लोगोंने सवारीपर बैठनेके लिए रमासे बहुत अनुरोध किया; किन्तु उसने यही उत्तर दिया कि आराध्य देवके मन्दिरमें पैदल ही जाना उचित है।

यह सुनकर ज्ञानदत्त लज्जाके मारे गड़ गये। देवीको पैदल चलते देखकर शहरके अमीरलोग भी पैदल ही चल पड़े। रास्तेमें ज्ञानदत्तके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकला। थोड़ी ही देरमें सबलोग पं० ज्ञानदत्तके मकानपर जा पहुँचे। भीड़का कोई ठिकाना न रहा। धीरे-धीरे बहुत रात बीत गयी, पर भीड़ कम न हुई। अब अधिक देरतक अपने हृदयकी व्यथाको रोक रखना उनके लिए असह्य होगया। सबलोगोंके सामने ही उन्होंने रमाको हृदयसे लगाकर क्षमा माँगी।

रमाने कहा,—आपने अपराध ही कौनसा किया है नाथ! यह सब तो मेरे पूर्व कर्मोंका फल है। इसमें आपका क्या दोष? मैं तो आपकी अर्धांगिनी हूँ, मुझसे क्षमा कैसी? शरीर-के एक अङ्गका दूसरे अङ्गसे क्षमा माँगना, क्या न्याय-संगत है?

ज्ञानदत्त कुछ कहना ही चाहते थे कि प्रभा विलाप करती हुई आकर रमाके पैरोंसे लिपट गयी। बोली,—बहन, इस दुःखिनीपर दया करो—दया करो। हाय! तुम्हारे जीवनको मिट्टीमें मिलानेवाली मैं ही हूँ!

रमा शान्त और गम्भीर भावसे बोली,—तुम्हारी रक्षा परमेश्वर करेंगे बहन! अधीर होनेकी जरूरत नहीं है।

यह कहकर रमाने प्रभाको उठा लिया। पहचानकर बोली, ओहो, तुम यहाँ कबसे हो बहन? इधर बहुत दिनोंसे तुम्हारा कोई समाचार ही नहीं मिला।

सारा हाल सुनानेसे पहले प्रभाने फिर क्षमा-याचना की।

देवीने ऐसा ही किया। आज उसका हृदय-स्थित सन्देह निवृत्त होगया। जेठानीका इतना कुटिल व्यवहार होते हुए भी रमाकी क्षमा-शीलता दूर न हुई। उसने बड़े स्नेहसे प्रभाको गलेसे लगा लिया। बोली,—बहन, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें, मेरे मनमें तुम्हारे प्रति किसी प्रकारका मनो-मालिन्य नहीं है, यह मैं शपथ-पूर्वक कहती हूँ। तुम मेरे लिए किसी प्रकारका दुःख न करो। तुम्हारा कोई दोष नहीं। सब मेरे अदृष्ट कर्मों-का फल है। मेरी जीवन-नौका इसी पथसे पार लगनेवाली

थी, उसे तुम कैसे घुमा सकती थीं ?

इतनेहीमें जगदीशको साथ लिए गौरी बाबू आगये। बच्चेको देखते ही ज्ञानदत्त आदिका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट होगया। प्रभामें नवीन प्राणका संचार हुआ। उस हृदयकी वह उत्कण्ठा और वह उल्लास अवर्णनीय है। समय बड़ा ही बलवान है; समय ही सबको उत्तर और उचित शिक्षा देता है। इतने दिनोंकी सूनी गोदमें आज फिर वह लाल आकर जगमगा उठा। जिस देवरको प्रभा पहले शत्रुसे भी बढ़कर समझती थी, उसीकी अनुपम अनुकम्पासे आज उसका खोया हुआ रत्न प्राप्त हुआ। इसके लिए यद्यपि वह मुखसे तो कुछ नहीं बोली, किन्तु उसके शरीरका रोम-रोम विकसित होकर आशीर्वाद देने लगा—कृतज्ञता प्रकाश करने लगा—अपनी पूर्व कृतिपर लज्जित होने लगा। वाह री ईश्वरीय लीला! तेरे शासन-में हर्ष और शोककी कैसी विचित्र होड़ है कि समझते ही बनता है। इस समय यदि प्रभा अपने प्यारे पुत्र जगदीशकी प्राप्तिके आनन्दमें विभोर न होगयी होती तो क्या वह रमा और ज्ञानदत्तके स्वाभाविक क्षमा-दानके भारसे कभी जीवित रह सकती ?

जगदीशसे पूछा-पेखी हो ही रही थी कि अपनी एक दाई के साथ राजो भी आ पहुँची। ज्ञानदत्त उसे देखते ही अवाक् होगये। आजसे पहले कभी भी राजो नहीं आयी थी और न तो उसका यहाँतक इस प्रकारसे आना सम्भव ही था। उसने

कमरेमें पहुँचते ही अपनी दाईसे कहा,—तुम यहीं बैठ जाओ—थोड़ी देरके बाद चलूँगी। इस प्रकार दाईको बिठाकर राजो, भीड़के बीचोबीच बने हुए रास्तेसे गन्तव्य स्थानपर पहुँचते ही ज्ञानदत्त और रमाको नम्रता-पूर्वक प्रणाम करके बैठ गयी। कमरेमें शान्ति निष्कंटक शासन कर रही थी।

आह, वह कितना मनोहर, कारुणिक और विचित्र दृश्य था! स्तब्धताका अटल साम्राज्य था। सबका मन किसी अज्ञात शब्दके सुननेकी प्रतीक्षामें रत था। तबतक राजोने स्तब्धता भंग कर दी। बड़े कष्टसे अपनी आन्तरिक वेदनाको छिपाकर रमाकी ओर मुख करके मधुर स्वरमें बोली,—इस निस्सहायाके लिए क्या आज्ञा है? मैं आपहीके मुखसे अपना भाग्य-निर्णय कराना चाहती हूँ। यद्यपि इस पापिनीने आपके जीवन-धनका अपहरण करनेमें कुछ भी उठा नहीं रक्खा है, फिर भी मुझे पूरी आशा है कि आप उसे क्षमाकी दृष्टिसे ही देखेंगी। क्योंकि मैंने जो कुछ किया है, वह जान-बूझकर नहीं—प्रारब्ध-चक्रमें पड़कर!

अहा! राजोके शब्दोंमें कितनी कोमलता थी—कितना ओज था! रमा इस बातको कुछ भी न समझ सकी, किन्तु उसके हृदयने स्वाभाविक ही उक्त शब्दोंमें एक गम्भीर वेदना-का अनुभव किया। इससे वह विगलित हो उठी। करुणा-पूर्ण स्वरमें बड़े आदरके साथ पूछा,—तुम निस्सहाया क्यों हो, मेरी प्यारी बहन?

राजोने संकोचकी रक्षा करते हुए संक्षेपमें सारा हाल कह सुनाया। अन्तमें यह भी कहा कि,—अब मेरा जीवन आप-हीके हाथमें है! यद्यपि मैंने आपके साथ भारी अन्याय किया है, तथापि मुझे विश्वास है कि आप मेरे हृद्गत भावोंको टटोल-कर मुझे अपराधिनी न ठहरावेंगी; क्योंकि इसमें मेरा दोष नहीं! अब आप जैसा उचित समझें, मुझे आज्ञा दें; मैं उसी आज्ञा-को शिरपर चढ़ाऊँगी।

रमा कुछ कहना ही चाहती थी कि ज्ञानदत्तने शोक-पूर्ण निःश्वास छोड़कर कहा,—मैं बड़ा ही अधम हूँ, मुझे क्षमा करो! मैं अपने कुत्सित कर्मोंके लिए तुमसे ही नहीं, यहाँ जितने लोग उपस्थित हैं, सबसे क्षमा चाहता हूँ। यह कहते ही ज्ञानदत्तकी आँखोंसे आँसू छलछला पड़े। अभी वह बहुत-सी बातें कहना चाहते थे, किन्तु गला रुँध जानेके कारण बड़े ही कष्टके साथ रमासे सिर्फ इतना ही कह सके कि,—तुमसे शुद्ध स्नेह रखते हुए भी तुमको दुःखमें छोड़ मेरा यह पत्थरसा हृदय राग-रंगमें भूलकर एक उच्चकुलोत्पन्ना युवती-का निर्दयता-पूर्वक रक्त-शोषण कर रहा था। प्यारी राजो! यदि क्षमा कर सको तो तुम भी मेरी नीचतापर क्षमा करो—या पैरोंसे ही ठुकरा दो! इसमें भी मुझे कोई ग्लानि नहीं। नाथ! तुम्हारी सृष्टिमें कितना अन्याय होता है? क्या ऐसी देवीको मेरे-जैसे पामर और अधम मनुष्य—नहीं-नहीं, मैं मनुष्य नहीं हूँ, प्रबल राक्षस हूँ—राक्षसके हाथमें सौंपना ही

तुम्हें अच्छा लगता है ? इस वैषम्यका क्या रहस्य है ?

उपस्थित जनताने कहा,—धन्य हैं आप ! धन्य हैं। जो मनुष्य अपने मुखसे भरी सभामें अपने दोषोंको प्रकट कर सकता है, उसकी महानता शतमुख सराहनीय है।

रमाने स्वामीको सान्त्वना देते हुए कहा,—अधीर होनेका कोई आवश्यकता नहीं स्वामिन् ! बीती बातोंपर शोक करना व्यर्थ है। "गतासून गतासूंश्च नानु शोचन्ति पंडिताः" क्य आप भगवान श्रीकृष्णके इस वाक्यको भूल गये ?

ज्ञानदत्त—ओफ् ! तुम्हारी-जैसी देवीके योग्य यह अधम नहीं था। अब मुझे क्या करना चाहिए, समझमें नहीं आ रहा है। इसलिए अब तुम्हीं बतलाओ कि मैं क्या करूं ? इस अधमको तुम जो भी दंड दोगी, बिना मुखसे उफ् निकाले यह पतित उसे शिरोधार्य करेगा। किन्तु तुम्हारे कुछ कहनेके पहले मैं इतना और कह देना चाहता हूँ कि दंड देनेमें किसी तरहकी भी दयाका भाव मनमें न लाना।

रमाने राजोकी कही हुई सारी बातोंको बड़े ध्यानसे सुना था। ज्ञानदत्तकी बात सुनकर वह गहरे विचारमें निमग्न हो-गयी। सोचने लगी,—सचमुच ही इसमें राजोका कोई दोष नहीं। यदि उसमें किसी प्रकारका स्वार्थ होता, यदि वह किसी प्रकारके प्रलोभनमें पड़कर इस ओर झुकी होती, अथवा उसके दिलमें किसी प्रकारकी पाप-वासना उत्पन्न हुई होती तो अवश्य ही उसे अपराध लगता; किन्तु जब स्वाभाविक

ही एक क्षणमें दोनोंके शुद्ध हृदयका झुकाव एक दूसरेकी ओर होगया, किसीने उस झुकावमें किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं की, किसीके मनमें कोई दुर्भाव उत्पन्न नहीं हुआ, तब इसमें किसीको दोषी ठहराना अन्याय है—सहृदयताके विरुद्ध है। किन्तु उसके लिए मुझे क्या कहना चाहिए? यदि निराशा-पूर्ण उत्तर दिया जायगा, तो अवश्य ही यह प्राण-त्याग कर बैठेगी और यदि आजन्मके लिए सम्बन्ध कर लेनेको कहा जाय तो समाजकी मर्यादा भंग हो जाती है। तो फिर क्या करना उचित है? माना कि वैवाहिक सम्बन्ध हुए बिना इनका इस प्रकारसे सम्मिलन हो जाना ठीक नहीं हुआ; पर राजा दुष्यन्तने भी तो ऐसा ही किया था? कौन कह सकता है कि दुष्यन्त और शकुन्तलाने अनुचित किया? और फिर इस युगल मूर्तिका प्रणय-बन्धन तो कहीं उससे भी अधिक पवित्र है। दुष्यन्तने तो मदान्ध होकर शकुन्तलाको अपनाया था और पीछे उसको दुतकार भी दिया था; पर यहाँ वह बात नहीं। ओ! अब समझ गयी। यहाँ यह सब सोचनेकी कोई आवश्यकता नहीं! शुद्ध प्रेमी और प्रेमिकाका तो संसार ही दूसरा होता है। ऐसोंके लिए सांसारिक नियम लागू नहीं हो सकते। इसीसे तो धर्मशास्त्र भी देश, काल और पात्रके अनुसार प्रत्येक बातका विचार करनेकी आज्ञा देता है। धर्मके किसी भी नियमको कभी भी सदाके लिए कोई निश्चित रूप नहीं दिया जा सकता। क्योंकि ऐसा करनेसे धर्मकी सजीवता ही लोप

हो जाती है और उसके स्थानपर उसमें जड़ता आ जाती है। इसलिए भविष्यमें यदि कोई इस मामलेको सामने रखकर बहु-विवाहका समर्थन करेगा, जातीय भावोंको उच्छृखलता-पूर्वक मिटानेकी चेष्टा करेगा अथवा और किसी तरहका अनुचित लाभ उठावेगा या लाभ उठानेका प्रयत्न करेगा तो वह उसकी कृपणता और अदूरदर्शिता होगी—राजोको दोषी कदापि न होना पड़ेगा,—यह सदा निष्पाप है और रहेगी।

इस प्रकार बड़ी देरतक उधेड़-बुन करनेके बाद गम्भीर और शान्त मुद्रा धारण करके रमा बोली,—एक ही देवताके बहुतसे उपासक हुआ करते हैं। यदि कोई मनुष्य किसी देवता-पर केवल अपना अधिकार रखनेकी चेष्टा करे तो उसकी धृष्टता है। मेरी ओरसे तुम्हें कोई रुकावट नहीं है बहन। जिस प्रकार मैं पूजा करूँगी, उसी प्रकार तुम भी करना। अब मुझे ऐहिक सुखकी तनिक भी इच्छा नहीं। मैं तुम्हारे इस पवित्र भाव और स्पष्ट भाषणसे अत्यन्त प्रसन्न हुई। ईश्वर करें तुम्हारे विचार सदा इसी प्रकार समुन्नत बने रहें। तुम सांसारिक सुखोपभोग करती हुई अपनी पारमार्थिक उन्नति करना, मैं तुम्हारे सुखको देखकर आनन्द मनाती हुई स्वामी-की और देशकी सेवा करके जीवन-यापन करूँगी। मैं बहुत सोच-विचारके बाद इसी परिणामपर पहुँची हूँ कि तुम्हारा होनहार और त्यागी जीवन किसी प्रकार भी उस वस्तुसे वंचित करना उचित नहीं है, जिसके लिए वह अपना सर्वस्व

परित्याग कर चुका है।

राजोने ऐसे निर्णयकी आशा नहीं की थी। घरसे आते समय उसके हृदयमें कितनी व्यथा थी, कहना कठिन है। उसी व्यथासे अचेत होकर आज उसने इतने बड़े साहसका काम किया। नहीं तो वह ज्ञानदत्तके वियोगमें मर जाती, उन्मादिनी बनकर चारों ओर भटकती फिरती, और भी न जाने क्या-क्या करती, पर दूसरेके घर आकर सैकड़ों आदमियोंके बीच अपना कच्चा चिट्ठा किसीसे मरते दमतक न कहती—न कहती। किन्तु रमाके कथनसे वह गद्गद हो उठी। कृतज्ञताके भारसे उसका मस्तक झुक गया। संकोचके कारण कुछ भी न ;बोल सकी। उसने मूक-भाषामें अपने हृदयका भाव व्यक्त कर दिया। यदि वह बोल सकती, तब भी शायद यही कहती कि,—धन्य हो देवि, धन्य हो। तुम्हारा हृदय इतना महान है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। तुम्हारे इस उपकारको मैं जन्मभर न भूलूँगी। गौरी बाबूके मुखसे जो कुछ सुननेमें आया था, कहीं उससे भी बढ़कर आँखों देखा। राजोका उक्त हार्दिक भाव रमासे छिपा न रहा। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि, इस समय लज्जा और संकोचके कारण यह एक शब्द भी न बोल सकेगी। अतः कहा,—प्यारी बहन, रात अधिक होगयी है, जाओ सो रहो।

रमाकी आज्ञाको वह कदापि न टालती, पर बातोंका सिलसिला ही न टूटा। धीरे-धीरे सबेरा होगया। बाद वह

उठी और अपने मकानमें चली गयी। अपने कमरेमें पहुँचकर फिर वह गहरी चिन्तामें पड़ गयी। उसी चिन्ता-ग्रस्त हृदयसे उसने बड़े यत्नसे एक पत्र लिखा और साहस करके अपने पिताके पास भेज दिया। यह काम कर चुकनेपर उसकी चिन्ताका बोझ बहुत कुछ हलका होगया। राजा साहिब एक पत्र पढ़ रहे थे, जोकि इस प्रकार था:—

श्रद्धेय राजा साहिब,

आपको यह पढ़कर आश्चर्य्य और क्रोध होगा कि मेरा और राजोका विवाह होगया। यह काम मेरी इच्छासे हुआ या राजोकी अथवा दोनोंकी सम्मिलित इच्छासे, यह कहना कठिन है। मेरे विचारसे तो यह काम प्रारब्धानुसार दैवेच्छा-से ही हुआ है। अब आप यदि उचित समझें तो हमलोगोंके इस सम्बन्धको समाजके सामने स्पष्ट कर दें। आशा है, मेरी यह ढिठाई क्षमाकी दृष्टिसे देखी जायगी।

विश्वासघाती—

ज्ञानदत्त

राजा साहिब इस पत्रको पढ़कर अवाक् होगये। कुछ उनकी समझमें ही नहीं आया कि यह क्या मामला है। बहुत माथा पच्ची करनेपर भी फल कुछ न मिला। इतनेमें राजोका पत्र आ पहुँचा। जब उन्होंने उस पत्रको खोला तो उसमें लिखा था:—

पूज्यवर बाबूजी,

इधर कुछ दिनोंसे मैं अपने हृदयकी एक बात आपसे कहने-के लिए विशेष उत्सुक थी, पर कहनेका साहस ही न होता था। अब देखती हूँ बिना प्रकट किये काम नहीं चलता; अतः इस पत्रद्वारा वह बात प्रकट करनेकी धृष्टता करना ही मैंने उचित और अपना धर्म समझा। मैंने अपना विवाह पं० ज्ञानदत्तजीके साथ करना तय किया है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप-सरीखे उदार और दूरदर्शी पिता मेरी इन पंक्तियोंमें किसी प्रकारके अनौचित्यका अनुभव न करेंगे। यदि आप मेरे इस कार्यको प्रसन्ता-पूर्वक स्वीकार करेंगे, तो इस चिन्तिता-को शान्ति मिलेगी।

प्रार्थिनी पुत्री—

राजो

उक्त पत्रको पढ़कर राजा साहिब थोड़ी देरके लिए गम्भीर विचारमें निमग्न होगये। उन्होंने राजोके इस कार्यको शास्त्र-विरुद्ध नहीं माना। मन-ही-मन यह सोचकर प्रसन्न हुए कि यदि आर्य-कन्याएँ हमारी राजोकी भाँति ही मिथ्या संकोच न करके अपने हृदयके भावको स्पष्ट प्रकट करने लग जायँ, तो आज ही समाजमें फैला हुआ पापाचार समूल नष्ट हो जाय। फिर क्या था, दूसरे दिन राजा साहिबने अपनी इकलौती लड़कीको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ पं० ज्ञानदत्तके हाथोंमें समर्पण कर दिया। सबलोगोंने हृदयसे राजा साहिबको बधाई

दी। ज्ञानदत्तके विच्छिन्न परिवारका सारा आन्तरिक मालिन्य जीवन भरके लिए दूर होगया। जाति-गत नियमोंपर प्रणय-की विजय हुई।

अब पुत्रको देखनेके लिए ज्ञानदत्तका हृदय लालायित हो उठा। घर जानेकी तैयारी होने लगी। चलते-चलाते ज्ञानदत्त-लिखित पुस्तकके ऊपर उन्हें अमेरिकासे सवा लाख रुपयेका 'नावेल प्राइज' मिलनेका आनन्द-दायक सुसम्वाद भी मिल गया। इस प्रकार ज्ञानदत्त, रमा और राजोका मनोर्थ सम्यक्-प्रकारेण सिद्ध होगया। बलिहारी है 'प्रणय !'